पंकज दीक्षित

# पुराणों में क्या है ?

ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, वायु पुराण, नारद पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, वराह पुराण, स्कन्द पुराण, वामन पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मांड पुराण

हजारों पृष्ठों में फैले अठारह पुराणों का सहज, सरल एवं संक्षिप्त सार

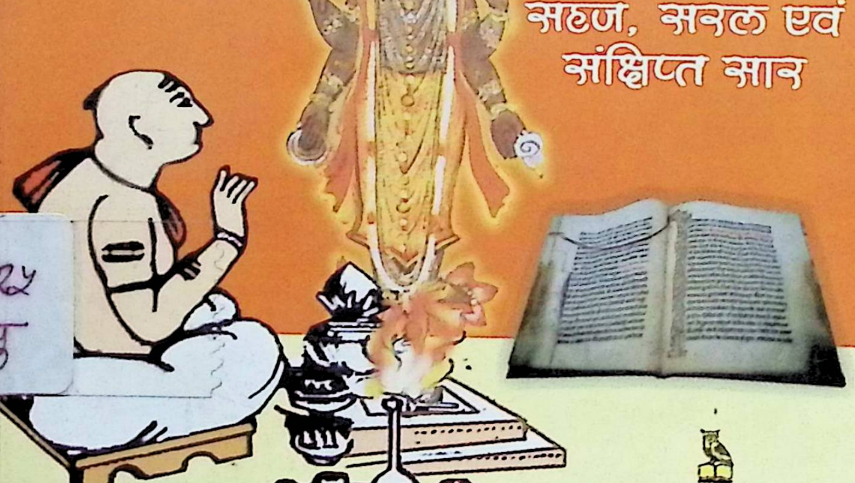

2.922
52 पु

पुस्तक महल®

**हजारों, पृष्ठों में फैले महान् हिंदू धर्म-ग्रंथ अठारह पुराणों का सहज, सरल, रोचक एवं संक्षिप्त रूपांतरण।**

Donated By
Prof. Anjani Kumar Sharma
FRCS, FICS, FACS, MASI, FBCSP
Bagbazar, Kathmandu, Nepal
4471573(R), 9810231110(M)
4222573, 4232329

- ✔ इसमें आख्यान हैं, जो पुराणों की विशालता में ईंट की तरह मज़बूती से जड़े हैं।
- ✔ अनेक संवादों में तीर्थों, देवताओं, नदियों, पर्वतों आदि का माहात्म्य, देवता स्तोत्र, अनेक शास्त्रों के उपदेश, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय आदि विभिन्न विषयों को समाहित किया गया है।
- ✔ जिज्ञासुओं के लिए भारतीय संस्कृति एवं परम्परा के ज्ञान से परिपूर्ण।
- ✔ भारतीय जीवन शैली को समझने और उसे आज के संदर्भ में अपनाने की प्रेरणा से ओत-प्रोत।
- ✔ भक्ति मार्ग एवं कर्म योग की महिमा का गरिमापूर्ण वर्णन।
- ✔ आज के सर्वाधिक व्यस्त और भाग-दौड़ भरे जीवन में, जबकि हज़ारों पृष्ठ पढ़ने का समय नहीं, ऐसे में यह पुस्तक निश्चय ही अगाध धर्म लाभ प्रदान करेगी।

# धर्म-ग्रंथों में क्या है?
# पुस्तक शृंखला

- ✔ वेद, पुराण, उपनिषद् और दर्शन पर परिचयात्मक पुस्तकों की शृंखला की महत्वाकांक्षी योजना।
- ✔ इन पुस्तकों का उद्देश्य आज के सर्वाधिक व्यस्त समय में हज़ारों-हज़ार पृष्ठों के इन वृहदाकार धर्म-ग्रंथों का सरल रूप में संक्षिप्त पारायण कराना है।
- ✔ इनमें लगभग सारी जानकारी दी गई है, जिससे जिज्ञासु पाठक पूरा धर्म लाभ उठा सकें।
- ✔ ये पुस्तकें हैं–

| | | |
|---|---|---|
| वेदों में क्या है? | - | डॉ. प्रवेश सक्सेना |
| पुराणों में क्या है? | - | पंकज दीक्षित |
| उपनिषदों में क्या है? | - | पंकज दीक्षित |


## पुस्तक महल की पुस्तकें

देश-भर के रेलवे, रोडवेज़ तथा अन्य प्रमुख बुक स्टॉलों पर उपलब्ध हैं। अपनी मनपसंद पुस्तकों की किसी भी नज़दीकी बुक स्टॉल से मांग करें। यदि न मिलें, तो हमें पत्र लिखें। हम आपको तुरंत वी.पी.पी. द्वारा भेज देंगे। पुस्तक महल की पुस्तकों की निरंतर जानकारी पाने के लिए विस्तृत सूची-पत्र मंगवाएं या हमारी वेबसाइट देखें www.pustakmahal.com

# पुराणों में क्या है?

पंकज दीक्षित

पुस्तक महल®

दिल्ली • बंगलोर • पटना • मुंबई • हैदराबाद

# धर्म-ग्रंथों में क्या है?
# पुस्तक शृंखला

---

✔ वेद, पुराण, उपनिषद् और दर्शन पर परिचयात्मक पुस्तकों की शृंखला की महत्वाकांक्षी योजना।

✔ इन पुस्तकों का उद्देश्य आज के सर्वाधिक व्यस्त समय में हज़ारों-हज़ार पृष्ठों के इन वृहदाकार धर्म-ग्रंथों का सरल रूप में संक्षिप्त पारायण कराना है।

✔ इनमें लगभग सारी जानकारी दी गई है, जिससे जिज्ञासु पाठक पूरा धर्म लाभ उठा सकें।

✔ ये पुस्तकें हैं—

| | | |
|---|---|---|
| वेदों में क्या है? | - | डॉ. प्रवेश सक्सेना |
| पुराणों में क्या है? | - | पंकज दीक्षित |
| उपनिषदों में क्या है? | - | पंकज दीक्षित |


## पुस्तक महल की पुस्तकें

देश-भर के रेलवे, रोडवेज़ तथा अन्य प्रमुख बुक स्टॉलों पर उपलब्ध हैं। अपनी मनपसंद पुस्तकों की किसी भी नज़दीकी बुक स्टॉल से मांग करें। यदि न मिलें, तो हमें पत्र लिखें। हम आपको तुरंत वी.पी.पी. द्वारा भेज देंगे। पुस्तक महल की पुस्तकों की निरंतर जानकारी पाने के लिए विस्तृत सूची-पत्र मंगवाएं या हमारी वेबसाइट देखें www.pustakmahal.com

# पुराणों में क्या है?

पंकज दीक्षित

पुस्तक महल®

दिल्ली • बंगलोर • पटना • मुंबई • हैदराबाद

प्रकाशक
**पुस्तक महल®** दिल्ली-110006

*विक्रय केन्द्र*
- 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006, *फोन:* 23944314, 23911979
- 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
  *फोन:* 23268292, 23268293, 23279900 • *फैक्स:* 011-23280567
  *E-mail:* rapidexdelhi@indiatimes.com

*प्रशासनिक कार्यालय*
J-3/16 (हैप्पी स्कूल के सामने), दरियागंज, नई दिल्ली-110002
*फोन:* 23276539, 23272783, 23272784 • *फैक्स:* 011-23260518
*E-mail:* info@pustakmahal.com • *Website:* www.pustakmahal.com

*शाखा कार्यालय*
बंगलोर : 22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलोर-560027
*फोन:* 22234025 • *फैक्स:* 080-22240209
*E-mail:* pustak@sancharnet.in • pmblr@sancharnet.in

मुंबई : 23-25, जाओबा वाडी (वी.आई.पी. शोरूम के सामने), ठाकुरद्वार, मुंबई-400002, *फोन:* 22010941 • *फैक्स:* 022-22053387
*E-mail:* rapidex@bom5.vsnl.net.in

पटना : खेमका हाउस, पहली मंजिल (वूमेन्स हॉस्पिटल के सामने), अशोक राजपथ, पटना-800004, *फोन:* 3094193 • *टेलीफैक्स:* 0612-2302719
*E-mail*: rapidexptn@rediffmail.com

हैदराबाद : 5-1-707/1, ब्रिज भवन, बैंक स्ट्रीट, कोटी, हैदराबाद-500095
*फोन:* 24737530 • *फैक्स:* 040-24737290
*E-mail*: pustakmahalhyd@yahoo.co.in

**©कॉपीराइट सर्वाधिकार**
**पुस्तक महल**, 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006

ISBN 81-223-0742-0

**चेतावनी**

भारतीय कॉपीराइट एक्ट के अंतर्गत इस पुस्तक के तथा इसमें समाहित सारी सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार "पुस्तक महल" के पास सुरक्षित हैं। इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल डिजाइन, अंदर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़ कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर वे हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।

**–प्रकाशक**

**तीसरा संस्करण : 2004**

**मुद्रक : हाई-जिल ग्राफिक, दिल्ली - 32**

G.NO
1018

## स्वकथन

हमारे धर्म के लिए मानव धर्म, सनातन धर्म या आर्य धर्म, जो वैदिक जीवन पद्धति पर आधारित थे, ये विशेषण ही शास्त्रों में मिलते हैं, पर आज हम अन्य सभ्यताओं द्वारा 'सिन्धु' में 'स' के स्थान पर 'ह' के उच्चारण के कारण हिंदू हैं, एक रिलीजन है, लेकिन हमारा धर्म रिलीजन नहीं है, क्योंकि यह निश्चित विश्वासों पर आधारित कोई संस्थागत धर्म नहीं है, एक पुस्तक व एक शिक्षक की अवधारणा को भी स्वीकार नहीं करता। यह एककेन्द्रीय न होकर बहुकेन्द्रीय है। अपने सम्मिलित आध्यात्मिक व अपौरुषेय ज्ञान द्वारा अविच्छिन्न परम्परा में स्थापित शाश्वत मूल्यों का पालन करता है। नए अन्वेषण को सहज स्वीकार कर व्यष्टि मन को समष्टि मन से मिलने की, मार्ग चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। यह एक जीवन पद्धति है। मनुष्य की प्रकृति व ब्रह्मांड की अन्य नीहारिकाओं से एकात्मक अनूभूति का सहसंबंध स्थापित करने की विधि है।

शब्द या श्रुति व पारम्परिक सुने शास्त्र या संस्कृति की वाक् धरोहर आमूलतः परिवर्तित नहीं होते। यही शब्द पुराण हैं। प्रजापति ब्रह्मा को 'वेदों से भी पूर्व' जिन शब्दों का स्मरण हुआ और जो हमारी प्राचीनतम धरोहर हैं, वही अनादि अपौरुषेय पुराण हैं, जिन्हें व्यास जी ने 18 खंडों में विभक्त करके पौरुषेय रूप दिया। भारतीय जीवन शैली, भक्ति मार्ग व कर्म योग का जैसा सुंदर समन्वय इन अठारह पुराणों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जैसे देह के समुद्र में मन का मोती पलता है, वैसे ही विशाल भारतीय वाङ्मय में ये पुराण-मुक्ता भी बहुत गहरे जाने पर अपनी आभा प्रकट करते हैं। इसके शब्द का, भाव का, प्रतीकों का, सूक्ष्म रूप का सचेत व जागृत मन से आस्वादन करने पर वैदिक सभ्यता, सनातन धर्म व मानव जीवन शैली की सार्थकता का बोध होगा।

भारतीय संस्कृति की दृष्टि वस्तु के ऊपर तक ही नहीं होती, वरन् वह उसके भीतर भी प्रवेश करती है। भारतीय जीवन शैली विशाल है, पर भारी नहीं, मौलिक

है, पर कृत्रिम नहीं, अतीत से जुड़ी है, पुरातन के प्रति विद्रोह की प्रेरणा नहीं देती, अभिनव का अनुसंधान करती है, परंतु प्राचीन परम्पराओं की अवमानना करके नहीं, अपितु उनके अनदेखे स्वप्नों की लालसा पूर्ण करने के लिए।

पुराणों की विस्तृत व विशाल शब्द संपदा का संक्षिप्तीकरण मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के लिए दुस्साहस ही है, परंतु पाठकों के मन में यदि यह प्रयास अपनी संस्कृति, जीवन शैली व धर्म के प्रति बीज रूप में अपनी जड़ स्थापित कर गया, तो मुझे विश्वास है कि आप स्वयं पुराणों के वट वृक्ष की छाया का आनंद लेंगे और बीज से वृक्ष, बूंद के सागर, अणु से ब्रह्मांड की भारतीय संस्कृति की प्रवाहशील धारा में आप सहभागी व सहयोगी होंगे।

**– पंकज दीक्षित**

# अनुक्रम

अध्याय 1

पुराण क्या है? 9

• वेद और पुराण में अंतर • वेद व पुराण की परिभाषा • वेदार्थ का उपबृंहण।

अध्याय 2

पुराणों के लक्षण व सर्वमान्य संख्या 14

• पंच लक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित • पुराणों की संख्या।

अध्याय 3

भारतवर्ष का पौराणिक भूगोल 21

अध्याय 4

पुराणों का संक्षिप्त परिचय 31

• ब्रह्म पुराण • पद्म पुराण—पांच खंड : सृष्टि खंड, भूमि खंड, स्वर्ग खंड, पाताल खंड, उत्तर खंड • विष्णु पुराण • वायु पुराण • श्रीमद्भागवत पुराण—बारह स्कंध : प्रथम स्कंध, द्वितीय स्कंध—चतुर्श्लोकी भागवत, तृतीय स्कंध, चतुर्थ स्कंध, पंचम स्कंध, षष्ठ स्कंध-नारायण कवच, सप्तम स्कंध, अष्टम स्कंध, नवम स्कंध, दशम स्कंध (पूर्वार्द्ध), दशम स्कंध (उत्तरार्द्ध) • नारद पुराण • मार्कण्डेय पुराण • अग्नि पुराण • भविष्य पुराण—ब्राह्म पर्व, मध्यम पर्व (प्रथम भाग), मध्यम पर्व (द्वितीय भाग), मध्यम पर्व (तृतीय भाग), प्रति सर्ग पर्व, उत्तर पर्व • ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—ब्रह्म खंड, प्रकृति खंड, गणपति खंड, श्रीकृष्ण जन्म खंड • लिंग पुराण

• वराह पुराण • स्कंद पुराण—माहेश्वर खंड, केदार खंड, कुमारिका खंड, अरुणाचल माहात्म्य खंड, वैष्णव खंड, भूमिवाराह खंड, उत्कल खंड, पुरुषोत्तम माहात्म्य, बदरिका माहात्म्य, कार्तिक मास का माहात्म्य, मार्गशीर्ष मास का माहात्म्य, वैशाख मास का माहात्म्य, श्री अयोध्या माहात्म्य, ब्रह्म खंड, सेतु माहात्म्य • वामन पुराण • कूर्म पुराण—पूर्व विभाग, उत्तरार्द्ध • मत्स्य पुराण • गरुड़ पुराण • ब्रह्मांड पुराण।

अध्याय 5

पुराणों की जीवनोपयोगी कथाएं 177

• पौराणिक कथाओं की पृष्ठभूमि • ब्रह्म पुराण : अतिथि सत्कार • पद्म पुराण : प्रणाम करने से ब्रह्मा के समान आयु की प्राप्ति • विष्णु पुराण : धन्य कौन? • वायु पुराण : भाव प्रधान और कर्म गौण • श्रीमद्भागवत पुराण : रन्तिदेव की कथा • नारद पुराण : गंगा की कथा तथा पुत्र या वंशज के कर्त्तव्य • मार्कण्डेय पुराण : विपुलस्वान् मुनि और उनके पुत्रों की कथा • अग्नि पुराण : जड़ भरत और सौवीर नरेश का संवाद • भविष्य पुराण : कर्त्तव्यपरायणता का अद्भुत फल • ब्रह्मवैवर्त्त पुराण : गणेश जी पर शनि की दृष्टि • लिंग पुराण : दरिद्रता कहां पाई जाती है • वराह पुराण : कर्म रहस्य • स्कंद पुराण : शबर दंपती की दृढ़ निष्ठा • वामन पुराण : भक्ति बड़ी है या शक्ति? • कूर्म पुराण : आसक्ति से विजेता भी पराजित • मत्स्य पुराण : सावित्री-सत्यवान की कथा • गरुड़ पुराण : पिण्ड-दान का महत्त्व • ब्रह्मांड पुराण : चुराए हुए पदार्थ की भी चोरी।

अध्याय 6

पौराणिक आख्यानों की अनुक्रमणिका 210

अध्याय 1

# पुराण क्या है ?

पुराण शब्द का साधारण अर्थ है : प्राचीन या 'पुराना'। हिंदी भाषा का पुराना शब्द इसी से निष्पन्न हुआ है। गुप्तकालीन शब्दकोष 'अमरकोश' की टीका में भानुजी दीक्षित ने इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से बतलाई है :

**1. पुराणवम् =** पुराने काल में या पूर्व काल में होने वाले को पुराण कहते हैं।

**2. पुरानवम् =** प्राचीन काल से प्रवाहमान होते हुए भी नया रहने वाला पुराण है।

**3. पुराणम् =** 'पुरा' शब्द का अर्थ है—**अतीत व अनागत।** 'अण' शब्द का अर्थ है : **कहना** (आज भी गढ़वाल में "अण" शब्द का अर्थ पहेली का अर्थ कहने से होता है)। अर्थात् जो प्राचीन व अनागत बातों को समझाए, वही पुराण है। 'अन्' धातु का एक अन्य अर्थ है, सांस लेना, जीवित रहना। अर्थात् जो प्राचीन काल से सांस ले रहा है और जीवित है यानी पारंपरिक ज्ञान की वह चिर-निरंतर धारा, जो प्राचीन काल से प्रवाहमान है, परंतु बहते जल की भांति नित-नवीन है, वही पुराण है। वायु पुराण में इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि—

**यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन हि स्मृतम्।**
**निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।** (1.203)

**अर्थ :** प्राचीन काल से यह जीवित और प्रवाहमान होने के कारण इसे पुराण कहा गया है। जो व्यक्ति इसके निरुक्त को जान लेता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यहां पर जिज्ञासुओं के मन में एक सहज व स्वाभाविक प्रश्न का जन्म होता है कि प्राचीनतम् ज्ञानधारा जो वेदों से व वेदों में ही प्रवाहित है, तो फिर वेद व पुराणों में क्या अंतर है या क्या समानता है ? इनका परस्पर अंतर्संबंध क्या है ? वेद, पुराण व उपनिषदों का यह पारस्परिक अंतर्संबंध विपुल व विशद भारतीय

ज्ञान, अध्यात्म व दर्शन की त्रिवेणी को भलीभांति जानने के लिए अत्यन्तावश्यक है।

**परिभाषा :** प्रजापति ब्रह्मा को सर्वप्रथम पुराणों का स्मरण हुआ था और उसके पश्चात् वेदों का निसरण हुआ। इस प्रकार वेदों की अभिव्यक्ति से पूर्व पुराणों की अभिव्यक्ति होने के कारण यह पुरातन, प्राचीन, पुराने या पुराण कहलाए। मत्स्य पुराण तथा वायु पुराण में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि–

**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्**
**नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटि प्रविस्तरम्**
**अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृता ॥** **(मत्स्य 3/3-4)**

## वेद और पुराण में अंतर

पुराण वेदों से पूर्व हुए हैं, परंतु वेद अनादि व अपौरुषेय हैं। पुराण पौरुषेय व अपौरुषेय दो प्रकार के भेदों से युक्त हैं। अपौरुषेय का अर्थ तो स्वतः स्पष्ट है कि इसकी रचना किसी पुरुष द्वारा नहीं हुई है, ये बह्म के निःश्वास हैं। पुराण के दोनों भेदों का अंतर क्या है ? क्योंकि वेद भी ब्रह्माजी के निःश्वास हैं और पुराण भी। ब्रह्माजी ने जिस पुराण की रचना की, वह केवल एक अपौरुषेय पुराण था और उसमें सौ करोड़ या एक अरब श्लोक थे और देवलोक में आज भी वह एक पुराण ही प्रचलित है। परंतु उस एक पुराण की विशालता व विशदता को सरल व सर्वजनग्राही बनाने के लिए व्यास जी ने उसका विभाजन करके उसमें 18 खंड कर दिए तथा श्लोकों की संख्या 4 लाख सीमित कर दी, जो पौरुषेय पुराण के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह पौरुषेय पुराण वेद के परवर्ती काल की रचना है।

पुराणों व वेदों में दूसरा प्रमुख अंतर यह है कि ब्रह्माजी के मुख से प्रकट होने पर भी वैदिक मंत्रों का दृष्टा ऋषियों को कहा गया है, जबकि पौराणिक ज्ञान धारा को ग्रहण करने वाले मुनि कहलाए अर्थात् वैदिक ज्ञान धारा, यज्ञ घ कर्मकांडीय संस्कृतियों का वहन ऋषि कुल परंपरा ने किया, जबकि पौराणिक ज्ञान की लौकिक व्रत, उपासना, तीर्थ व अनुष्ठान संस्कृति के वाहक मुनि बने। ऋषि द्रष्टा हैं व मुनि प्रवक्ता। पुराण व वेदों के विशिष्ट अंतर्संबंध की भांति ऋषि व मुनि शब्दों को लेकर जनसामान्य में यह भ्रांति प्रचलित है कि ऋषि व मुनि तो समानार्थक शब्द है। इनमें क्या अंतर है ? इस अंतर को आचार्य शंकर ने सनत्सुजातीय भाष्य में स्पष्टतः व्यक्त किया है–

**न केवलं वेदा, अपितु मुनयोऽपि तद्र ब्रह्म विश्ववैरूप्यं**
**विश्वरूप विपरीतस्वरूप मुदाहरन्ति ॥**

वस्तुतः ऋषि शब्द के चार प्रमुख अर्थ हैं–1. गति, 2. श्रुति, 3. सत्य, 4. तपस।

ब्रह्माजी के कथनानुसार जिस मनुष्य में ये चारों गुण एक साथ हों, वह ऋषि कहलाने योग्य है। तैत्तिरीय आरण्यक में ऋषि शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि सृष्टि के प्रारंभ में केवल तपस था। तपस्या में लीन योगियों को स्वयं ब्रह्माजी ने श्रुतियों का ज्ञान प्रदान किया। अपौरुषेय व अलौकिक वेद या श्रुति को ऋषियों ने अपने दिव्य श्रोतों या कात्रे से श्रवण करके उसे अर्थ प्रदान किया व संसार में प्रकट किया। इसके पश्चात् मुनियों के लक्षणों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जो तप करने वाला हो, शून्यागार में निवास करता हो और भ्रमण करते-करते या चलते-चलते सायंकाल में किसी भी स्थान पर विश्राम के लिए रुक जाए, वही मुनि है। इसी भाव को गीता में स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दुःखों में उद्विग्न न होने वाला सुखों के स्वप्न से रहित, राग, भय, क्रोध से उन्मुक्त स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य ही मुनि है।

**दुःखेष्वनुद्विग्नयनाः सुखेषु विगत स्पृहः**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।**

मुनियों के उपरोक्त लक्षणों से स्पष्ट है कि पुराण पौरुषेय व लौकिक शास्त्र हैं, जिनका स्वरूप निश्चित नहीं है तथा जिनमें समय के साथ-साथ परिवर्तन होता रहता है। पुराणों की इस स्मृतिमूलक, परिवर्तनशील प्रवृत्ति होने के कारण पुराण इतिहास से बहुत घनिष्ट रूप से जुड़े हैं।

**इतिहास-पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते। (श्रीमद्‌भागवत 1/4/20)**
**इतिहास पुराणं पंचम् वेदानां वेदः। (न्याय दर्शन 4/1/62)**
**इतिहास पुराणाख्यमुपाङ्ग च प्रकीर्तितम्। (सीता उपनिषद्)**
**इतिहास पुराणं पंचम् वेदानां वेदम्। (छान्दोग्योपनिषद् 7/2/2)**

वेदों की शैली रूपकमयी है। पुराणों की शैली अतिशयोक्तिमयी है अर्थात् वेदों में जो बात सूत्र रूप में कही गई है, वही पुराणों में विस्तार से वर्णित है। इस पौराणिक ज्ञान का उपदेश सर्वप्रथम व्यास जी ने गुरु-शिष्य परंपरा में अपने शिष्य सूतजी को दिया और कालान्तर में सूतजी ने एक ओर तो नैमिषारण्य तीर्थ में 88 हजार ऋषियों को प्रवक्ता के रूप में पुराणों का प्रवचन किया और दूसरी ओर अपनी गुरु-शिष्य परंपरा में 6 शिष्यों को यह ज्ञान प्रदान किया। इस परंपरा का उल्लेख स्पष्ट रूप से वायु पुराण में मिलता है। इन छः शिष्यों में से तीन काश्यप, सावर्णि व शांशपायन ने अपनी-अपनी नई पुराण संहिताएं बनाईं और इस प्रकार चार पुराण संहिताएं प्रचलित हुईं। पाठकगण कृपया भ्रमित न हों, ये चार संहिताएं परस्पर भिन्न व भिन्नार्थक नहीं थीं, अपितु सब एक ही अर्थ व भाव को प्रकट करती थीं। केवल पाठान्तर में ही पृथकता थीं। वर्तमान में प्रचलित अठारह पुराणों में से

कृष्णद्वैपायन व्यास (पुराण संहिता के कलियुग में) आदि रचयिता

लोमहर्षण सूत

1. सुमति आत्रेय 2. अकृतव्रण काश्यप 3. अग्निवर्चा भारद्वाज

4. मित्रायु वाशिष्ट 5. सोमदत्ति सार्वार्ण 6. सुशर्मा शांशपायन व विष्णु पुराण

विष्णु पुराण के प्रवचन का श्रेय पराशर ऋषि को है। 28 पुराणों के प्रणयन का कार्य व्यास जी ने संपन्न किया है और पुराण में सर्वश्रेष्ठ भगवान श्री वृन्दावन बिहारी लाल, श्री मधुसूदन, मुरली मनोहर, माखनचोर श्रीकृष्ण की मंगलमयी, पापविमोचनी लीलाओं का वर्णन करने वाली श्रीमद्भागवत के प्रथम प्रवचन का श्रेय कृष्णद्वैपाया व्यासजी के पुत्र शुकदेव मुनि को है। यही परंपरा आज तक मान्य व प्रचलित है, जो प्रत्येक पुराण श्रद्धालु के लिए वंदनीय व पूजनीय है।

## वेद व पुराण की परिभाषा

वेदों की भांति पुराण भी ब्रह्माजी के निःश्वास हैं, यह कथन तो पुराण शब्द की व्याख्या में ही स्पष्ट किया जा चुका है। यहां वेद व पुराणों के सहसंबंध व अंतर्संबंध पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार प्रस्तुत किया जाएगा। वस्तुतः पुराणों में वेदों के अर्थ का उपबृंहण है। उपबृंहण शब्द का तात्पर्य है कि किसी तथ्य की पुष्टि करना तथा उसका विस्तार से वर्णन करना। बृंह धातु का अर्थ ही वर्धन या बढ़ाना है। वेदों के सूत्रमय ज्ञान व तथ्यों को पुराण विशद, विस्तृत व प्रयोगात्मक रूप से प्रकट करते हैं। श्री जीव गोस्वामी जी महाराज ने वेद और पुराणों के संदर्भ में पुराण की एक नए ढंग से व्युत्पत्ति की है, जो इस प्रकार है : **पूरणात् पुराणम्** अर्थात् जो वेदों के अर्थ का पूरण करता है या उस अर्थ को पूर्ण करता है, वही ग्रंथ पुराण कहलाता है। पूरण करना, पूर्ण करना या पूरा करना इस भाव की आध्यात्मिक व दार्शनिक संदर्भ में यह महत्ता है कि जो तथ्य किसी ज्ञान का पूरण करेगा, उसकी प्रवृत्ति व प्रकृति पूरण करने वाले से भिन्न व विजातीय नहीं हो सकती। अपितु निश्चित रूप से पूरक समान, सजातीय, एकरस व अनन्य होगा। दूसरे शब्दों में क्योंकि पुराण वेद को पूरण करते हैं, अतः पुराण वेद के समकक्ष व समानधर्मी हैं। वस्तुतः पुराण वेदों के व्याख्यान ग्रंथ हैं, अतएव महाभारत में स्पष्ट रूप से

कहा गया है–

**इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।**
**विभेत्यल्पश्रुताद वेदो माभयं प्रहरिष्यति।।**

**(महाभारत आदि पर्व 1/267, 268)**

पुराणों की वेदरूपता व ''पूरणाच्च पुराणम्'' की भावना को वृहदारण्यकोपनिषद् में भी स्पष्ट रूप से स्वीकारा गया है।

''अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोय्यार्वांगरिस इतिहासः पुराणम्' (2/4/20)

आदि शंकराचार्य भी पुराणों को वेदमूलक होने के कारण उनके प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं–**समूलमितिहासपुराणम्**।

## वेदार्थ का उपबृंहण

वैदिक संहिताओं के विभिन्न मंत्रों व विशिष्ट पदों को स्पष्टतः समान भाव से अक्षरशः पुराणों में ग्रहण किया गया है, जिनमें कुछ प्रमुख उदाहरणों का उल्लेख प्रस्तुत है। यहां यह कहना भी समीचीन होगा कि वैदिक परंपरा की धारा का प्रबलतम प्रवाह **श्रीमदभागवत्पुराण** में दृष्टिगोचर होता है और स्वयं श्रीमदभागवत् के मंगलाचरण में स्पष्टतः इस भाव को अभिव्यक्त करते हुए कहा गया है–

**निगमकल्पतरोर्गलितं फलं**
**शुकमुखादमृतद्रव संयुतम्।**
**पिबत भागवतं रसमालयं**
**मुहुरहो रसिका मुनि भावुकाः।**

**(1/2/3 श्रीमद्भागवत)**

अर्थात् 'हे रस के मर्मज्ञ भक्तजनों ! यह श्रीमद्भावत वेद रूपी कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है, जो शुक के मुख से संबंधित हो जाने के कारण परमान्दमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है' (यहां शुक शब्द में श्लेष का प्रयोग है, क्योंकि एक अर्थ में शुक का भावार्थ तोते से है और जनसाधारण में यह प्रसिद्ध है कि तोते का काटा फल अधिक मीठा होता है और दूसरे संदर्भ में व्यास जी के सुपुत्र शुकदेव मुनि से है, जिनकी अमृतमय वाणी से यह वेदवाणी आप्लावित है।

अध्याय 2

# पुराणों के लक्षण व सर्वमान्य संख्या

पुराणों में वर्णित विषय वस्तु के बारे में **'पञ्चलक्षण'** शब्द प्राचीनकाल से ही आज तक प्रचलित हैं। सर्वत्र मान्य परंपरा के अनुसार 'पञ्चलक्षण' से तात्पर्य वस्तुतः पांच वर्णनीय विषयों से है, जो प्रायः प्रत्येक पुराण में उपलब्ध होते हैं।

**सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्ततराणि च।**
**वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।।**

**सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर** और **वंशानुचरित** ये पुराणों के पांच लक्षण हैं।

**1. सर्ग :** यह संपूर्ण दृश्य जगत एवं उसके नाना प्रकार के जीवों व पदार्थों की उत्पत्ति की प्रक्रिया व क्रम का वर्णन 'सर्ग' कहलाता है। सृष्टि का प्रारंभ व सृजन की प्रक्रिया का परमात्मा या ब्रह्म से प्रस्फुटन ही सर्ग का वर्ण्य विषय है। पृथ्वी कहां से प्रकट हुई ? पंच तत्वों का कैसे आविर्भाव हुआ ? पंच तत्वों से पंच तन्मात्राओं की रचना किस प्रकार हुई ? स्वेदज, अंडज व जरायुज जीव कैसे प्रकट हुए ? मैथुनी सृष्टि का प्रारंभ कैसे हुआ ? इस मैथुनी सृष्टि का चार युगों में कैसे क्रमशः विकास हुआ ? इन सबका विशद व वैज्ञानिक विवेचन सर्ग में उपलब्ध होता है। पुराणों के अनुसार सृष्टि नवसर्गमयी है। अर्थात् नौ प्रकार के सर्ग हैं : 3 प्राकृत, 1 प्राकृत-वैकृत और 5 वैकृत। 3 प्राकृत तत्त्व हैं—ब्रह्म, भूत और वैकारिक।

**2. प्रतिसर्ग :** सर्ग का विपरीत अर्थात् सृजन की विपरीत प्रक्रिया है प्रलय। कल्प के अंत में या पौराणिक काल गणना के अनुसार ब्रह्मा जी का एक दिन पूर्ण हो जाने पर सृष्टि का समापन या प्रलय ही प्रतिसर्ग का वर्ण्य विषय है। विभिन्न पुराणों में प्रतिसर्ग के लिए विभिन्न प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है। यथा—विष्णु पुराण में **'प्रति रुंचर'**, श्रीमद्भागवत में **'संस्था'** ब्रह्मपुराण में **'अंतर प्रलय'** आदि। इसके अतिरिक्त प्रतिसर्ग या प्रलय हेतु आभूतसंप्लव, उदाप्लुत, उपसंहति, प्रतिसंक्रम व प्रतिसंसर्ग आदि का भी प्रयोग मिलता है। पुराणों में चार प्रकार के प्रलय का

वर्णन मिलता है :

1. नैमित्तिक 3. आत्यंतिक
2. प्राकृत 4. नित्य

**3. वंश** : ब्रह्मा जी द्वारा रचित इस सृष्टि में जितने राजा हुए हैं, उनकी भूत, भविष्य व वर्तमान सन्तान परंपरा को ही 'वंश' की संज्ञा दी गई है। यहां वंश का तात्पर्य केवल राजवंश से ही नहीं अपितु ऋषियों, सुरों व असुरों की वंश परंपरा से भी है। इन वंशावलियों द्वारा पुराणों में वेदों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है, क्योंकि इन वंश परंपराओं का उल्लेख यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण व सामवेद के ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त होता है।

**4. मन्वन्तर** : मन्वन्तर शब्द से वस्तुतः पौराणिक सृष्टि क्रम की काल गणना का बोध होता है। चारों युगों यथा सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग को मिलाकर एक चतुर्युगी बनती है और एक हजार चतुर्युगी में चौदह मन्वन्तर होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक मनु होता है, जिसके पांच सहयोगी होते हैं। उदाहरणार्थ, वर्तमान कलियुग में **वैवस्वत** मन्वंतर चल रहा है, जिसका प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान से पूर्व संकल्प में प्रयोग होता है।

**मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।**
**ऋषयोंडशावताराश्च हरेः षडविधमुच्यते।।**

**(भाग 12/7/15)**

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान के अंश युक्त अवतार—इन छः विशिष्टताओं से युक्त कालखंड को मन्वन्तर कहते हैं।

**5. वंशानुचरित** : राजवंशों के चरित्रों का वर्णन व उनका विशिष्ट विवरण ही वंशानुचरित कहलाता है। यद्यपि देवताओं, ऋषियों व कीर्तिवान अमिततेज संपन्न राजाओं का इन वंशानुचरितों में वर्णन है, परंतु अन्य की अपेक्षा राजाओं के चरित्र का ही विशेष विवरण पुराणों में उपलब्ध होता है। पुराणों में राजाओं की वंशावली वैवस्वत् मनु से प्रारंभ होती है। मनु के पुत्रों से सूर्यवंश व पुत्री इला के वंश से सोमवंश की पीढ़ी परंपरा प्रारंभ हुई। सूर्यवंश में मनु के प्रथम पुत्र इक्ष्वाकु थे, जिनकी वंश परंपरा में क्रमशः पृथु 4., मान्धाता, हरिश्चंद्र, सगर, भगीरथ आदि नरेश हुए इसी परंपरा में राजा दिलीप हुए, जिनके पश्चात् रघु, अज, दशरथ व मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम व लव-कुश हुए। इसी वंश का राजा श्रुतायु मत्स्य पुराण के अनुसार महाभारत में पराजित हुआ, परंतु अन्य पुराणों यथा विष्णु व हरिवंश आदि में इस वंश परंपरा के अंतिम राजा वृहद्वल का उल्लेख मिलता है।

पुराणों में वर्णित दूसरा महत्त्वपूर्ण वंश मनु की पुत्री इला का है, जो पुरुष

रूप में सुद्युम्नु व स्त्री रूप में इला कहलाई। इला का बुध से पुरुरवा नामक पुत्र हुआ। पुरुरवा के आयु, अमावसु आदि 6 पुत्र हुए। अमावसु के जह्नु नामक प्रतापी पुत्र हुआ, जिन्होंने गंगा का पान कर लिया था। जह्नु के वंश में आगे कुशाम्ब नामक वंशज के गाधि नामक पुत्र हुआ, जो कालांतर में कौशिक कहलाए। इसी वंश में आगे जमदग्नि ऋषि हुए, जिनके प्रबल व पराक्रमी पुत्र परशुराम हुए।

पुराणों में वर्णित तीसरा प्रमुख वंश है पुरु वंश। पुरु ययाति के पुत्र थे। इसी वंश में रौद्राश्व नामक राजा हुआ। रौद्राश्व के पुत्र ऋचेयु के ही वंशज दुष्यन्त व भरत आदि हुए। भरत के वंश में आगे रंतिदेव, मेघातिथि और दिवोदास हुए। इसके अतिरिक्त पुराणों में अजमीढ़ वंश (जिन्होंने हस्तिनापुर बसाया), काशी के राजवंश, मगध के राजवंश, सात्वत वंश आदि का भी वर्णन मिलता है, जिनकी विवेचना यथा स्थान पर आगे पुराणों में की गई है। पुराण वेदों के समकालीन हैं और स्वयं में बीती हुई बातों, घटनाओं, राज्यों, वंशावलियों, भूगोल व सृष्टिक्रम जैसे विविध व व्यापक विषयों के ज्ञान को लेकर निरंतर समय की धारा में प्रवाहित होते रहे हैं। यही कारण है कि समय के साथ इनका स्वरूप व्यापक व विस्तृत होता गया (यहां पर थोड़ा-सा विचार करने योग्य बात यह है कि वेद व पुराण दोनों समकालीन व एक ही स्रोत से निःसृत होने के पश्चात् भी इनके उद्देश्यों व अभिव्यक्ति की शैली में स्पष्ट अंतर है। वेदों की शैली रूपकमयी व सूत्र पद्धति है, जिसमें संक्षिप्तीकरण द्वारा थोड़े से कथन में बहुत अधिक समझाने का उद्देश्य है, जो ज्ञानियों के लिए है। इनका स्वरूप निश्चित है। पुराणों की शैली अतिशयोक्ति भी है, जिसमें व्यास पद्धति से अर्थात् विस्तार से गूढ़ सिद्धांतों को उदाहरणों व कथाओं के माध्यम से समझाया गया है, जो जनसाधारण के लिए है। इसलिए इनका स्वरूप विस्तृत होता गया है)।

यही कारण है कि प्रारंभ में पुराण के 'पंचलक्षण' प्रसिद्ध थे, जो कालांतर में विस्तृत होकर दस हो गए और दस लक्षणों के नाम से प्रसिद्ध हो गए। श्रीमद्भागवत में स्पष्ट रूप से इन दस लक्षणों का दो स्थानों पर, द्वितीय व द्वादश संबंध में वर्णन है।

1. अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणभूतयः।
   मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।।

(श्रीमद्भागवत 2/10/1)

2. सर्गश्चाय विसर्गश्च वृती रक्षांतराणि च
   वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरयाश्रयः।।

(श्रीमद्भागवत 12/7/9)

प्रथम श्लोक के अनुसार वंश लक्षण इस प्रकार हैं–

| | |
|---|---|
| 1. सर्ग | 6. वंश |
| 2. विसर्ग | 7. वंशानुचरित |
| 3. वृत्ति | 8. संस्था |
| 4. रक्षा | 9. हेतु |
| 5. अंतराणि | 10. अपाश्रयः |

इन लक्षणों में से सर्ग 1., वंश 6., वंशानुचरित 7., संस्था 8. (जो प्रतिसर्ग के समानार्थक है), अंतराणि (मन्वन्तर का समानार्थक) आदि तो पूर्ववत पंचलक्षण हैं। शेष पांच विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, हेतु और अपाश्रय ये नूतन पंचलक्षण हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है :

**1. विसर्ग :** संग या सृष्टि के पश्चात् ब्रह्मा जी पूर्व कर्मों व संस्कारों के अनुरूप अच्छी व बुरी वासनाओं की प्रधानता के आधार पर जीव को विशिष्ट योनि प्रदान करते हैं। इसी को विसर्ग कहा जाता है। जैसे किसी को पूर्वजन्म के कर्मानुसार मनुष्य योनि प्राप्त होती है, किसी को श्वान, किसी को मत्स्य, किसी को पक्षी की। इस प्रकार संपूर्ण जड़चेतन चराचर जगत का सृजन सर्ग है और उस सृष्टि में जीवात्मा के लिए विशिष्ट स्वरूप का निर्माण विसर्ग है।

**2. वृत्ति :** प्रचलित अर्थानुसार ही वृत्ति का पुराणों के संदर्भ में प्रयोग हुआ है। अर्थात् जीवों के जीवन निर्वहन की आधारभूत सामग्री। मानव या अन्य जीवों के जीवन यापन के लिए जिन वस्तुओं की उन्हें आवश्यकता है और जिनका वह उपयोग करता है, वही उसकी वृत्ति है यथा–चावल, गेहूं, अन्न आदि। भागवत में इसे बड़े सुंदर शब्दों में कहा गया है कि 'संपूर्ण चर जगत की अचर पदार्थ वृत्ति है'। (यही कारण है कि अचर पदार्थ जैसे गेहूं, चावल आदि के भोजन का ही शास्त्रीय प्रावधान है और मांसाहारी भोजन जो विभिन्न चर पदार्थों से प्राप्त होता है, उसका मानव के भोजन हेतु पुराण समर्थन नहीं करते)। पौराणिक लक्षणों के संदर्भ में वृत्ति का विशिष्ट अर्थशास्त्र के आदेश को मानव जीवन के संरक्षण व धारण के उद्देश्य से ग्रहण करने से है।

**3. रक्षा :** पुराणों का एक अन्य प्रिय विषय है, भगवान के विभिन्न अवतारों की चर्चा। जब-जब धर्म की हानि होती है, वेदों का विरोध होता है, उस समय भक्तों व धर्म के पुनरुत्थान के लिए भगवान परमब्रह्म पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार ग्रहण करके अपनी लीलाएं प्रकट करते हैं और दुष्टों का संहार करते हैं। भक्तों व साधुजनों की रक्षा करते हैं। इसीलिए इस संपूर्ण लीला को पुराणों ने रक्षा की संज्ञा देकर दस लक्षणों में स्थान दिया है। श्रीमद्भगवत्गीता

का प्रसिद्ध श्लोक इसी लक्षण के भाव को प्रकट करता है :

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।** (4/7)
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।** (4/8)

यहां रक्षा-लक्षण का एक अन्य गूढ़ व गहन अर्थ भी श्रीमद्भागवत द्वारा स्पष्ट किया गया है। विरोधों व विद्वेषकों का संहार तो प्रभु का सामान्य धर्म है, परंतु केवल उसी उद्देश्य मात्र से वह अवतरित नहीं होते। उनके अवतार का मुख्य ध्येय व लक्ष्य लीला-विलास है, जिसके चिंतन, स्मरण व कीर्तन से भव सागर में डूबे जीव की मुक्ति होती है और सांसारिक माया जाल से उसकी रक्षा होती है। यही अवतार का रहस्य है व पुराणों में लीला रसास्वादन द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति होती है, जो 'रक्षा' नामक लक्षण द्वारा अभिव्यक्त की जाती है।

**4. हेतु :** हेतु का शाब्दिक अर्थ है–कारण या साधन। पुराणों के विस्तृत लक्षणों में इसको सम्मिलित करने का कारण है–सर्ग व प्रतिसर्ग का हेतु या कारण जानना। इस संसार के सृजन या सर्ग का कारण क्या है ? उसके प्रतिसर्ग या प्रलय का कारण क्या है ? कारण है जीव, उसके कर्म बंधन, कर्मों का भोग, चैतन्य या चेतन तत्त्व की प्रधानता के कारण वही साक्षी होता है। (हेतु शब्द वस्तुतः भारतीय षड्दर्शन में न्यायशास्त्र के अंतर्गत विस्तार से स्पष्ट किया गया है) प्रमाणों व तर्कों के द्वारा अर्थ की परीक्षा करना न्यायशास्त्र की प्रवृत्ति है। वहां तीन प्रकार के हेतु यथा अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी की चर्चा है, जहां इन्हें अग्नि व धूम के उदाहरण से स्पष्ट किया गया है। **तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम्** की भावना के अनुरूप एक के होने पर दूसरे का हेतु (साधन) तथा साध्य की व्याप्ति दिखलाई गई है। अर्थात् साधन के होने पर साध्य की सत्ता होती है। इसमें साधन अर्थात् जीव व्याप्य होता है और साध्य या ब्रह्म व्यापक, अर्थात् जो ब्रह्म है, वह जीव की अपेक्षा अधिक व्यापक है, क्योंकि जहां जीव है, वहां ब्रह्म की सत्ता होना अनिवार्य है, परंतु जहां जीव नहीं है, ब्रह्म की सत्ता तो वहां भी विद्यमान रहती है। इस प्रकार जीव ब्रह्म में व्याप्य-व्यापक भाव है)।

**5. अपाश्रय :** श्रीमद्भागवत में इस लक्षण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जीव की तीन अवस्थाओं–जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति में जिस चैतन्य तत्त्व की सत्ता निरंतर रहती है तथा जो क्रमशः विश्व, तैजस व प्राज्ञ के नाम से प्रसिद्ध है। यही चिरंतर, नित्य, जीव के कर्मों की साक्षी रूप सत्ता ही अपाश्रय तत्त्व है। जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति इन तीनों से परे तुरीयावस्था में जिस तत्त्व की अनुभूति

होती है, वही अपाश्रय है। नाम विशेष यथा राजेन्द्र, सुरेन्द्र, कुत्ता, चिड़िया आदि तथा उनके रूप विशेष यथा मानवरूप, पशु रूप तो मात्र बाह्य, अस्थायी विशिष्टताएं हैं, जो समय के साथ-साथ परिवर्तित होती रहती हैं और मृत्यु पर इनकी सत्ता नष्ट हो जाती है। एकमात्र सत्ता जो स्थायी, निरंतर व अविनाशी है, वह इन सब में व्याप्त होते हुए भी इनसे पृथक् है। वही इन रूपों, नामों व देहों का बीज स्वरूप है, यही तत्त्व अपाश्रय है। इस तत्त्व का दर्शन व प्राप्ति ही मनुष्य का परम उद्देश्य है। यही भागवत का परम ध्येय है। इसी दशम् तत्त्व की प्राप्ति हेतु पूर्ववर्ती नव सर्ग से लेकर हेतु आदि तक का क्रमशः विवरण दिया गया है।

**दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षरणम्।**

श्रीमद्भागवत में दस लक्षणों की एक अन्य सूची भी मिलती है, जो निम्नलिखित है—

1. सर्ग
2. विसर्ग
3. स्थानम्
4. पोषणम्
5. ऊतयः
6. मन्वन्तरम्
7. ईशानुकथा
8. निरोधः
9. मुक्ति
10. आश्रय

## पुराणों की संख्या

पुराणों की संख्या प्राचीन काल से ही निश्चित व विवादरहित है। देवी भागवत व वामन पुराण आदि ग्रंथों में एक प्रसिद्ध श्लोक है, जिसमें बड़े ही सुंदर ढंग से सूत्रबद्ध शैली में पुराणों के नाम व संख्या दी गई है।

**मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टकं।**
**अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक पृथक।**

**(1 स्कंध, 3 अ. 22 श्लोक)**

अर्थात् म से दो, भ से दो व ब्र से तीन, व से चार पुराण प्रारंभ होते हैं। अ, ना, प, लिं, ग, कू और स्क से एक-एक पुराण प्रारंभ होता है।

मद्वयं = म से दो = 2 = मत्स्य व मार्कण्डेय
भ द्वयं = भ से दो = 2 = भागवत व भविष्य
ब्र त्रयं = ब्र से तीन = 3 = ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्मांड
व चतुष्टकं = व से चार = 4 = वामन, विष्णु, वायु, वाराह
अ, ना, प, लिं, ग, कू, स्क से एक-एक = 7 = अग्नि, नारद, पदम्, लिंग, गरुड़, कूर्म, स्कंद।

अर्थात् पुराणों की संख्या 18 है। पुराणों की संख्या 18 ही क्यों निर्धारित की गई, इसके पीछे भी भारतीय मनीषा की आध्यात्मिक व दार्शनिक मेधा की अभिव्यक्ति होती है। शतपथ ब्राह्मण में सृष्टि नामक 18 (17+1) इष्टिकाओं का प्रावधान है। ऋग्वेद में गायत्री और विराट छंद की बहुलता व प्रमुखता है तथा गायत्री के 8 व विराट के 10 अक्षर मिलकर 18 की संख्या बनाते हैं। 12 मास 5 ऋतुएं व एक संवत्सर मिलकर काल के 18 भेदों को प्रकट करते हैं। सांख्य दर्शन में 10 इन्द्रियां (5 ज्ञानेंद्रियां, 5 कर्मेन्द्रियां) + 5 महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश) +मन+प्रकृति+पुरुष मिलाकर 18 तत्वों को अभिव्यक्त करते हैं। महाभारत महाकाव्य के पर्वों की संख्या 18 है, श्रीमद्भगवतगीता के अध्यायों की संख्या 18 है व श्रीमद्भागवत के श्लोकों की संख्या 18 हजार है। इसी प्रकार इस संपूर्ण ब्रह्मांड के सब पदार्थ स्थान की दृष्टि से 3 लोकों से संबद्ध हैं (पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश)। यास्क के निरुक्त के अनुसार प्रत्येक पदार्थ की 6 अवस्थाएं हैं : अस्ति (सत्ता), जायते (उत्पत्ति), वर्धते (वृद्धि), परिणमते (पकाना), अपक्षीयते (ह्रास) तथा विनश्यति (विनाश)। इन 6 अवस्थाओं की 3 लोकों से नित्य संबद्धता के कारण सृष्टि परस्पर 18 अवस्थाओं से आबद्ध है।

अध्याय 3

# भारतवर्ष का पौराणिक भूगोल

पुराणों में भूगोल से संबंधित बहुत ही रोचक जानकारी प्राप्त होती है। इसमें पौराणिक संदर्भ में तत्कालीन विश्व व भारत की भौगोलिक सीमाओं की जानकारी दी गई है, जो 'भुवनकोश' खंड में वायु, मत्स्य, ब्रह्मांड और मार्कण्डेय पुराणों में काफी विस्तार से प्राप्त होती है। ब्रह्म पुराण में उत्कल प्रांत (वर्तमान उड़ीसा), अग्निपुराण में गया जी, ब्रह्मवैवर्त में कृष्णलीला भूमि वृन्दावन व गोकुल, वाराह पुराण में मथुरा, स्कंद पुराण में काशी व रेवा (नर्मदा) तथा वामन पुराण में आंध्र देश का भौगोलिक विवरण प्राप्त होता है। विश्व भूगोल के संबंध में हमें वायु, मत्स्य व विष्णुपुराण में चतुर्द्वीपी व सप्तद्वीपा पृथ्वी का वर्णन मिलता है। पौराणिक भूगोल को विस्तार से समझने से पूर्व किंचित बातों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है। पौराणिक काल में वर्णित भूगोल आज के भूगोल से भिन्न है, क्योंकि समय के साथ आधुनिक समय में ही भौगोलिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हो गए हैं। यथा—कोलंबस द्वारा भारत की खोज का प्रयास करते समय अमेरिका को 1453 में खोज लेना, बेजेनटाईन साम्राज्य के व्यापारिक मार्गों द्वारा कीव नगर के केंद्र बिंदु से आधुनिक रूस की स्थापना, जहां आज हिमालय है, वहां भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार टैथिस या टिथीस समुद्र था और हिमालय बहुत ही नवीन पर्वत श्रृंखला है। कहने का तात्पर्य है कि पुराणों के वर्णन के पश्चात् विभिन्न भौगोलिक व राजनैतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप नदियों, पर्वतों, नगरों व देशों के स्थान और नामों में इतना परिवर्तन आ गया है कि लोग तथ्य की कल्पना व सत्य वर्णन को केवल मिथक मानते हैं।

भारतीय संस्कृति का आधार सदैव से प्रतीकात्मक व सूत्रात्मक रहा है अर्थात् कम-से-कम शब्दों में अधिक-से-अधिक कहने का प्रयास। दूसरी विशिष्टता यह है कि **यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे** की भावना के अनुरूप प्रत्येक वर्णन में, सिद्धांत में,

प्रयोग में मानव देह की प्रतीकात्मकता की पुराणों के मुनियों पर सदैव अमिट छाप रही है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि पौराणिक भूगोल में द्वीप व समुद्रों के वर्णन में प्रयुक्त अर्थ आधुनिक अर्थ से थोड़ा भिन्न स्वरूप लिए है। द्वीप का अर्थ केवल चारों ओर जल से घिरी भूमि का क्षेत्र तो है ही, परंतु साथ ही इसका तात्पर्य यह भी है कि यह घेराव जल के अतिरिक्त मरुस्थल या दुर्गम पर्वत श्रेणी का भी हो सकता है, जिससे पृथ्वी का वह क्षेत्र सरलतापूर्वक मार्ग द्वारा साध्य न हो या यह प्राकृतिक रचनाएं एक विभाजक सीमा का कार्य करती हों। दूसरे, समुद्र शब्द के संदर्भ में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि समुद्रों के नाम यथा—क्षीर सागर, दधि सागर, घृत सागर आदि का प्रयोग इनके शाब्दिक अर्थ न लेकर इससे उनके रंग, क्षारता, घनत्व, शांत या चंचल प्रकृति व खनिजों की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए किया गया है (जैसे आज भी लाल सागर अथवा काला सागर का अर्थ यह तो नहीं है कि वह समुद्र काले जल या लाल रंग के जल से व्याप्त है)। पुराणों में शब्दों को, भावों को, प्रतीकों को, प्रक्रियाओं को एक विशिष्ट संदर्भ में अनुभूत किया गया है। पौराणिक शब्द केवल पढ़ने के लिए नहीं अपितु मनन करने के लिए, संस्कार प्रवाह के बोध को जागृत करने के लिए व बोध के मानसिक भोग के लिए है।

विभिन्न पुराणों के अनुसार पृथ्वी के केन्द्र में सुवर्णमयी मेरु पर्वत स्थित है, जिसके दक्षिण में जंबूद्वीप, पूर्व की ओर भद्राश्व, पश्चिम में केतुभाल और उत्तर में कुरु है। भौगोलिक संदर्भ में मेरु पर्वत का तात्पर्य पामीर पठार से है, जिसके दक्षिण में जंबूद्वीप रूपी भारत, पूर्व की भद्राश्व अर्थात् कल्याणकारी घोड़ा, जिसका तात्पर्य चीन से है (घोड़े व चीन के विस्तृत संबंध के लिए ए. एल. वाशम की 'ए कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया' देखें)।

केतुलभाल से तात्पर्य पश्चिम सीर (यक्षत्रु) और आमू (वंक्षु) की घाटी तथा आइजरबाइजान देश (जो वस्तुतः आर्य बीज स्थान का अपभ्रंश है) से लेकर कैस्पियन सागर (जो वस्तुतः कश्यप सागर का अपभ्रंश है) तक का क्षेत्र हैं। उत्तर कुरु से तात्पर्य एक और बाइकाल झील से ऊपर का साइबेरिया (जो संस्कृत के शिविर शब्द का अपभ्रंश है। रूसी भाषा में इसे साइबेरिया न कहकर आज भी सिविर ही कहा जाता है)। या दूसरी ओर यारकंद व मंगोलिया क्षेत्र हैं। इस चतुर्द्वीपीय विश्व के वर्णन को पुराणों में **चतुष्पत्री भुवनपदम्** की संज्ञा भी दी गई है। इन चारों महाद्वीपों में से प्रत्येक का अपना एक विशिष्ट पर्वत, नदी, वृक्षकुंज व आराध्य देव की स्थिति थी। पृथ्वी के इस चतुर्द्वीपीय विभाजन के पश्चात् एक अन्य प्रकार का वर्गीकरण पृथ्वी का सप्त द्वीपों के रूप में मिलता है। इस वर्णन में जंबूद्वीप

की स्थिति मध्य में है और वह सात द्वीपों द्वारा वेष्टित है, जो एक-दूसरे से एक-एक समुद्र के द्वारा पृथक हैं। यह इस प्रकार है :

5. वृक्ष वट
4. भगवान-मत्स्य
3. वन : सावित्र प्रकृतिः महाभद्र सरस
2. नदी : सोमा
1. पर्वत : श्रृंगी

उत्तर कुरु-उत्तर

**केतुभाल–पश्चिम**

1. पर्वत : ऋषभ पारियाभ
2. नदी : वक्षु (आमूदरिया)
3. वन : वैभ्रण
4. भगवान : वाराह
5. वृक्ष : अश्वत्थ (पीपल)
6. प्रकृति : शीतोद सरस

मेरु
(इलावृत्त वर्ष)

**पूर्व दक्षिण–भद्राश्य**

1. पर्वत : देवकूट
2. नदी : सीता
3. वन : चैमरथ
4. भगवान : हयग्रीव
5. वृक्ष : भद्रकादम्ब
6. प्रकृति : अरुणोद सरस

**दक्षिण**

जम्बूद्वीप (भारतभूमि)

1. पर्वत : कैलाश
2. नदी : अलकनन्दा
3. वन : नन्दन
4. भगवान : कच्छप
5. वृक्ष : जम्बू (जामुन)
6. प्रकृति : मानस-सरस

दार्शनिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में मेरु पर्वत वस्तुतः भगवान विष्णु के नाम से प्रस्फुटित होने वाले कमल की मृणाल है, जिस पर चतुर्दलीय सृष्टि रूपी कमलदल स्थित है।

1. जंबूद्वीप ↓ क्षार समुद्र द्वारा घिरा हुआ
2. प्लक्ष द्वीप ↓ इसुरस द्वारा घिरा हुआ
3. शाल्मलि द्वीप ↓ सुरा समुद्र द्वारा घिरा हुआ
4. कुशद्वीप ↓ घृत समुद्र द्वारा घिरा हुआ
5. क्रौञ्च द्वीप ↓ दही के समुद्र द्वारा घिरा हुआ
6. शकद्वीप ↓ क्षीर समुद्र द्वारा घिरा हुआ
7. पुष्कर द्वीप ↓ स्वादिष्ट जल राशि द्वारा घिरा हुआ

इन द्वीपों में से **शक द्वीप** का वर्णन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण, तथ्यात्मक व प्रामाणिक है। मत्स्य पुराण के अनुसार शकद्वीप में भी सात पर्वत, सात वर्ष (खंड) और सात नदियां हैं और इनके दो-दो नाम हैं। द्विनामानः (मत्स्य पुराण, अध्याय 121)। इस द्वीप का भूगोल प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस (ई) द्वारा वर्णित वृत्तांत से भी काफी मिलता है, जिससे पौराणिक नामों की पुष्टि होती है :

| संस्कृत | यूनानी |
|---|---|
| 1. शकद्वीप | सी-दिया |
| 2. वर्ष : सुकुमार | कोमारोई |
| 3. पर्वत : जलधार | सलतेरोई |
| 4. नदी : इक्षु | आक्सस |
| 5. यूग | मरगिआना (मर्व : वर्तमान) |

भविष्य पुराण के अनुसार जंबूद्वीप की भांति इस द्वीप में चतुर्वर्णीय विभाजन था।

**मगाः ब्राह्मणभूयिष्ठा मगगाः क्षत्रियाः स्मृताः।**
**वैश्यास्तु गानगा ज्ञेयाः शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः।**

**(भविष्य पुराण 1/139)**

जिसके अनुसार शकद्वीपीय जातियां चार वर्णो मग, मगग, गानग व मन्दग में विभक्त हैं। मग ब्राह्मण है, मगग क्षत्रिय है, गानग वैश्य है तथा मन्दग शूद्र है। ई. पू. दूसरी शती शक जाति ने भारत में प्रवेश किया और ईरान (आर्यान शब्द का अपभ्रंश) का पूर्वी प्रांत शक स्थान या सिसिस्तान के रूप में प्रसिद्ध था। यही मग ब्राह्मण कालांतर में शाकलद्वीपीय ब्राह्मणों के रूप में प्रसिद्ध हो गए, जो आज भी भारतीय समाज के अभिन्न अंग हैं।

गरुड़ पुराण के अनुसार भगवान कृष्ण के पुत्र साम्ब को कुष्ठ रोग से निवृत्ति के लिए चिनाब (चन्द्रभागा का अपभ्रंश) के तट पर स्थित मूल स्थान,(जो आजकल पाकिस्तान में 'मुल्तान' के नाम से प्रसिद्ध है) में सूर्य भगवान के मंदिर की स्थापना के समय बुलाया था और इस स्थान पर सूर्य विग्रह की स्थापना की गई थी। इस शकद्वीप को चारों ओर से पुराण क्षीरसागर के द्वारा वेष्टित बताते हैं। क्षीर सागर की वास्तविकता क्या है ? वस्तुतः कश्यप सागर या वर्तमान में कैस्पियन समुद्र, जो अब वास्तव में एक अंतर्देशीय समुद्र या बहुत बड़ी भू आवेष्टि झील के रूप में रह गया है, भू आवेष्टित होते हुए भी समुद्र क्यों कहलाता है? क्योंकि प्राचीन काल में काला सागर, कश्यप सागर एक थे, अरब सागर भी इसी समुद्र का भाग था, जो बैकाल झील तक फैला हुआ था। बैकाल झील आज भी विश्व की मीठे जल की सबसे बड़ी झील है और तदनुरूप पौराणिक काल में कश्यप सागर

भी मीठे जल की झील रही होगी और ईरान के लोग इसे शीरवान कहते थे। फारसी में शीर का संस्कृत में अर्थ खीर ही है। क्षीर के समान मीठे जल का होने के कारण यह क्षीर सागर कहलाता था। आज भी ईरान में एक नदी का नाम शीरी है तथा रूस का उत्तरी तट श्वेता समुद्र कहलाता है तथा अरब की खाड़ी के निकट का क्षेत्र क्रीट (क्षीर का अपभ्रंश) सागर कहलाता है।

मार्कोपोलो नामक प्रसिद्ध यात्री ने जो 13वीं शताब्दी में भारत आया था, उसने उस समय तक प्रचलित **'शीरवान'** क्षीरवान समुद्र का वर्णन किया है। बहुत कम लोग ही इस तथ्य से परिचित होंगे कि मिस्र की प्रसिद्ध नील नदी के उद्गम स्थल की खोज कैप्टन स्पीक ने पुराणों में वर्णित भूगोल के आधार पर ही की थी।

आध्यात्मिक व दार्शनिक दृष्टि से यह मेरुपर्वत मनुष्य की मेरु-रज्जु या रीढ़ की हड्डी है (इसीलिए यह मेरु संज्ञा से जानी जाती है) और यह सात द्वीप इसके चारों ओर स्थित विभिन्न चक्र हैं, जो शरीर के विभिन्न भागों पर स्थित हैं।

**जंबूद्वीप, भारत एवं उत्तरकुरु चिभोडयम् जंबूद्वीपम्।**
**धन्योऽसि जीवितं मनुष्याणाम्।**

**(भगवान बुद्ध : वैशाली में महा परिनिर्वाण से पूर्व)**

प्रत्येक पुराण और स्मृति ग्रंथ महाभारत में जहां कहीं भी भुवनकोश का वर्णन आता है, वहीं पर केन्द्र में मेरु पर्वत या जंबू द्वीप की चर्चा होती है, जिसके दक्षिण में भारत है। पौराणिक काल से आज तक के समय तक लोगों में कोई भी शुभ कार्य या संकल्प करने से पूर्व विनियोग में भी जंबूद्वीप भरतखंड कुमारिका क्षेत्र की चर्चा आती है। अतः तर्क-कुतर्क चाहे कोई भी करे, भारतीय जनमानस की सनातन परंपरा इस प्रगाढ़ विश्वास में कोई-न-कोई तथ्य तो अवश्य छुपाए है। परंपरा का प्रवाह प्राचीन स्मृतियों को अतीत में ढकेल देता है, क्योंकि सृष्टि व जीवन के प्रवाह वेगों में भिन्नता है। देश और काल दोनों में प्रतिदिन लघु व विराट का भ्रम काल्पनिक अंतर कर देता है। व्यक्त अपूर्णता अव्यक्त पूर्णता से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती। आकाश व काल की संधि पर अपनी सापेक्ष स्थिति को अभिव्यक्त करके ही हम कोई कार्य करते हैं। संकल्प में सर्वप्रथम हम अपने मानकों के अनुरूप अकाल (यहां अकाल का तात्पर्य उस कालखंड से है, जो दिन व रात में विभक्त नहीं है, जो सूर्य से भी पूर्व का है और प्रलय के पश्चात् भी रहेगा) व महाकाल की सीमाओं में वह ब्रह्मांड से अपना सावधि कालखंड व सीमित आकाश को समाहित करते हैं।

उपरोक्त देशकाल को लोक व्यवहार में समझने के लिए कृपया संकल्प को बहुत ध्यान से पढ़ें :

**"हरि ॐ तत्सत। श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्री ब्रह्मणो अहि द्वितीये प्रहरार्धे श्री श्वेत वाराह कल्पे सप्तमे वैवस्वत मन्वंतरे अष्टाविंशतित्तमे युगे कलियुगे प्रथम चरणे। भूर्लोके जंबू द्वीपे भरत खण्डे भारतवर्ष कुमारिका ख़ण्डे आर्यावर्त देशान्तरगते अमुक क्षेत्रे, अमुक नगरे, अमुक संवत्सरे, अमुक मासे, अमुक पक्षे, अमुक तिथि, अमुक राशि सूर्य, अमुक राशि चन्द्र, अमुक नक्षत्र।**

तात्पर्य यह है कि कोई भी कार्य करते समय हम पूरे काल चक्र का स्मरण करते हुए कहते हैं कि विष्णु भगवान की आज्ञा से ब्रह्म और अग्नि को साक्षी मानते हुए ब्रह्मा के दूसरे प्रहर के अर्ध भाग में, श्वेत वाराह कल्प में, सातवें वैवस्वत मन्वंतर में, अष्टाविंशति कलियुग में, कलियुग के प्रथम चरण में, भूलोक में, जंबू द्वीप के भरत खंड, भारतवर्ष व कुमारिका खंड के आर्यावर्त देश में उदाहरणार्थ—दिल्ली नगर में (इंद्रप्रस्थ), वर्तमान संवत्सर में, हम यह पुण्य कार्य करने जा रहे हैं।

एक साधारण-से-साधारण कार्य के संकल्प में हम महाकाल को पटल-दर-पटल उघाड़ते हुए एक ऐसे बिन्दु पर पहुंचते हैं, जहां हम अपने काल की गति को सृष्टि की गति के अनंत प्रवाह से जोड़ लेते हैं। हम सीमित रहते हुए भी असीमित से जुड़ जाते हैं, देश की सीमा में रहते हुए भी देश की सीमा से परे हो जाते हैं, यही पुराणों का सार संक्षेप में मूल भाव है।

पुनः अब हम मूल प्रश्न जंबूद्वीप की भौगोलिक स्थिति की ओर मुड़ें, तो हमें यह प्रमाण मिलता है कि उत्तरकुरु वाले हवि अपने दक्षिण के भूखंड को जंबूद्वीप कहते हैं। इसी तथ्य का अवशेष भारत के उत्तरी राज्य के जम्मू नामकरण में मिलता है, जो उत्तरकुरु का दक्षिण था। उत्तरकुरु मूलतः पामीर (पा-मेरु) पठार के उत्तर में था और जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि साइबेरिया इसके अतर्गत आता था। (आज भी साइबेरिया का एक प्रमुख नगर ॐ के नाम से प्रसिद्ध है)। अतः विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जंबूद्वीप के अंतर्गत आज का भारत, पाकिस्तान व अफगानिस्तान आते हैं। अफगानिस्तान को ग्रीक इतिहासकार तो अपने संपूर्ण वृत्तांतों में इंडोमीर या लघु भारत कहते थे। बौद्ध ग्रंथों में तो भारत शब्द का प्रयोग मिलता ही नहीं, अपितु इनके प्रचलन में जंबूद्वीप का ही अधिक व्यवहार रहा है। अशोक के शिलालेख इसके जीवंत प्रमाण हैं। अशोक स्वयं को जंबूद्वीपेश्वर कहता था। अशोक के द्वितीय शिलालेख (II. M.R.E.) व तेरहवें शिलालेख (XIII. M.R.E.) में जंबूद्वीप की सीमाओं का स्पष्ट वर्णन मिलता है। भगवान बुद्ध ने अपने जीवन की अंतिम यात्रा में वैशाली के एक ऊंचे टीले पर खड़े होकर जी-भर लंबी सांस लेकर, आंखें चारों दिशाओं में घुमाकर देखा था और कहा था—"यह

**जंबूद्वीप एक चित्रशाला की तरह विचित्र है और यहां के मनुष्यों का जीवन धन्य है।''** संभवतः जंबूद्वीप की सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक परिभाषा विद्वान् ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय ने प्रस्तुत की है। **जंबूद्वीप भारतवर्ष की उस भावसत्ता का नाम है, जिसे चिन्मय भारत कहा गया है। जंबूद्वीप चिन्मय भारत का अंतर्राष्ट्रीय संस्करण** है। उन्होंने जंबूद्वीप के पांच अर्थ बताए हैं 1. विवस्वान यम का देश, 2. सूर्य का देश, 3. वज्रशिव या वज्रबुद्ध का देश, 4. दक्षिण दिशा का देश और सबसे बढ़कर 5. काली जामुन जैसे सुंदर श्याम वर्ण वाले निषादों का देश (विस्तृत विवरण के लिए निबंध संग्रह 'उत्तरकुरु' देखें)।

यमुना नदी का भी जंबूद्वीप से घनिष्ठ संबंध है। वस्तुतः यमुना का मूलरूप है जंबू-ना अर्थात् जंबूद्वीप की नदी। 'ना' शब्द सदैव से जलधारा से संबद्ध रहा है (नारायण, नीर, नार, नारी) और आज भी किरात-निषाद भाषा में यह प्रचलित है।

**भारत :** भारत को पौराणिक संकल्प में जंबूद्वीप का खंड कहा गया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भारत एक पौराणिक शब्द है। इसका गर्भनालगत संबंध सृष्टि की सृजन प्रक्रिया चिरप्रवाहिनी व सनातन सांस्कृतिक परंपरा से है, परंतु इस नाम से भी पूर्व इस पवित्र भूमि का सर्वप्रथम नाम क्या था ? इस पुण्यशालिनी मंगलमयी वसुन्धरा की सबसे पहली संज्ञा **अजनाभ वर्ष** (भाग. 5। 7। 3) थी। अजनाभ का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—आदि सिसृक्षा की कारयित्री शक्ति 'अज' या **विधाता की नाभि के कमल पर स्थित देश अर्थात् सृजन के प्रथम उन्मेष के समय** क्षीरसागर में शयनरत भगवान विष्णु की नाभि से प्रस्फुटित कमल की कर्णिका पर **स्थित ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित प्रथम** लोक। (वस्तुतः यह क्षेत्र भौगोलिक रूप से नैमिषारण्य या चक्र तीर्थ है, जहां से मानव की उत्पत्ति हुई और मनु तथा शतरूपा ने मानव संतति का जन्म चक्र प्रारंभ किया) इसी कारण पुराणों का अधिकांश प्रवचन सूतजी ने नैमिषारण्य में ही किया।

अजनाभ वर्ष के बाद इस भूखंड को हैमवत वर्ष, हिमवंत देश या हिमवर्ष की संज्ञा दी गई (वायु पुराण 35। 32), इस नामकरण का कारण था, इस वर्ष या देश में सीमा विभाजक के रूप में हिमवत् गिरि का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पश्चात् जंबूद्वीप के इस दक्षिण खंड का बहुप्रचलित 'भारतवर्ष' नाम प्रसिद्ध हुआ। एक मत की धारणा तो यह है कि (विशेषतः जैन संप्रदाय की) ऋषभदेव के पुत्र एवं बाहुबली के भाई चक्रवर्ती भरत के नाम पर इसका नाम 'भारत' पड़ा। जैन परंपरा ही नहीं, अपितु श्रीमद्भागवत (एकादश स्कंध) और विष्णु पुराण (अंश 2, अध्याय 1) भी इसी मत का समर्थन करते हैं कि इस देश के 'भारत' नामकरण में चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम की ही भूमिका है। एक अन्य मत के अनुसार, जिसका समर्थन

महाभारत व अन्य विस्तृत वाङ्मय ग्रंथ करते हैं, के अनुसार इस भूखंड का भारत या भारतखंड नाम शकुंतला के पुत्र भरत के नाम पर पड़ा है, जो कुरु वंश के पूर्वज थे, इसके बाद का भारतवर्ष का भूगोल पुराणों में दो प्रकार से अभिव्यक्त हुआ है (क) कार्मुक संस्थान, (ख) कूर्म संस्थान। कार्मुक संस्थान से अभिप्राय है कि समग्र भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति कार्मुक या धनुष के समान है, जिसकी प्रत्यंचा या डोरी उत्तर में तथा खींचा हुआ दंड दक्षिण की ओर फैला हुआ है।

**दक्षिणापपरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः।**
**ह्रिनानुत्तरेणायस्य कार्मुकस्य यथा गुणाः।।**

**(मार्कण्डेय पुराण 57/60)**

मार्कण्डेय पुराण के 57वें अध्याय में इसी संस्थान के अनुरूप भारतवर्ष के 7 कुलपर्वतों, नदियों और जनपदों की सूची दी गई है। यही विवरण कूर्म पुराण (पूर्वार्ध 46), ब्रह्मांड पुराण (अ. 49), मत्स्य पुराण (अ. 114), वायु पुराण (अ. 45) और वामन पुराण तथा श्रीमद्भागवत् पुराण पंचमस्कन्ध (16-20 अ.) में प्राप्त होता है।

कूर्म संस्थान के विवरण के अनुसार भगवान विष्णु के कच्छप अर्थात् कछुआ अवतार की भावना को भारतवर्ष का आधार मानकर उसके विभिन्न अंगों के सदृश भारत को नौ भागों में विभक्त किया गया है। इसका मुख पूर्व में है और इसी आधार पर भारतीय जनपदों का विभाजन किया गया है। कूर्म संस्थान का विवरण मार्कण्डेय पुराण के 58वें अध्याय में विस्तार से वर्णित है। उत्तरांचल राज्य का कुमाऊं क्षेत्र आज भी कूर्मांचल के नाम से जाना जात्म है। इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण ही ऐसा पुराण है, जिसमें दोनों संस्थानों का विवरण एक ही पुराण में एवं एक ही स्थान पर मिलता है। एक अन्य प्रमुख बिंदु जिस पर सभी पुराण सहमत हैं, वह यह है कि संपूर्ण पृथ्वी पर केवल जंबूद्वीप का भारत खंड ही कर्मभूमि है, शेष खंड मात्र भोगभूमि है :

**पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्मभूमिरुदाहृता।**

**(ब्रह्म पुराण 27/2)**

**अमापि भारतं श्रेष्ठं जंबूद्वीपे महाभुने।**
**यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोरन्या भोगभूमयः।**

**(विष्णु पुराण 2/3/22)**

अर्थात् किए गए कर्मों का फल केवल इस मधुमय, सुजलाम्, सुफलाम् मलयजशीतलाम् भारत भूमि से ही होता है। यही पृथ्वीलोक की कर्मभूमि है और कर्मलोक है।

इन विभिन्न भेदों के अतिरिक्त पुराणों में भारतवर्ष का नवखण्डात्मक विभाजन भी मिलता है। मत्स्य पुराण (114/78), मार्कण्डेय पुराण (57/5) में इन नव खंडों

की संज्ञा इस प्रकार है : 1. इन्द्रद्वीप (जो आजकल अंडमान द्वीप के नाम से प्रसिद्ध है), 2. नागद्वीप (निकोबार द्वीप समूह), 3. ताम्रपर्ण (श्रीलंका), 4. वारुण द्वीप (इंडोनेशिया का बोर्नियो द्वीप), 5. कसेरु (मलय द्वीप), 6. गर्भाज्ञताभान, 7. सौम्य, 8. गन्धर्व द्वीप तथा 9. स्वयं भारत। वामन पुराण के अनुसार यह नवम् खंड जो स्वयं भारत भूमि थी, कुमारी द्वीप के नाम से प्रसिद्ध था। (यह उस मनःस्थिति का द्योतक है, जब तीनों ओर समुद्र व उत्तर में हिमालय से घिरा होने के कारण तंत्रशास्त्रीय दृष्टि से भारत को भागवती तनु मानकर इसे कुमारी खंड की संज्ञा दी गई। भारत का दक्षिणी बिंदु आज भी कन्याकुमारी कहलाता है)। स्वामी दिव्यात्मानंद ने अपने यात्रा-प्रसंग 'पुण्यतीर्थ भारत' में कहा है कि—दक्षिण भारतीय श्री विद्या उपासकों की धारणा है कि पवित्र भारतभूमि भी आसेतुहिमालय पर्यंत एक सिद्ध कन्या है, जिसका मूलाधार कन्याकुमारी है, जहां त्रिकोण में शक्ति का निवास है (दक्षिण भारत मुख्यतः त्रिभुजाकार है, जो शक्ति का प्रतीक है)। इसी मूलाधार से तीन स्नायु या नाड़ियां फूटती हैं : इड़ा, पिंगला व सुषुम्ना। इड़ा पर शैव-पीठ स्थित है, पिंगला पर वैष्णव पीठ और सुषुम्ना में स्वयं शक्ति ऊर्ध्वगमन करती है। कन्याकुमारी रूपी मूलाधार से उठने के पश्चात् मदुराई (सुंदरेश्वर शिव) व आलेयगढ़ (सुंदर राजन विष्णु) के मध्य सर्वाधिक चक्र स्थित है। आगे और ऊपर आने पर चिदम्बरम् (नटराज शिव) और श्रीरंगम (गोविंदराज विष्णु) के मध्य मणिपुर चक्र है। तीसरे अनाहत चक्र की स्थिति कालहस्ती के कालहस्तीश्वर शिव व बालाजी तिरुपति (वेंकटेश्वर विष्णु) के बीच है। उत्तरोत्तर और ऊर्ध्वागमन करने के पश्चात् यह शक्ति विश्वनाथ की नगरी काशी के काशी विश्वनाथ और वृंदावन के विष्णु अवतार श्रीकृष्ण के बीच स्थित विशुद्ध चक्र में स्थित हो जाती है। दोनों भौंहों के मध्य स्थित आज्ञा चक्र के अनुरूप केदारनाथ धाम (केदारेश्वर शिव) और बदरीनाथ (विष्णु के बदरीमय) के मध्य पहुंचकर गंगोत्री में इड़ा का और यमुनोत्री में पिंगला का अवसान हो जाता है और कुमारी शैलजा कैलाश पर्वत पर स्थित शिव के सहस्रार से सदा के लिए सायुज्य हो जाती है। इसीलिए यह भारत माता है, भारत संभवा है, भारत की जननी है और हम अपने श्रद्धा सुमन वन्देमातरम् कहकर समर्पित करते हैं। एक अन्य प्रकार से भी समष्टि व्यक्ति के अंतर्संबंध के रूप में मानव देह में भारतवर्ष की कल्पना की गई है। नाभि के नीचे दिव्य कामरूप कामाख्या का वास है, जिसके ऊपर हृदय में दिव्य वृंदावन और गोकुल है, भौहों के मध्य काशी है और कपाल के शीर्ष बिंदु पर सहस्रार में अयोध्या है, जिस पर कोई शत्रु, व्याधि या विकार नहीं चढ़ सकता। अनुभूति, भाव, भावना, चिंतन, मनन व अंतर्ध्यान करें, तो प्रत्येक देह में एक जीवित भारत है। प्रत्येक मनुष्य की भारतीय भूमि में भूमिका है। यही

मृण्मय, चिन्मय व शाश्वत भारत का प्रतीक है, जिसके बीच में वट वृक्ष के विस्तार व प्रस्फुटन की क्षमता है, जो वटवृक्ष से बीज रूप में संकुचित है। 'अहं भारतोऽस्मि'। भारत को देखो नहीं, स्वयं में पहचानो, भारत में घूमो नहीं, इसे अपने में ढूंढ़ो, भारत को भोगो मत, इसमें कर्मयोग करो, भारत जितना बाहर है, उतना तुम्हारे भीतर है। उदात्त, ललित, चिन्मय बीज रूप जिसके शाश्वत रूप का अंकुरण अग्निशिखा के रूप में करने की पुराण प्रेरणा देते हैं।

अंत में एक बिंदु और हलका-सा स्पर्श मात्र करना चाहूंगा। भारत का एक अर्थ वामन शिवराम आप्टे ने दिया है—अभिनेता—अर्थात् जो नाट्य, नृत्य व गायन जैसी गन्धर्व विद्याओं में प्रवीण हो। दूसरे शब्दों में ललित कला-रसिक या संस्कृति के जीवंत वाहक। इसीलिए संभवतः सरस्वती को भारती कहा गया है और भारत की प्राचीनतम नृत्य शैली को भरत-नाट्यम्। इसी संदर्भ में भारत शब्द की एक अन्य व्याख्या है—भा़ऱत = (भाव़राग़ताल) या जिसमें भावुकता, रागात्मकता व त्याग हो, वही भारतीय का संस्कार संपन्न भारतवर्ष है।

### उत्तर कुरु

हिमालय के उस पार कदली वन, पुण्यात्माओं का आश्रयभूत स्थल, कुरु व पांचाल से आगे भद्र, यवन, ब्राह्मलीक, कंबोज से भी आगे, वैसानख ताल को पार करने के पश्चात् है। योगभूमि उत्तर कुरु—

**दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे।**
**उत्तराकुरुवो राजन पुण्या सिद्ध निषेविता।।**

उत्तरकुरु की भारतीय इतिहास परंपरा व स्मृति पर इतनी गहरी छाप रही कि कुरु एक प्रमुख जन या जाति रही, जिसने कौरव व पांडवों को जन्म दिया और उन्होंने अपनी कर्मस्थली को कुरुक्षेत्र नाम दिया। वस्तुतः कश्यप सागर का उत्तरी भाग ही पौराणिक (आधुनिक रस) उत्तरकुरु है। यहां के निवासी ऋषि तुषार आर्य के नाम से प्रसिद्ध थे। प्रसिद्ध विद्वान् भाषा विज्ञानी आचार्य सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के अनुसार ऋ का रि और रु दोनों उच्चारण भारत में चलते हैं। ऋषि शब्द का समय के साथ रूपांतरण रुषि व फिर रूसी हो गया। यही ऋषि आर्य ऋषिकेश शब्द के मूल में है। (इसे कालांतर में संस्कृत में हृषीकेश कहा गया।) संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्राचीन तुर्किस्तान के खोतन, खुतन या कुशतन से लेकर ॐस्क तक का भू-भाग उत्तरकुरु था, जिसके बारे में मार्कण्डेय पुराण कहता है—

**तेष्वेव जायते तेषां गंध वर्ण-रसान्वितम्।**
**अभाक्षिकं महावीर्य पुटके पुटके मधु।।**

अध्याय 4

# पुराणों का संक्षिप्त परिचय

## 1. ब्रह्म पुराण

पुराणों के गणना क्रम में प्रथम स्थान होने के कारण यह पुराण 'आदि ब्रह्म' या आदिपुराण के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्माजी द्वारा कथित तथा भगवान श्रीकृष्ण को ब्रह्म मानकर उनका निरूपण करने के कारण भी यह ब्रह्म पुराण कहलाता है। पुराण सृष्टि की सृजन प्रक्रिया की गाथा का भी वर्णन करते हैं और सृजन के सर्जक ब्रह्माजी के होने के कारण भी यह ब्रह्म पुराण कहलाता है। इसके प्रारंभिक दो श्लोकों में से एक में ब्रह्म का तटस्थ लक्षण और दूसरे में स्वरूप लक्षण का वर्णन है। संपूर्ण ब्रह्म पुराण में 246 अध्याय हैं। इसमें किसी प्रकार का खंडात्मक या स्कंधात्मक विभाजन नहीं है। इसकी श्लोक संख्या लगभग 14 हजार है। संपूर्ण पुराण की कथा लोमहर्षण सूत जी व शौनक ऋषियों के संवाद के माध्यम से है। यद्यपि उसकी मूल कथा के वक्ता स्वयं ब्रह्माजी व श्रोता मरीचि हैं। इसमें सर्वप्रथम सृष्टि की उत्पत्ति व महाराजा पृथु के चरित्र का वर्णन है। **इन्हीं महाराज पृथु के संबंध के कारण यह मृर्त्यलोक पृथ्वी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।** गोरूपधारिणी पृथ्वी को दोहकर ही पृथु ने समस्त अंन्नादि पदार्थों को प्राप्त किया और प्रजा को जीवन धारण का आधार दिया। इसके पश्चात् 14 मन्वन्तरों तथा विवस्वान (सूर्य) की संतति परंपरा का विवरण है। सूर्य भगवान की उपासना-महिमा इस पुराण का एक प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है, जो उड़ीसा स्थित भगवान सूर्य के कोणादित्य तीर्थ (वर्तमान में कोणार्क) का बहुत ही विशिष्ट विवरण यहां प्राप्त होता है। इसके पश्चात् चंद्रवंश के वर्णन में भगवान श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित्र का माहात्म्य प्राप्त होता है। इसी प्रसंग में जम्बूद्वीप तथा विभिन्न द्वीपों सहित भारतवर्ष की महिमा का विवरण प्राप्त होता है। इस पुराण की एक अन्य प्रमुख विशिष्टता **पार्वती-आख्यान** है, जो बड़े विस्तार

से 34वें अध्याय से प्रारंभ होती है। शिव-पार्वती की कई कथाएं इस पुराण में प्राप्त होती हैं। यथा—विकृत रूप धारण करके शंकर जी स्वयं पार्वती के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर जाते हैं। पार्वती जी के पिता की स्वीकृति मिलने के पश्चात् विवाह निश्चित हो जाता है और देवगण बरात लेकर जाते हैं। वहां जाकर देवता लोग देखते हैं कि पार्वती जी की गोद में एक पांच मुख वाला बालक खेल रहा है। यह देखकर देवता क्रोधित हो जाते हैं और इंद्र उस बालक को मारने के लिए वज्र उठा लेते हैं, परंतु उनका हाथ स्थिर हो जाता है और शेष देवगण भी कुछ करने में असमर्थ हो जाते हैं। अब सभी भगवान शिव की स्तुति करते हैं और इंद्र का हाथ पुनः सामान्य हो जाता है और विवाह संपन्न हो जाता है। पार्वती जी की गोद में पंचमुखी बालक का क्या रहस्य है? इस प्रतीक का क्या अर्थ है? वस्तुतः पार्वती जी स्वयं आधा शक्ति हैं और शिव उनकी शक्ति से युक्त होकर ही सूक्त प्रक्रिया का श्रीगणेश करते हैं अन्यथा तो वह शव मात्र हैं, जो श्मशान में स्थित है। पांच मुख पांच तत्त्वों के प्रतिनिधि हैं, जिनके द्वारा इस सृष्टि का निर्माण होगा। (इसी भाव को आचार्य शंकर सौंदर्य लहरी ग्रंथ के आदि श्लोक में ही स्पष्ट कर देते हैं। **शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं**) पांच मुख वाले बालक का एक अन्य तात्पर्य भी है, भगवान शिव स्वयं पंचमुखी हैं और विवाह का ध्येय पत्नी के द्वारा पुत्र के रूप में स्वयं पति का ही जन्म होता है, अतः इसी कारण विद्वान पत्नी को **जाया** कहते हैं। इसी भाव के अनुरूप पंचमुखी शिव का बालरूप उनकी (मां पार्वती की) गोद में स्थित है। शिव का 5 के अंक का कई अन्य प्रकार से भी विशिष्ट संबंध है, जैसे स्वयं जगत-गुरु आदि शंकराचार्य ने 33 कोटि देवताओं के समूह को जनसाधारण के लिए संक्षिप्त करके पंच देव पूज्य का विधान स्थापित किया। इन पांच देवताओं को साधारण जन **शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति व गणेश** के रूप में पूजन करते हैं, परंतु इन पांचों की लिंग रूप में भी पूजा का विधान है। बाणलिंग (जो नर्मदा से प्राप्त होते हैं), शिव का प्रतीक है, शालिग्राम लिंग (जो गंडकी नदी से प्राप्त होते हैं), भगवान विष्णु का प्रतीक है, स्फटिक लिंग भगवान सूर्य का प्रतीक है, धातु-यंत्रक बिंदु लिंग शक्ति का प्रतीक है और रक्तवर्णिक चतुष्कोणीय प्रस्तरतिम गणपति का प्रतीक है। यही पंचलिंग है। यहां यह स्पष्ट करना भी महत्त्वपूर्ण है कि बहुत कम लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि माता पार्वती का एक पर्याय **पंचमुखी** भी है और रक्तवर्णीय पंच पुष्परूपी जवापुष्प (गुड़हल) माता पार्वती का प्रतीक माना गया है। शिव के पांच मुख सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर व ईशान के नाम से तो प्रसिद्ध हैं ही, तदनुरूप पंचकाशी—वाराणसी, गुप्तकाशी, उत्तरकाशी, दक्षिण काशी व शिवकाशी है। शिव आदि जगत

पिता, पार्वती आदि जगदम्बा हैं। अतः मनुष्य के भी पंचपिता (जन्मदाता, अन्नदाता, विद्यादाता, यज्ञोपवीतदाता, संस्कारदाता) माने गए हैं।

ब्रह्म पुराण का अन्य प्रसिद्ध प्रतिपाद्य विषय है—तीर्थ-माहात्म्य अर्थात् तीर्थों की महिमा का गुणगान यथा एकाग्र क्षेत्र, अवन्तिका, चक्र तीर्थ, अश्वभानु तीर्थ, गरुड़ तीर्थ व गोवर्धन तीर्थ आदि। इस प्रकार 79वें अध्याय से 277वें अध्याय तक लगभग 200 तीर्थों के महत्त्व, उसकी पाप विमोचनी शक्ति व पावनता का वर्णन है। परंतु ब्रह्म पुराण में जितने विस्तार से गौतमी नदी की व्यापक महिमा का वर्णन हुआ है, वैसा अन्य किसी पुराण में उपलब्ध नहीं होता। 70वें अध्याय से लेकर 375वें अध्याय तक अर्थात् 105 अध्यायों या दूसरे शब्दों में लगभग पुराण का आधा भाग गौतमी या गोदावरी की पवित्रता, दिव्यता व महत्ता का ही वर्णन करता है। गौतमी के संबंध में नारदजी से ब्रह्माजी कहते हैं कि गंगा के वास्तव में दो भेद हैं। विंध्य से उत्तर में भगीरथी गंगा व दक्षिण में गौतमी गंगा। भगीरथी गंगा का लोकहित हेतु राजा भगीरथ ने भगवान शंकर की जटाओं से अवतरण कराया था, जबकि गौतमी गंगा का महर्षि गौतम ने अवतरण कराया था। गोदावरी के उद्गम स्थल से लेकर उसके सागर में विलीन होने तक के मार्ग के तटवर्ती तीर्थों का जैसा चित्रमय, मनोहारी व काव्यमय वर्णन किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गौतमी के तटवर्ती तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन करते समय बड़ी ही रोचक कथाओं के माध्यम से बड़े ही महत्त्वपूर्ण व शिक्षाप्रद आख्यान प्रस्तुत किए गए हैं—यथा कपोत व व्याध का आख्यान, अंजना केसरी व हनुमान का आख्यान, भार्गव-अंगिरा आख्यान, अजीगर्त-शुनःशेष आख्यान, दधीचि-लोपायुक्त पिप्पलाद आख्यान, सरमा-पणि आख्यान, मधुच्छन्दस आख्यान, नागमाता कद्रू व गरुड़माता विनता की कथा तथा परशु-शाकल्य व चिच्चिकपक्षी आख्यान आदि प्रमुख हैं। गोदावरी में बृहस्पति के सिंह राशि में स्थित होने पर **सान-दान** की विशेष महिमा व विशिष्ट महत्त्व का भी विस्तार से वर्णन मिलता है तथा संभवतः **सिंहस्थ** नामक कुंभ पर्व का भी उत्तरोत्तर विकास इसी परंपरा के अनुरूप हुआ।

इसके पश्चात् 179वें अध्याय से 212वें अध्याय तक इन अध्यायों में भगवान श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन है। 213वें अध्याय में भगवान विष्णु के दत्तात्रेय अवतार का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसके पश्चात् अत्यंत संक्षेप में परशुराम अवतार व दशरथ नंदन भगवान श्रीराम की कथा प्राप्त होती है। अंत में भविष्य में मुरादाबाद जिले के संभल ग्राम में भगवान कल्कि के अवतार का संकेत प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त श्राद्ध, पितृकल्प व वर्णाश्रम धर्म के साथ सांख्य व योग-दर्शन के सिद्धांतों का तथा विद्या-अविद्या जैसे दार्शनिक विषयों का भी संक्षिप्त परंतु सटीक विवरण प्राप्त होता है।

इस पुराण की एक अन्य विशिष्टता भारतवर्ष की महिमा का बड़ा ही भावुक व मर्मस्पर्शी वर्णन है, जो 19वें से 26वें अध्याय में 'जम्बूद्वीप' शीर्षक से प्राप्त होता है। इस महिमा का एक श्लोक तो कालांतर में इतना प्रसिद्ध हो गया कि वह भारत की महानता का प्रतीक ही हो गया, जो इस प्रकार है—

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि**
**धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।**
**स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूते-भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्या।** (19/25)

## 2. पद्म पुराण

**हृदयं पद्मसंज्ञकम्।**

पुराण साहित्य में पदम् पुराण का अपने परिमाण के कारण एक विशिष्ट स्थान है। 50,000 श्लोकों वाला यह पुराण स्कंद पुराण को छोड़कर अन्य सभी 16 पुराणों से विस्तृत व विशाल है। इस पुराण के परिमाण का इतना विस्तार है कि यह श्रीमद्भागवत से तिगुना और जयसंहिता (महाभारत) से आधा है। पुराणों के मान्य पंच लक्षण तो इसमें यत्र-तत्र सम्मिलित किए ही गए हैं, परंतु मुख्यतः इसमें तीर्थों, व्रतों व विष्णु भगवान से संबंधित बहुत ही रुचिकर, श्रद्धा व भक्ति से परिपूर्ण आख्यान है, जिसकी विषयवस्तु दूसरे पुराणों से भिन्न है। (यहां पुराणों के संदर्भ में **आख्यान** व **उपाख्यान** शब्द का अर्थ जानना समीचीन होगा। **आख्यान** का अर्थ ऐसे अर्थ को प्रकाशित या उद्घाटित करना है, जिसका साक्षात्कार वक्ता ने स्वयं किया हो अर्थात् स्वानुभूत हो। आख्यान सदैव वृहद रूपीय होता है। उपाख्यान का तात्पर्य ऐसे अर्थ को प्रकाशित करने से है, जो वक्ता ने गुरु-शिष्य अथवा पिता-पुत्र परंपरा में सुनकर प्राप्त किया है तथा जो स्मृतिमूलक है। यह वक्ता द्वारा स्वानुभूत नहीं होता। यह सदैव अल्परूपीय होता है।) पदम् पुराण में कई प्रसिद्ध आख्यान व उपाख्यान प्राप्त होते हैं, यथा बलि-वामन का आख्यान, शकुंतला का उपाख्यान, नन्दा धेनु का उपाख्यान, गायत्री और सावित्री के उपाख्यान प्रसिद्ध हैं। इस पुराण के दो संस्करण उपलब्ध हैं 1. देवनागरी संस्करण, 2. बंगाली संस्करण, जिसके आधार पर इसके पांच खंड माने गए हैं—

**1. सृष्टि खंड, 2. भूमि खंड, 3. स्वर्ग खंड, 4. पाताल खंड, 5. उत्तर खंड।**

इसी विभाजन क्रम के आधार पर इस पुराण का वर्णन प्रस्तुत है।

## सृष्टि खंड

इस खंड में 82 अध्याय हैं और यह पुनः 5 पर्वों में या उपखंडों में विभाजित है, 1. पौष्कर पर्व, 2. तीर्थ पर्व, 3. तृतीय पर्व, 4. वंशानुकीर्तन, 5. मोक्ष पर्व। इसमें देवगण, मुनि, पितर तथा मनुष्यों की 7 प्रकार की सृष्टि की सृजन गाथा का विवरण है। पितरों का श्राद्धकर्म किस प्रकार शास्त्रोक्त विधि से करना चाहिए, इसका विस्तृत विवरण इस पर्व में भीष्म व पुलस्त्य संवाद के माध्यम से उपलब्ध होता है। इस पर्व में नर्मदा को पितृकर्म व पिण्डदान के लिए विशेष रूप से प्रशस्त माना गया है। श्राद्ध या पितृकर्म में चांदी अथवा चांदी से युक्त पात्रों का, स्वधा शब्द का, दक्षिण दिशा का, अपसव्य यज्ञोपवीत का, तिलदान का विशेष महत्त्व माना गया है, जो पितरों को सर्वदा संतुष्ट करता है। पितरों के श्राद्ध में कुश, उड़द, गाय का दूध, घी, मधु, मूंग, गन्ना और सफेद फूल का प्रयोग अतीव शुभ व मंगल फलदायक माना गया है। **पितृकार्य में विशेष ध्यान रखने वाली बात** यह भी है कि चाहे मनुष्य कितना भी धनवान और सामर्थ्यशाली हो, उसे श्राद्ध में एक ब्राह्मण को ही भोजन कराना चाहिए। श्राद्ध में विस्तार नहीं होना चाहिए। संतान की इच्छा रखने वाली पत्नी को मध्यम अर्थात् पितामह पिण्ड को खा लेना चाहिए। अपने नाम के अनुरूप इस पर्व में पुष्कर तीर्थ की महिमा का भी वर्णन प्राप्त होता है।

इसके पश्चात् पर्वतों, द्वीपों व सप्तसागरों का वर्णन प्राप्त होता है। 24वें अध्याय में आदित्य शयन और रोहिणी—चंद्र-शयन व्रत का वर्णन किया गया है, जो अत्यंत पुण्यशाली, मंगलकारी, अमंगलहारी व सुख सौभाग्य प्रदायक है। यह व्रत (आदित्य शयन) रविवार को यदि सप्तमी तिथि और हस्त नक्षत्र का योग हो अथवा सूर्य संक्रांति हो, तभी किया जाता है। इसमें विविध मंत्रों से सूर्यदेव व शिवलिंग का श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन किया जाता है। **इस व्रत में नमक का प्रयोग वर्जित है। रात्रि को भोजन कर सकते हैं।** अगले दिन पुनर्वसु नक्षत्र में दिन के पूर्व भाग में ब्राह्मण को शय्या का दान करना चाहिए और व्रत को पूर्ण समझना चाहिए।

इसी प्रकार रोहिणी चन्द्रशयन व्रत तभी किया जाता है, जब सोमवार को पूर्णिमा तिथि और रोहिणी नक्षत्र हो। तीर्थ महिमा के प्रसंग में यह पुराण इस बात की सूचना देता है कि किसी भी शुक्ल पक्ष में मंगलवार के दिन या चतुर्थी तिथि के दिन जो श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह मनुष्य कभी भी प्रेत नहीं होता। इसके पश्चात् कार्तिक पूर्णिमा में पुष्कर स्नान, प्राची सरस्वती के माहात्म्य व भगवान श्री रामचन्द्र जी के पुष्कर में जाकर पिताजी के श्राद्ध करने का वर्णन प्राप्त होता है। इसके पश्चात् भगवान श्रीराम व भरत जी द्वारा विभीषण का कुशल-क्षेम जानने

के लिए श्रीलंका पुरी की यात्रा, मार्ग में पुराने सखा सुग्रीव से ऋषम्यूक पर्वत पर भेंट और रामेश्वरम् में ज्योतिर्लिंग की पूजा का प्रसंग है।

36वें अध्याय में भगवान नारायण का माहात्म्य व प्रलयकाल में वट पत्र पर मार्कण्डेय ऋषि द्वारा भगवान के अद्भुत दर्शन का वर्णन है। 38 से 40वें अध्याय में भगवान शिव का चरित्र वर्जित है तथा तारकासुर के जन्म से कार्तिकेय द्वारा तारकासुर के वध तक की कथा प्राप्त होती है। 49वें अध्याय में माण्डव्य ऋषि और उनकी धर्मनिष्ठ व पतिव्रता पत्नी शैव्या की पतिभक्ति का जैसा उदाहरण प्रस्तुत है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ ही होगा। इसके पश्चात् तुलाधार वैश्य के माध्यम से सत्य भाषण की महिमा और लोभत्याग के विषय में एक शूद्र की कथा का प्रसंग भी प्राप्त होता है।

58वें अध्याय में रुद्राक्ष की उत्पत्ति और महिमा का वर्णन है। इसी अध्याय में माला जाप के प्रसंग में व्यास जी बताते हैं कि माला जाप सदैव मध्यमा अंगुली से लगे हुए दानों को क्रमशः अंगूठे से सरकाते हुए करना चाहिए तथा कभी भी मेरु का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

इसके पश्चात् आंवले के फल के विशिष्ट महत्त्व की चर्चा है, जिसमें कहा गया है कि एकादशी के दिन आंवले के जल से स्नान करने से असीम ऐश्वर्य व लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। एकादशी को यदि एक ही आंवला मिल जाए, तो गंगा स्नान, काशी यात्रा, गया पिंडदान व पुष्कर तर्पण के पुण्य का फल प्राप्त होता है। परन्तु यहां ईश्वर कार्तिकेय को यह भी स्पष्ट रूप से बताते हैं कि कब-कब इस पवित्र फल का सेवन नहीं करना चाहिए। **रविवार तथा विशेष रूप से यदि सप्तमी युक्त रविवार हो तो आंवले के फल को दूर से ही त्याग देना चाहिए। संक्रांति के दिन, शुक्रवार को तथा षष्ठी, प्रतिपदा, नवमी और अमावस्या को आंवले को ग्रहण नहीं करना चाहिए।** (ऐसा ही वर्णन स्कन्दपुराण में भी प्राप्त होता है।) रुद्राक्ष व आमला के माहात्म्य के पश्चात् महोदव तुलसी जी की महिमा का बखान करते हैं और मनुष्यों को यह परामर्श देते हैं कि घर में तुलसी का वृक्ष अवश्य होना चाहिए तथा जिस घर में तुलसी जी का वास होता है, वहां भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड व ब्रह्मराक्षस कभी प्रवेश नहीं करते। 59वें अध्याय में तुलसी स्रोत है, जिसका द्वादशी की रात्रि में जागरण करके पाठ करने का विधान दिया है।
**तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये। केशवार्थ चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने।**
**त्वदङ्गसंभववैर्नित्यं पूजयानि यया हरिम्। तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मल विनाशिनि।।**
**(59-11-13)**

इसके पश्चात् 60वें अध्याय में धर्मद्रवी, विष्णुपादाब्जसंभूत्ता, त्रिपथगामिनी गंगा जी की महिमा और उनकी उत्पत्ति गाथा का पवित्र वर्णन है। व्यास जी एक अत्यंत गूढ़ व रहस्यमय त्रिश्लोकी मंत्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो भी व्यक्ति पूर्व जन्मों के संस्कार होने के फलस्वरूप इस श्लोक का उच्चारण करते हुए गंगा जी के जल से स्नान करता है, उसके कोटि-कोटि जन्मों के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं।

**विष्णुपादार्घसंपूते गङ्गे त्रिपथगामिनी। धर्मद्रवीति विख्याते पाप मे हर जाह्नवी।**
**विष्णुपाद प्रसूतानि वैष्णवी विष्णु पूजिता। त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्।**
**श्रद्धया धर्मसंपूर्णे श्रीमता रजसा चते। अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीति माम्।**
**(60। 60-62)**

व्यास जी आगे कहते हैं कि अब मैं गंगाजी के एक ऐसे मूल मंत्र का वर्णन कर रहा हूं, जिसे साक्षात् भगवान श्री विष्णु जी ने कहा है तथा जो कोई भी इसका **एक बार** भी जाप करके श्री गंगाजी के पवित्र जल में स्नान कर लेता है, वह भगवान विष्णु के चरणों का सायुज्य प्राप्त कर लेता है—

**ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः।**

61वें अध्याय में गणेश जी की महिमा, स्तुति, पूजा का फल और 12 कल्याणकारी विघ्ननाशक नामों का वर्णन है।

1. गणपति, 2. विघ्नराज, 3. लम्बतुण्ड, 4. गजानन, 5. द्वैभातुर, 6. हेरम्ब, 7. एकदन्त, 8. गणाधिप, 9. विनायक, 10. चारुकर्ण, 11. पशुपाल, 12. भवात्मज।

इसके पश्चात् संक्रांति के पुण्य फल व भगवान सूर्य की उपासना के साथ यह सृष्टिखंड समाप्त हो जाता है।

## भूमि खंड

मुख्यतः वैष्णव पुराण होने के कारण इस ग्रंथ का हरि वैष्णव भक्ति व विष्णु महिमा से बना हुआ है तथा इसका प्रमुख उद्देश्य भी वैष्णव-शिव के समभाव को प्रतिपादित करता है। इसी भावना के अनुकूल भूमि खंड के प्रारंभ में शिव शर्मा ब्राह्मण के माध्यम से पितृभक्ति व वैष्णव भक्ति की बड़ी ही सुंदर गाथा प्रस्तुत की है। इसके पश्चात् वसिष्ठ ऋषि द्वारा सोम शर्मा नामक ब्राह्मण को पूर्वजन्म संबंधी शुभाशुभ कर्मों का वर्णन तथा भगवत भजन का उपदेश दिया गया है। इस उपदेश के फलस्वरूप सोम शर्मा द्वारा भगवान विष्णु की आराधना और भगवान द्वारा उन्हें दर्शन देना और सोम शर्मा द्वारा विष्णु भगवान की भावपूर्ण स्तुति का प्रसंग है।

इसके पश्चात वेन के पुत्र राजा पृथु के जन्म व चरित्र का वर्णन मिलता है, अगले अध्याय में मृत्युकन्या सुनीया को गन्धर्वकुमार-सुशंख द्वारा शाप, अंग की तपस्या और भगवान से वर प्राप्ति का प्रसंग प्राप्त होता है। इसके पश्चात् इस खंड में जैन धर्म के सिद्धांतों का परिचय मिलता है तथा वेन द्वारा पाप में प्रवृत्त होने पर सप्तऋषियों द्वारा उसकी भुजाओं के मन्थन से निषाद व पृथु के आविर्भाव की कथा पुनः प्रस्तुत की गई है। इसके पश्चात् पश्चाताप के फलस्वरूप भगवान वेन द्वारा विष्णु भगवान की तपस्या व भगवान विष्णु द्वारा उसे दान-तीर्थ आदि का उपदेश देने का वर्णन है। वेन को उपदेश देते हुए भगवान विष्णु कहते हैं कि है राजन, समय या काल के भेदानुसार दानकाल के चार भेद हैं—**1. नित्य, 2. नैमित्तक, 3. काम्य, 4. प्रायिक** (मृत्यु)।

**नित्य दान** में भगवान सूर्य को जल को अर्पण करने तथा अन्न, फल-फूल और वस्त्र आदि का दान देने का विधान है। **नैमित्तिक पुण्यकाल** में सोमवती अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी, संक्रांति, व्यातीपात वैधृति योग, मन्वादि एवं युगादि तिथियां, गजच्छाया (आश्विन कृष्ण) त्रयोदशी की तिथि के काल सर्वश्रेष्ठ माने गए हैं। **काम्यकाल** में व्रतों और देवताओं के निमित्त सकामभाव से किए दान को माना जाता है। **मृत्यु काल** अर्थात् मृत्यु के समय जो भी तथा जितना भी हो सके वह दान मृत्यु काल का दान माना जाता है, जो अतीव पुण्यदायक होता है। इसी सन्दर्भ में भगवान विष्णु कहते हैं कि दान पाने वालों में बहन का पुत्र (भानजा) तथा पुत्री का पुत्र (नाती या दौहित्र) को दिया गया दान अतीव पुण्यदायक होता है। इसी प्रकार दामाद (कन्या का पति), गुरु और यज्ञ की दीक्षा देने वाला पुरुष भी उत्तम पात्र माने गए हैं।

इसके पश्चात् सती सुकाला की कथा तथा एक शूकर और शूकरी का उपाख्यान, शूकरी द्वारा अपने पूर्वजन्म का वृत्तांत कहना तथा रानी सुदेवा के पुण्य से उसके उद्धार की कथा का प्रसंग है। तत्पश्चात् वेन द्वारा भगवान विष्णु से प्रार्थना करके पितृ तीर्थ के प्रसंग में पिप्पल की तपस्या और सुकर्मा की पितृभक्ति का वर्णन है। भगवान शिव और विष्णु की महिमा का बड़ा ही सुंदर वर्णन इस खंड के 72वें अध्याय में प्राप्त होता है। इस खंड में सुकर्मा सांसारिक जीवों के दुःख और कष्टों को देखकर आश्चर्यचकित होकर कहते हैं कि मर्त्यलोक में श्रीकृष्ण नामक अमृतमय रसायन होते हुए भी लोग कितने अभागे हैं कि उसका पान नहीं करते। भगवान विष्णु को प्रसन्न करने वाला, पुण्यदायक नामामृत स्तोत्र इस अध्याय की विशिष्टता है।

श्री केशव क्लेशहरं वरेण्य मानन्दरूपंपरमार्थमेव।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
श्री पदमनामं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम्।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
पापामहं व्याधिविनाश्यारूपमानन्ददं दानवदैत्य नाशनम्।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तररूपं।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम्।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
आदित्य रूपं तमसांविनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम्।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
सखङ्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम्।
नामामृत दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः
नामामृत दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः।
प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्ति न हि कारणं च।।

(73/10-17)

इसमें राजा सुकर्मा कहते हैं कि हरि, मुरारि, श्रीश, अच्युत, माधव, नरसिंह, कमलनयन, गोविन्द, कमलापति, कृष्ण, राम, मधुसूदन, वासुदेव, वामन, वाराह, मत्स्य आदि पवित्र व मंगलमय नामों का सदैव घर में उच्चारण करना चाहिए। इसके पश्चात् ययाति की जरावस्था, कामकन्या से उनकी भेंट, पुरुष का यौवन दान और ययाति का कामकन्या के साथ प्रजावर्ग सहित वैकुण्ठ धाम गमन का प्रसंग है। भूमिखंड के अंत में गुरुतीर्थ के प्रसंग में महर्षि च्यवन की कथा तथा कुंजल पक्षी द्वारा अपने पुत्र उज्ज्वल को ज्ञानव्रत और स्तोत्र का उपदेश देने का वर्णन है, जिसके पश्चात् तृतीय स्वर्ग खंड का प्रारंभ हो जाता है।

## स्वर्ग खण्ड

62 अध्यायों के इस खंड पुष्करतीर्थ व नर्मदा जी के तट तीर्थों का बड़ा ही पुण्य प्रदायक पापविमोचक वर्णन है। इसके अतिरिक्त अपने नामानुरूप इसमें देवता, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष आदि के लोकों का वर्णन है। इस खंड में प्रसिद्ध शकुंतलोपाख्यान है, जिसकी विषय वस्तु महाभारत से थोड़ी भिन्न है, परंतु कालिदास के अभिज्ञान

शाकुंतलम् पर इसकी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस खंड में दिवोदास, हरिश्चंद्र व मान्धता आदि राजाओं की गाथाओं का भी संकलन है। (पुराणों के संदर्भ में गाथा का अर्थ ऐसी पद्य रचनाओं से है, जिसमें किसी मान्य महीपति के असामान्य शौर्य अथवा दान के माहात्म्य का वर्णन है)। खंड के प्रारंभ में आदि सृष्टि के क्रम के वर्णन के पश्चात् सूतजी द्वारा भारतवर्ष के वर्णन में सात कुल पर्वत, 122 नदियों, उत्तर भारत के 135 जनपदों तथा दक्षिण भारत के 51 जनपदों और म्लेच्छ राजाओं का भी वर्णन है। इसी संदर्भ में 20 बलिष्ठ क्षत्रिय राजाओं की नामावली भी दी हुई है। इसके पश्चात् पुनः पुष्कर तीर्थ की महिमा का वर्णन है।

इसके पश्चात् नर्मदा नदी, अमरकंटक व नर्मदा-कावेरी संगम (ॐ कारेश्वर तीर्थ) की महिमा का नारद जी द्वारा वर्णन है। नारद जी कहते हैं कि सरस्वती नदी का जल तीन सप्ताह तक स्नान करने से पवित्र करता है, यमुना जी का एक सप्ताह स्नान करने से, गंगा जी का स्पर्श मात्र से परंतु नर्मदा जी का जल दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है। अमरकंटक तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन करते हुए नारद जी कहते हैं कि अमरकंटक पर्वत के चारों ओर कोटि रुद्र प्रतिष्ठित है, जिसके कारण वहां स्नान, दान व तर्पण की अनंत महिमा है। यदि कोई चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण के अवसर पर अमरकंटक की यात्रा करता है, उसे अश्वमेध से भी दस गुना अधिक फल प्राप्त होता है। इसके पश्चात् नर्मदा के तटवर्ती तीर्थों का बहुत ही विस्तार से वर्णन है। इन्हीं तीर्थों में से आश्विन मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में नर्मदा-एरंड संगम में उपवास करके केवल एक ब्राह्मण को भोजन करा देने से एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन कराने के बराबर फल मिलने का पुण्य माना गया है।

इसके पश्चात् विविध तीर्थों की महिमा का वर्णन करते हुए कश्मीर के विताता तीर्थ का वर्णन है, जिसे नागराज तक्षक का निवास स्थान माना गया है। व्रहां का किया स्नान व पितरों को तर्पण वाजपेय यज्ञ के सदृश माना गया है। इसके अतिरिक्त अर्बुदक्षेम, प्रभासक्षेम, सिंधु-समृद्ध संगम क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, पुण्डरीक तीर्थ, कपालमोचन तीर्थ, पृथूदक तीर्थ तथा सन्निहिता आदि तीर्थों का वर्णन है।

इसके पश्चात् अन्य पुराणों की भांति काशी तीर्थ व प्रयाग तीर्थ की महिमा का पुनः वर्णन किया गया है। (कई बार तार्किक लोग ऐसा संदेह करते हैं कि पुराणों में बार-बार काशी, प्रयाग व नर्मदा तथा गंगा के माहात्म्य को कहकर मुनियों ने पुनरुक्ति मात्र की है, इसमें नवीनता नहीं है। वस्तुतः ऐसा नहीं है, बार-बार इनके माहात्म्य की चर्चा का एक कारण तो यह है कि इन्हें बार-बार सुनकर इनका अभ्यास हो जाने से मनुष्य मात्र के अंतःकरण में इन तीर्थों की महत्ता इस प्रकार

समा जाए कि वह कभी-न-कभी यहां स्नान, तर्पण आदि कर्म करके अपना मानव जीवन सुधार सके।

इसका दूसरा आध्यात्मिक कारण यह है कि सिद्ध पुरुष जिस स्थान पर बैठकर योग साधना करते हैं, वह स्थान सिद्ध भूमि बन जाता है तथा इन स्थानों में विशिष्ट अदृश्य परंतु प्रभावी तेज तत्त्व विद्यमान हो जाता है, जो वहां यात्रा करने वालों को अवस्था-लाभ कराता है। वह तीर्थ स्थूल व सूक्ष्म रूपों में विद्यमान होते हैं और हमारे सीमित ज्ञान-चक्षु इस असीमित तत्त्व को देख नहीं पाते)। इसके पश्चात् ब्रह्मचर्य व गृहस्थाश्रम व अन्य आश्रमों के धर्मों का वर्णन है तथा व्यावहारिक शिष्टाचार का भी वर्णन है। इसके पश्चात् अंत में भगवान विष्णु के पुराणमय स्वरूप का बड़ा ही सुंदर वर्णन है।

| | | |
|---|---|---|
| 1. ब्रह्म पुराण | = | 1. हरि का मस्तक |
| 2. पद्म पुराण | = | 2. हृदय |
| 3. विष्णु पुराण | = | 3. दाहिनी भुजा |
| 4. शिव पुराण | = | 4. बायीं भुजा |
| 5. श्रीमद्भागवत पुराण | = | 5. अरुयुगल |
| 6. नारद पुराण | = | 6. नाभि |
| 7. मार्कण्डेय पुराण | = | 7. दाहिना चरण |
| 8. अग्नि पुराण | = | 8. बायां चरण |
| 9. विष्णु पुराण | = | 9. दाहिना घुटना |
| 10. ब्रह्मवैवर्त पुराण | = | 10. बायां घुटना |
| 11. लिंग पुराण | = | 11. दाहिना गुल्फ |
| 12. वाराह पुराण | = | 12. बायां गुल्फ |
| 13. स्कन्द पुराण | = | 13. ऐरों (रोए) |
| 14. वामन पुराण | = | 14. त्वचा |
| 15. कूर्म पुराण | = | 15. पीठ |
| 16. मत्स्य पुराण | = | 16. मेदा |
| 17. गरुड़ पुराण | = | 17. मज्जा |
| 18. ब्रह्मांड पुराण | = | 18. अस्थि |

इसके पश्चात् स्वर्गखंड के माहात्म्य के साथ यह खंड समाप्त हो जाता है।

## पाताल खण्ड

इस खंड में भगवान विष्णु के रामावतार व कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन है। खंड के प्रारंभ में शेषनाग भगवान के लंका से अयोध्या वापस आने के प्रसंग से कथा का प्रारंभ करते हैं और भरत मिलाप का बड़ा ही भावुक चित्रण प्रस्तुत होता है। इसके पश्चात् राम राज्य का वर्णन है, जिसमें आदर्श राज्य व्यवस्था के लक्षणों का वर्णन है। रामराज्य का बड़ी ही काव्यात्मक भाषा में वर्णन प्राप्त होता है। यथा, राम राज्य में केवल नदियां ही सदम्भा (उत्तम जल वाली) थीं। जनता सदम्भा (दंभ से युक्त) नहीं थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि कुलों में जन्मे लोग ही कुलीन (उत्तम कुल में उत्पन्न थे) उनके धन कुलीन (अर्थात् बुरे कामों में लीन) नहीं थे। वहां केवल कृष्ण पक्ष में ही तम था, मनुष्यों में अज्ञान का तम नहीं। फरसों फावड़े, चंवर व छत्रों में ही दंड या डंडा था, अन्यत्र कहीं क्रोध या बन्धन जनित दंड या डंडा नहीं था। स्त्रियों के मध्य भाग या कटि में ही दुर्बलता थी, अन्यत्र नहीं। मद केवल हाथियों में देखा जाता था, पुरुषों या राजाओं में मद-सेवन नहीं था।

इसके पश्चात् अश्वमेध यज्ञ का प्रसंग प्रारंभ होता है और यज्ञ संबंधी घोड़ा छोड़ा जाता है और शत्रुघ्न को उसकी रक्षार्थ भेजा जाता है। इसी बीच च्यवन-सुकन्या के विवाह का प्रसंग भी आता है। इसके पश्चात् गण्डकी नदी और शालिग्राम शिला की महिमा की कथा आती है। गण्डकी नदी, जिसे शालग्रामी और नारायणी भी कहते हैं, ब्रह्माजी के गण्डस्थल से उत्पन्न होने के कारण गंडकी कहलाती है और इसमें चक्र चिह्नों से अलंकृत पत्थर शालिग्राम या साक्षात् भगवान विष्णु स्वरूप माने जाते हैं। **इन शालिग्राम मूर्तियों का सदैव सम संख्या में अर्थात् 4, 6 या 8 मूर्तियों का पूजन करना चाहिए, परंतु ध्यान रहे कि 2 शालिग्रामों की पूजा निषिद्ध है। इसी प्रकार विषम संख्या में अर्थात् 5, 7, 9 शालिग्रामों का पूजन कर सकते हैं, परंतु 3 शालिग्रामों की पूजा निषिद्ध है।** उन्हीं शिलाओं का पूजन करना चाहिए जो चिकनी हों, खुरदरी या रूखी शिलाओं का पूजन नहीं करना चाहिए।

इसके पश्चात् कथा तंतु पुनः अश्वमेध कथा से जुड़ जाते हैं और चक्राङ्का नगरी के राजकुमार दमन द्वारा घोड़े को पकड़ते जाने और युद्ध में परास्त करके स्वयं पुष्कल द्वारा पराजित हो जाने का वर्णन है। इसके पश्चात् क्रौंच व्यूह तथा लक्ष्मी निधि व सुकेतु के द्वंद्व युद्ध का प्रसंग व हनुमान जी के चरण प्रहार से सुबाहु के शापोद्धार की कथा है। इसके पश्चात् शत्रुघ्न द्वारा विधुन्माली के उग्रदंष्ट के वध की कथा तथा अश्व की पुनः प्राप्ति की चर्चा है। अंत में कथा वाल्मीकि

ऋषि के आश्रम पर पहुंचती है, जहां लव द्वारा घोड़े को बांध लिया जाता है और कथा में सीता जी का अपवाद करने वाले धोबी के पूर्वजन्म का वृत्तांत आता है। जब वह शुक (तोता) था, जिसे सीता जी ने अपने पितृगृह में पिंजरे में बंदी बना लिया था। इसके पश्चात् लव-कुश की विजय और सीताजी द्वारा शत्रुघ्न एवं उनके सैनिकों की जीवन रक्षा की चर्चा है। इसके पश्चात् वाल्मीकि द्वारा सीताजी की शुद्धता का परिचय दिया जाता है और सीताजी के आगमन से यज्ञ का आरंभ होता है। अश्वमेध की इस कथा के श्रवण की महिमा के साथ भगवान राम का चरित माहात्म्य विश्राम पाता है तथा वृंदावन और श्रीकृष्ण का माहात्म्य वर्णन प्रारंभ हो जाता है।

श्रीकृष्ण माहात्म्य के इन अध्यायों में श्री राधा की अष्ट प्रधान सखियों—ललिता जी, श्यामला जी, धन्या जी, हरिप्रिया जी, विशाखा जी, शैव्या जी, पद्मा जी व भद्रा जी का वर्णन है। इसके पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण द्वारा ब्रज व द्वारका में निवास करने वालों के लिए सहज मुक्ति का वर व वैष्णवों के लिए 5 प्रकार की पूजा व हृदय शुद्धि का वर्णन है। इस प्रकार भगवान के चतुर्भुज रूप के विभिन्न स्वरूपों की विशिष्टता का वर्णन करते हुए बताया गया है कि **दाहिनी ओर ऊपर के हाथ में यदि शंख हो, दाहिनी ओर नीचे के हाथ में यदि चक्र हो और इसी प्रकार बाएं हाथ ऊपर की ओर गदा व नीचे पद्म हो, तो ऐसा स्वरूप केशव कहलाता है।**

| **विग्रह** | | **नाम** |
|---|---|---|
| 1 → 2 → 3 → 4 | = | त्रिविक्रिम |
| गदा → चक्र → शंख → पद्म | | |
| 1 → 2 → 3 → 4 | = | वामनमूर्ति |
| चक्र → गदा → पदम् → शंख | | |
| 1 → 2 → 3 → 4 | = | श्रीधर |
| चक्र → पदम् → शंख → गदा | | |
| 1 → 2 → 3 → 4 | = | हृषीकेश |
| चक्र → गदा → शंख → पद्म | | |
| 1 → 2 → 3 → 4 | = | पद्म नामविग्रह |
| पद्म → शंख → गदा → चक्र | | |
| 1 → 2 → 3 → 4 | = | दामोदर रूप |
| शंख → गदा → चक्र → पद्म | | |

1 → 2 → 3 → 4 = संकर्षण रूप

शंख →कमल→ चक्र → गदा

1 → 2 → 3 → 4 = वासुदेव रूप

चक्र → शंख → गदा →पद्म

1 → 2 → 3 → 4 = प्रद्युम्नमूर्ति रूप

शंख → चक्र → गदा →पद्म

1 → 2 → 3 → 4 = अनिरुद्ध रूप

गदा → शंख →पद्म→ चक्र

1 → 2 → 3 → 4 = पुरुषोत्तम रूप

पद्म→ शंख → गदा → चक्र

1 → 2 → 3 → 4 = अधोक्षज रूप

गदा → शंख → चक्र →पद्म

1 → 2 → 3 → 4 = नृसिंह रूप

पद्म→ गदा → शंख → चक्र

1 → 2 → 3 → 4 = अच्युतास्वरूप

पद्म→ चक्र → शंख → गदा

1 → 2 → 3 → 4 = कृष्ण रूप

गदा →पद्म→ चक्र → शंख

इसके पश्चात् लगभग 16 प्रकार की विभिन्न शालग्राम-शिलाओं का वर्णन है। इस प्रकार पाताल खंड के इस 79वें अध्याय में वैष्णव धर्म के नियमों व आचार संहिता का इतना विशद व व्यापक वर्णन है कि यदि इसे वैष्णवों का छोटा विश्व कोष कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके पश्चात् मंत्र चिंतामणि, युगलद्वय पंचपदी मंत्र **ॐ नमो गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये** व **'ॐ नमो गोपीजनवल्लभाम्याम्'** का उपदेश है। इसके पश्चात् वैशाख माह का माहात्म्य श्री माधव पूजा व पाप प्रशमन स्तोत्र का वर्णन है। इसके पश्चात् तुलसी जी के माहात्म्य व भगवान श्रीकृष्ण के ध्यान के साथ पातालखंड समाप्त हो जाता है।

## उत्तर खण्ड

उत्तर खण्ड का प्रारंभ नारद महादेव के मध्य बदरिकाश्रम व नारायण की महिमा के साथ प्रारंभ होता है, जिसके पश्चात् गंगावतरण की संक्षिप्त कथा व हरिद्वार का माहात्म्य है। इसके पश्चात् गंगाजी, यमुना जी एवं प्रयाग, काशी व गया आदि तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन है। इसके पश्चात् तुलसी व्रत की विधि व महिमा

का वर्णन है। इसके पश्चात् सर्वकामनाओं को सिद्ध करने वाले संवत्सरदीप व्रत की विधि और महिमा का वर्णन है। इसके पश्चात् जयंती नामक जन्माष्टमी के व्रत और विविध प्रकार के दान की महिमा है। वैसे तो भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को जन्माष्टमी का पर्व मनाया जाता है, परंतु यदि उस दिन मास, पक्ष व तिथि के साथ रोहिणी नक्षत्र का भी योग हो, तो ऐसी जन्माष्टमी को जयंती कहा जाता है, जो असीम पुण्यदायक व पापविमोचिनी होती है। इसके पश्चात् महाराज दशरथ व शनि की गाथा और शनि को संतुष्ट व प्रसन्न करने वाले दशरथकृत शनिस्त्रोत का वर्णन है। इसके पश्चात् **त्रिस्पृशाव्रत** की विधि और महिमा का वर्णन है अर्थात् एक ही दिन में यदि तीन तिथियां एकादशी, द्वादशी व रात्रि के अंतिम प्रहर में त्रयोदशी हो, तो उसे त्रिस्पृशा कहते हैं। यदि यह कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में सोमवार या बुधवार से युक्त हो, तो करोड़ों जन्मों के पापों का नाश कर देती है। यहां प्रभु प्राचीमाधव ने यह भी स्पष्ट किया है कि एकादशी व दशमी **विद्धा नहीं होनी चाहिए, क्योंकि एकादशी में दशमीवेध को मैं क्षमा नहीं करता** और ऐसी एकादशी का व्रत भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे जन्म-जन्मांतरों **में किए गए पुण्य व संतान का नाश होता है।** इसके पश्चात् पक्षवर्धिनी एकादशी का महत्त्व बताते हुए महादेव जी कहते हैं कि यदि अमावस्या या पूर्णिमा साठ दंडी होकर दिन-रात अविकल रूप से रहे और दूसरे दिन-प्रतिपदा में भी उसका कुछ अंश चला जाए, तो वह पक्षवर्धिनी मानी जाती है और उस पक्ष में आने वाली एकादशी पक्षवर्धिनी कहलाती है तथा दस हजार अश्वमेध यज्ञों के तुल्य फलदायक होती है। इसके पश्चात् एकादशी के चार भेदों पर स्वयं महादेव जी द्वारा प्रकाश डाला गया है, जो इस प्रकार है–

| मास | पक्ष | नक्षत्र | तिथि | एकादशी (विशिष्ट) |
|---|---|---|---|---|
| – | शुक्ल | पुनर्वसु | | जया |
| – | शुक्ल | श्रवण | तिथि | द्वादशी (विजया) |
| – | शुक्ल | रोहिणी | तिथि | द्वादशी (जयंती) |
| – | शुक्ल | पुष्य | | द्वादशी (पापनाशिनी) |

इसके पश्चात् पुण्यमयी एकादशी की उत्पत्ति की कथा का वर्णन है। पूरे वर्ष के विभिन्न मासों के कृष्ण व शुक्लपक्षों की एकादशी तिथि का विस्तार से विवरण प्राप्त होता है।

| मास | पक्ष | एकादशी | कथा | विशेष |
|---|---|---|---|---|
| 1. मार्गशीर्ष | शुक्ल | मोक्षा | वैसानख राजन की कथा | — |
| 2. मार्गशीर्ष | कृष्ण | उत्पत्ति | मुर दानव वध की कथा | एकादशी की उत्पत्ति इसी दिन हुई। |
| 3. पौष | कृष्ण | सफला | चंपावती के लुम्भक राजकुमार की कथा | — |
| 4. पौष | शुक्ल | पुत्रदा | भद्रावती के राजा सुकेतुभान की कथा | पुत्र प्राप्ति के लिए अभीष्ट |
| 5. माघ | कृष्ण | षटतिला | तिल कथा | — |
| 6. माघ | शुक्ल | जया | माल्यवान पुष्पवन्ती की कथा | — |
| 7. फाल्गुन | कृष्ण | विजया | भगवान श्रीराम व बकदालभ्य मुनि की कथा | न्यायालय में सत्य की विजय व कार्यों में समानता के लिए। |
| 8. फाल्गुन | शुक्ल | आमलकी | आंवले की उत्पत्ति की कथा | — |
| 9. चैत्र | कृष्ण | पापमोचनी | मेधाती व मंजुघोषा अप्सराओं की कथा | — |
| 10. चैत्र | शुक्ल | कामदा | पुण्डरीक नाग व गंधर्व ललित की कथा | — |
| 11. वैशाख | कृष्ण | वरुथिनी | वरुथिनी एकादशी की कथा | — |
| 12. वैशाख | शुक्ल | मोहिनी | भद्रावती के धनयाल की कथा | — |
| 13. ज्येष्ठ | कृष्णपक्ष | अपरा | अपरा माहात्म्य कथा | — |
| 14. ज्येष्ठ | शुक्ल | निर्जला | पांडुपुत्र भीम की कथा | इस एक एकादशी के व्रत से वर्ष भर की सभी एकादशियों के पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 15. आषाढ़ | कृष्ण | योगिनी | यक्ष हेममाली व मार्कण्डेय मुनि की कथा | — |
| 16. आषाढ़ | शुक्ल | देवशयनी | देवशयनी की कथा | इस तिथि में भगवान विष्णु शयन करते हैं। |
| 17. श्रावण | कृष्ण | कामिका | एकादशी कथा | रात्रि जागरण करें। |
| 18. श्रावण | शुक्ल | पुत्रदा | महीजित व लोमश ऋषि की कथा | — |
| 19. भाद्रपद | कृष्ण | अजा | सत्यवादी हरिश्चंद्र की कथा | — |
| 20. भाद्रपद | शुक्ल | पदमा | मान्धाता व अङ्गिरा ऋषि की कथा | दही व चावल के साथ छाता व जूता ब्राह्मण को दान देने का विधान है। |
| 21. आश्विन | कृष्ण | इन्दिरा | इन्द्रसेन व देवर्षि नारद की कथा | — |
| 22. आश्विन | शुक्ल | पापाङ्कुशा | भगवान विष्णु की कथा | — |
| 23. कार्तिक | कृष्ण | रभा | शोभन व चंन्द्रभागा की कथा | — |
| 24. कार्तिक | शुक्ल | प्रबोधिनी देवउत्थान | विष्णुजी की कथा | कर्पूर के दीपक व तुलसी द्रुम से भगवान का पूजन |
| 25. पुरुषोत्तम | कृष्ण | कमला | शिवशर्मा ब्राह्मण की कथा | |
| 26. पुरुषोत्तम | शुक्ल | कामदा | विष्णु स्मरण | — |

एकादशी को विष्णु सहस्रनाम, भीष्मस्त्रवराज व गजेन्द्रमोक्ष तथा कमलनयन स्त्रोत का जप करने का विधान है। इसके पश्चात् चातुर्मास्य मास की व्रत विधि व यमराज की आराधना तथा गोपीचन्दन के माहात्म्य का वर्णन है। पुनः श्रावण द्वादशी के माहात्म्य व विष्णु सहस्रनाम स्त्रोत का वर्णन है। न्यास सहित अपामार्जन नामक

स्त्रोत का वर्णन है, जिसके पाठ से ज्वर, नेत्र रोग, मस्तिष्क रोग, वात रोग, क्षय रोग, कामला आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। अच्युत, अनंत, गोविन्द केवल इन तीन नामों के उच्चारण से ही अनेक रोगों से मनुष्य की रक्षा हो जाती है। इसके पश्चात् भक्त प्रवर पुण्डरीक की कथा है, जो असीम पुण्यदायक व पाप विमोचनी है। इसके पश्चात् चैत्र-वैशाख मास के विशेष उत्सवों का वर्णन तथा भिन्न-भिन्न मासों में श्री हरि की पूजा में काम आने वाले विभिन्न पुष्पों का वर्णन है। तुलसी सदैव अर्पण की जाती है।

| | मास | पुष्प |
|---|---|---|
| 1. | चैत्र | चंपा-चमेली |
| 2. | वैशाख | केतकी (केवड़ा) |
| 3. | ज्येष्ठ | नाना पुष्प ऋतु के अनुसार |
| 4. | आषाढ़ | कनेर या लाल फूल कदंब (विशेष प्रिय) |
| 5. | सावन | अलसी का फूल या दूर्वादल |
| 6. | भाद्रपद | चंपा, रक्त सिंदूरक |
| 7. | आश्विन | जुही, चमेली, कमल |
| 8. | कार्तिक | तिल के पुष्प |
| 9. | मार्गशीर्ष | ऋतु अनुसार विभिन्न पुष्प |
| 10. | पौष | तुलसी व कस्तूरी |
| 11. | माघ मास | विभिन्न पुष्प |
| 12. | फाल्गुन | नवीन पुष्प |

इसके पश्चात् शंखासुर के वध व वेदों के उद्धार का वर्णन प्राप्त होता है और कार्तिक मास के माहात्म्य का विस्तार से वर्णन है। इसके पश्चात् माघ मास की महिमा व शूकर क्षेत्र के माहात्म्य की चर्चा की गई है। यहां पर वेगवती (बेतवा) व साबरमती नदी की भी विस्तार पूर्वक चर्चा प्राप्त होती है। अंत में उत्तरखंड में श्रीमद्भगवत् गीता के प्रत्येक अध्याय के श्रवण के माहात्म्य की जैसी सारगर्भित, मानपूर्ण व पुण्यदायिनी चर्चा का वर्णन प्राप्त होता है, उससे श्रीमद्भगवत् गीता की महत्ता का भान होता है। गीता के सभी अठारह अध्यायों में अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए प्रभु कहते हैं कि गीता के 5 अध्याय मेरे 5 मुख हैं, 10 अध्याय मेरी 10 भुजाएं हैं, 1 अध्याय उदर है और अध्याय चरण कमल हैं। इस प्रकार यह अठारह

अध्यायों का पवित्र ग्रंथ मेरी ही प्रतिमूर्ति है। जो व्यक्ति गीता के 1 श्लोक, 1/2 श्लोक या 1/4 श्लोक का भी प्रतिदिन उच्चारण करता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् श्रीमद्भागवत् के सप्ताह-पारायण विधि व श्री रामचंद्र की कथा व उनके पवित्र 108 नामों के साथ यह पवित्र पुराण विश्राम करता है।

## 3. विष्णु पुराण

अठारह पुराणों की सूची में तृतीय स्थान पाने वाला यह पुराण पाराशर ऋषि की रचना है। परिमाण में न्यून होते हुए भी महत्त्व में अधिक है। इसके खंडों को 'अंश' कहते हैं। इसके अंशों की संख्या 6 है तथा अध्यायों की संख्या 126 है, इस पुराण में मुख्य रूप से कृष्ण चरित्र का वर्णन है। यद्यपि वर्ण्य विषय, साहित्यिक, भक्ति व साधना की दृष्टि से यह भागवत पुराण जितना विस्तृत व विशाल तो नहीं है, परंतु निश्चय ही भागवत के पश्चात् द्वितीय स्थान का अधिकारी है। यह ग्रंथ भी वैष्णव दर्शन का मूल आलंबन है। आचार्य रामानुज ने अपने श्रीभाष्य में इसका प्रमाण व उद्धरण बहुलता से किया है।

प्रथम अंश में सर्ग लक्षण अथवा सृष्टि की उत्पत्ति है (अध्याय 11-20)। इसमें काल का स्वरूप, ध्रुव, पृथु और प्रहलाद की कथाएं हैं। द्वितीय अंश में भूगोल का बहुत ही सांगोपांग विवेचन है। लोकों के स्वरूप का, पृथ्वी के नौ खंडों का वर्णन है तथा ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष आदि का परिचय दिया गया है। तृतीय अंश में मन्वंतर, वेदत्रयी की शाखाओं का विस्तार, गृहस्थ धर्म व श्राद्धकर्म की विधि का विस्तार से वर्णन है। चतुर्थ अंश में विभिन्न राजवंशों का वर्णन है। जिसमें प्रमुखतः सूर्यवंश और चंद्रवंश की वंशावलियों का वर्णन है। वेदों में प्रसिद्ध पंच जन यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, पुरु का निम्न अध्यायों में विस्तार से वर्णन मिलता है।

पांचवां अंश और सभी 38 अध्याय भागवत् के दशम स्कंध की भांति भगवान श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन करते हैं। छठा अंश केवल आठ अध्यायों का है, जिसमें कलिधर्म निरूपण तथा प्राकृत प्रलय व ब्रह्मयोग का निरूपण है। विष्णु पुराण के अंतिम तीन अध्यायों में खाण्डिक्य जनक व केशिध्वज की कथा के माध्यम से कर्म मार्ग व आध्यात्म मार्ग, दोनों की बहुत ही सुंदर व तुलनात्मक चर्चा की गई है। विष्णु पुराण में भारतवर्ष को कर्मभूमि कहा गया है, जहां मनुष्य कर्मों को संचित व क्षय कर सकता है। शेष संपूर्ण पृथ्वी भोगभूमि है, जहां कर्मों के फल द्वारा भोग तो प्राप्त हो सकते हैं, परंतु कर्म का संचयन व क्षय नहीं होता है। भारतभूमि का परिचय देते हुए कहा गया है :

**उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।**
**वर्ष तद्‌भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।**

जो पवित्र भूभाग समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में स्थित है, उसका नाम भारत है, उसकी संतति भारती है।

**इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्तश्य गम्यते।**
**न खल्वन्यत्रमर्त्यानां कर्मभूमौ विधीयते।।**

यहीं से स्वर्ग, मोक्ष, अंतरिक्ष व पाताल लोक को पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी किसी भी भूमि पर मनुष्यों के लिए कर्म का विधान नहीं है।

भारतभूमि की वंदना के लिए विष्णु पुराण का निम्नलिखित ललित पद अमर हो गया है :

**गायन्ति देवाः किल गीतकानि**
**धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।**
**स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते**
**भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्**
**कर्माण्यसंङ्कल्पित ततत्फलानि**
**संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।**
**अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते**
**तस्मिंल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति।।**

**(द्वितीय अंश। तृतीय अध्याय। 21-25)**

**अर्थ**–देवगण भी निरंतर यही गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष के मार्गभूत भारतभूमि में जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य व बड़भागी हैं। जो लोग इस कर्मभूमि में जन्म लेकर अपनी कलाकांक्षा से रहित कर्मों को परमात्म स्वरूप श्री विष्णु भगवान को अर्पण करने से निर्मल, पाप रहित होकर अंत में उस अनंत में लीन हो जाते हैं, वे धन्य हैं।

## 4. वायु पुराण

यह अत्यंत प्राचीन पुराण है, जिसका साक्ष्य इस पुराण के अध्याय 61 के श्लोक 119-120 में प्राप्त होता है। इस समय परीक्षित के पुत्र जन्मेजय के पुत्र शतानीक के पुत्र अश्वमेघदत्त के पुत्र अधिसामकृष्ण का राज्य चल रहा है। उन्हीं के राज्यकाल में यह पुराण कुरुक्षेत्र में संकलित हुआ, यह भी इसकी एक विशिष्टता है, क्योंकि शेप सभी पुराणों की रचना नैमिषारण्य में हुई। (यहां यह बात भी जाननी महत्त्वपूर्ण है कि परम योगीराज व महामहिम पंडित गोपीनाथ कविराज जी ने अपनी पुस्तक

**'ज्ञानगंज' में ज्ञानगंज रहस्य में यह बताया है कि कुरुक्षेत्र में वायु तत्त्व प्रधान है और यह वायु तत्त्व का भुवन है)**। बाणभट्ट ने अपनी कादंबरी में भी इस पुराण का उल्लेख किया है। यह पुराण अन्य पुराणों की तुलना में अपेक्षाकृत न्यून है। इसमें केवल 112 अध्याय हैं तथा मात्र 11,000 श्लोक हैं, जो चार खंडों में विभाजित हैं, जिन्हें 'पाद' कहा गया है 1. प्रक्रिया पाद, 2. अनुषंग पाद, 3. उपोद्धात पाद, 4. उपसंहार पाद।

यह पुराण दो भागों पूर्व व उत्तर में विभाजित है। इसके आरंभ में सृष्टि प्रकरण बड़े विस्तार के साथ कई अध्यायों में फैला हुआ है। इस पुराण में कल्पों का निरूपण अन्य पुराणों से भिन्न है। सृष्टि की एक-एक संस्था को कल्प का नाम दिया गया है। सर्वप्रथम आनंद स्वरूप शिव होते हैं। फिर वह इच्छा और तप से सृष्टि में प्रवृत्त होते हैं। अतः प्रथम तीन कल्प हैं : भव, भुव और तप। इसी प्रकार सूर्य, मेघ, अग्नि आदि की उत्पत्ति को भी एक कल्प कहा गया है। मेघों के प्रादुर्भाव से दामिनी चमकती है। मेघों को विष्णु रूप व विद्युत को रुद्र रूप महेश्वर बताया गया। इस कल्प निरूपण की एक विशिष्टता बीच-बीच में गान के स्वरों की उत्पत्ति बतलाई गई है और बीच-बीच में यज्ञ संस्थाओं की। स्वरपूर्वक सामगान में यज्ञ व इससे सृष्टि के उत्पन्न होने की बात कही गई है।

यह पुराण भौगोलिक वर्णन के लिए भी विशेषरूप से पठनीय है। जंबूद्वीप का वर्णन तो विशेषरूप से बड़े ही सुंदर ढंग से किया गया है, जो अध्याय 34 से 39 तक वर्णित है। खगोल का वर्णन भी अन्य पुराणों की भांति इस ग्रंथ में अध्याय 50 से 53 तक विस्तार से उपलब्ध होता है। युग, यज्ञ, ऋषियों व तीर्थों का भी बहुत विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। वेदों की शाखाओं का वर्णन भी साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

प्राचीन ब्राह्मण वंशों के इतिहास को जानने के लिए अध्याय 61-65 में प्रजापति वंश वर्णन, कश्यपीय प्रजासर्ग (66-69) व ऋषिवंश (70) में अत्यंत उपयोगी सामग्री उपलब्ध होती है। 86 व 87वां अध्याय संगीत से संबंधित बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराता है। यह पुराण भगवान शिव के चरित्र का इतने विस्तार से वर्णन करता है कि कुछ विद्वान् तो इसे शिव पुराण का एक भाग होने की भूल कर बैठते हैं। पशुपति की पूजा से संबद्ध **'पाशुपत योग'** इस पुराण की एक विशिष्टता है। अन्य किसी भी पुराण में इतने विस्तार से पाशुपत योग का विवरण प्राप्त नहीं होता।

इस पुराण के उत्तर भाग में नर्मदा के तीर्थों का वर्णन है। नर्मदा जल को ही ब्रह्मा, विष्णु व शिव स्वरूप माना गया है तथा इसे धरती पर शिव की दिव्य

द्रव्य शक्ति माना गया है, जो नर्मदा के उत्तर तट पर निवास करते हैं, वह भगवान रुद्र के अनुचर होते हैं और जिनका दक्षिण तट पर निवास है, वह विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होते हैं। ॐकारेश्वर से लेकर परिचय समुद्र तक नर्मदा जी में दूसरी नदियों के 35 पापनाशक संगमों की स्थिति बताई गई है; जिनमें से ग्यारह उत्तर तट पर और 23 दक्षिण तट पर स्थित बताए गए हैं। 35वां संगम तो स्वयं नर्मदा व समुद्र का संगम है।

नर्मदा जी के माहात्म्य के अतिरिक्त 'शार्वस्तव' व दस प्रजापति द्वारा भगवान शिव की स्तुति भी इस ग्रंथ के महत्त्वपूर्ण अंशों में एक है।

मुख्यतः शैव तत्त्व प्रधान होने पर भी इसमें भगवान विष्णु गदाधर का भी आख्यान (अ. 105-112) तक प्राप्त होता है, जिसमें मधु कैटभ की कथा तथा मोहिनी जन्म की कथा का प्रसंग मिलता है। इसके अतिरिक्त मृत्यु पूर्व के लक्षण, स्वर, ॐकार, लिंगोद्भव, गंधर्व, मूर्छना लक्षण, गीत और अलंकार तथा गया तीर्थ आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है।

## 5. श्रीमद्भागवत पुराण

पुराणचूड़ामणि, साक्षात् श्री हरि विग्रह स्वरूप, भक्ति सर्वस्व, निगम कल्पतरु, वैष्णव श्रवणामृत श्रीमद्भावगत पुराण कलियुग में हिंदू समाज का सर्वाधिक आदरणीय व पूज्य ग्रंथ है। सकाम भक्ति हो या निष्काम योग, नवधा भक्ति हो या ज्ञान साधना, द्वैत भाव हो या अद्वैत के दर्शन सभी मार्गो के रहस्यों को समन्वित करने वाला यह अलौकिक दिव्य ग्रंथ लौकिक इच्छाओं व पारलौकिक सिद्धियों को प्रदान करने वाला कल्पतरु है। वैष्णव संप्रदाय का यह प्रमुख ग्रंथ है और वेदों, उपनिषदों तथा दर्शन के गूढ़ व गंभीर रहस्यभूत विषयों का निरूपण इसमें इतनी सरलता से किया गया है कि इसे भारतीय धर्म व संस्कृति का वस्तुतः विश्वकोष ही कहा जाना चाहिए। वेणु गीतों के माधुर्य के आनंद का रसास्वाद करना हो या भावपूर्ण गजेंद्रस्तवन से अश्रु विलगित चक्षुओं व अवरुद्ध कंठ की भावावस्था की अनुभूति करना हो अथवा नारायण कवच के अमोघ पाठ से कलिकाल व दुर्भाग्य से मुक्ति की इच्छा हो, सभी कुछ इस ग्रंथ में सुलभ है। इसीलिए कहा जाता है कि विद्वानों के ज्ञान की परीक्षा इसी ग्रंथ से होती है। **विद्यावतां भागवत् परीक्षा**। 'पुटके-पुटके मधु और स्वादु-स्वादु पगे-पगे' की भावना इसी ग्रंथ में अनुभूत होती है। त्रितापों को शांत करने वाले इस ग्रंथ में कुल 12 स्कंध हैं, जिनमें भगवान विष्णु के 24 अवतारों की कथा का वर्णन है। वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता काफी बढ़ जाती है।

## प्रथम स्कंध

29 अध्यायों के इस प्रथम स्कंध का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है। जिसमें श्रीमद्‌भागवत को वेदरूप कल्पवृक्ष का ऐसा पका हुआ फल कहा गया है, जो शुकदेव रूपी तोते के मुख से निःसृत हो जाने के कारण परमानंदमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है (ऐसी लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि तोते का काटा हुआ फल अधिक मीठा होता है और तोते को शुक भी कहा जाता है। और इसी शुक में शुकदेव जी की तुलना श्लेष का बड़ा सुंदर प्रयोग है)। द्वितीय अध्याय में भागवत कथा व भगवदभक्ति के माहात्म्य का व्यास जी के श्रीमुख से वर्णन है।

तृतीय अध्याय में सूतजी द्वारा भगवान के अवतारों का बहुत ही संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। पंचम व छठे अध्याय में भगवान के यश-कीर्तन की महिमा और देवर्षि नारद के पूर्वजन्मों के चरित्र का वर्णन है, सप्तम अध्याय में राजर्षि परीक्षित के जन्म, कर्म और मोक्ष की कथा को प्रारंभ करते हुए सूत जी शौनक ऋषि से कहते हैं कि क्योंकि राजा परीक्षित की कथा से ही भगवान श्रीकृष्ण की अनेक कथाओं का उदय होता है, इसलिए इस कथा में हम श्रीमद्‌भागवत की कथा का श्रीगणेश करते हैं। इसके पश्चात् अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के सोते पुत्रों का सिर काटने की घटना और अर्जुन व अश्वत्थामा के बीच युद्ध और अश्वत्थामा की पराजय, उसका बंदी बनाया जाना और अंत में उसका वध न करके उसके सिर की मणि उतारकर उसे छोड़ देने की कथा का वर्णन है। आठवें अध्याय में पुनः अश्वत्थामा के द्वारा अपने अपमान का बदला व पांडव वंश को निर्बीज करने के लिए उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र के प्रयोग की कथा आती हैं और भगवान द्वारा इस अमोघ शस्त्र को अपने सुदर्शन चक्र के तेज द्वारा शांत करने का प्रसंग आता है। इस उपकार के फलस्वरूप कृतज्ञता से नतमस्तक कुंती द्वारा भगवान श्री कृष्ण की अत्यंत ही भावपूर्ण स्तुति की गई है, जिसमें कुंती भगवान से प्रार्थना करती है कि हे **जगद्गुरो! हमारे जीवन में सर्वदा पग-पग पर विपत्तियां आती रहें, क्योंकि विपत्तियों में निश्चित रूप से आपके बारंबार दर्शन व स्मरण होते रहेंगे।**

नवम् अध्याय में युधिष्ठिर आदि का शर-शैया पर पितामह भीष्म के पास जाने का प्रसंग है और पितामह द्वारा उत्तरायण का समय आने पर प्राण-त्याग का भावुक प्रसंग है। प्रभु के श्रीचरणों में अपनी ज्योति स्वरूप आत्मा को लीन करने से पूर्व भीष्म पितामह ने भी भगवान श्रीकृष्ण की बड़े ही करुण, हृदयस्पर्शी और भावपूर्ण शब्दों में मानस-स्तुति की है, जिसका यहां वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् दशम अध्याय में श्रीकृष्ण भगवान के द्वारका-गमन का तथा इस मार्मिक विदाई का सूत जी ने बड़े करुण एवं रसाद्रित करने वाले शब्दों में वर्णन प्रस्तुत किया है।

12वें अध्याय में परीक्षित के जन्म की कथा का उल्लेख है तथा युधिष्ठर द्वारा अपने पौत्र जन्म के शुभ अवसर पर प्रजातीर्थ काल में ब्राह्मणों को उत्तम दान देने का वर्णन है। यहां प्रजातीर्थ काल को स्पष्ट करना आवश्यक है, क्योंकि समाज में इस पवित्र काल के बारे में अनेक भ्रांतियां प्रचलित हैं। पुत्र जन्म के समय सूतक लग जाता है : यह कथन पूर्णतः ठीक है, परंतु वास्तविकता यह है कि जन्म के पश्चात् तथा नालच्छेदन से पूर्व का जो थोड़ा-सा समय होता है, उसमें सूतक नहीं होता। सूतक नाल काटने के पश्चात् लगता है।

**यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्।**
**छिन्ते नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते।।**

इस थोड़े-से काल में अर्थात् जन्म व नाल विच्छेदन से पूर्व के काल को प्रजातीर्थ काल कहते हैं। इस समय में किया गया दान अक्षय फलदायक होता है, क्योंकि नाल कटने से पूर्व जीव, ब्रह्म में द्वैतभाव नहीं होता, जीव उस समय वस्तुतः ब्रह्म होता है और नाभि से निकलकर नाल से जुड़ा ब्रह्म स्वरूप होता है और सृजन प्रक्रिया के प्रारंभिक बिंदु को अक्षरक्षः प्रकट कर रहा होता है। स्मृति भी कहती है **पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्** अर्थात् पुत्रोत्पत्ति और व्यतीपात के समय दिया हुआ दान अक्षय होता है।

इसके पश्चात् विदुर जी के उपेदश से धृतराष्ट्र व गांधारी के वन गमन, अर्जुन का द्वारका से लौटना और पाण्डवों का परीक्षित को राज्य भार सौंपकर स्वर्गारोहण की घटनाओं का वर्णन है। इसके पश्चात् महाराजा परीक्षित की दिग्विजय तथा वैल और गाय के रूप में धर्म व पृथ्वी के संवाद में कलियुग के लक्षणों का वर्णन है। 17वें कलिनिग्रह नामक अध्याय में महाराजा परीक्षित द्वारा कलियुग के दमन और उसके रहने के 5 स्थान निर्धारित किए जाने का वर्णन है। यह पांच स्थान क्रमशः द्यूत, मद्यपान, स्त्री-संग, हिंसा और सुवर्ण हैं या मानसिक स्तर पर झूठ (क्योंकि जुए में झूठ के द्वारा ही विजय संभव है), मद्यपान (मद या नशा), काम, वैर और रजोगुण को कलिकाल का स्थान माना गया है। इसके पश्चात् राजा परीक्षित को श्रृंगी ऋषि के अपमान तथा श्राप वश तक्षक नाग द्वारा काटे जाने का व सप्ताह भर में मृत्यु का शाप देने का वर्णन है। शाप के कारण राजा परीक्षित द्वारा अपने पुत्र जनमेजय को राज-पाट सौंपकर स्वयं गंगा तट पर जाकर प्राण त्यागने का निश्चय तथा वहां शुकदेव के आगमन का स्थान। (यह स्थान वर्तमान में मुजफ्फरनगर जिले में स्थित प्रसिद्ध शुक्र ताल तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है।) यहीं प्रथम स्कंध समाप्त हो जाता है।

## द्वितीय स्कंध

द्वितीय स्कंध का प्रारंभ शुकदेव जी के पवित्र श्री मुख से भगवान के विराट स्वरूप के वर्णन के साथ प्रारंभ होता है और इसी प्रसंग में भगवान के स्थूल व सूक्ष्म रूपों की धारणा का भी वर्णन प्राप्त होता है। तृतीय अध्याय में मनुष्य की इच्छाओं के अनुरूप विभिन्न देवताओं की उपासना का वर्णन आता है। यथा, जिसे संतान की लालसा हो, वह प्रजापतियों की उपासना करे। जिसे धन चाहिए, वह वसुओं की। जिसे राज्य की अभिलाषा हो, वह विश्वदेवों की। जिसे आयु की इच्छा हो, वह अश्विनी कुमारों की। जिसे सुंदर रूप की इच्छा हो, वह गंधर्वों की और जिसे सुंदर पत्नी की आवश्यकता हो, वह श्रेष्ठ देवांगना उर्वशी की उपासना करे। इसी अध्याय में भगवद्भक्ति को मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य व लक्ष्य बताते हुए शौनक ऋषि कहते हैं कि जो मनुष्य भगवान श्रीकृष्ण की अमृतमयी कथा नहीं सुनता, उसके कान बिल के समान हैं। जो जिह्वा भगवान की लीलाओं का गायन नहीं करती, वह तो मेढक की जिह्वा की तरह टर्र-टर्र करने वाली है। जो हाथ भगवान की सेवा-पूजा नहीं करते, वह सोने के कंगनों से भूषित होते हुए भी मुर्दे के हाथों के समान हैं। जो आंखें प्रभु के श्री मुख का दर्शन नहीं करतीं, वह मोरों के पंखों से बनी आंखों के चिह्नों के समान निरर्थक हैं। इस प्रकार भगवत महिमा के माहात्म्य के साथ द्वितीय स्कंध समाप्त हो जाता है।

चौथे व पांचवें अध्याय में सृष्टि विषयक प्रश्न व सृष्टि का वर्णन है। सातवें अध्याय में भगवान के **वराह, हरि, कपिल मुनि, दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, नर-नारायण, ध्रुव, पृथु, ऋषभदेव, ह्यग्रीव, मत्स्य, कच्छप, नृसिंह, गजेन्द्र, मोक्षदाता चक्रपाणि, वामन रूप** आदि विभिन्न लीलावतारों की कथा का वर्णन है। अष्टम अध्याय में राजा परीक्षित द्वारा गूढ़ व गहन आध्यात्मिक दर्शन के विविध प्रश्नों का उल्लेख है। जो वह शुकदेव जी से पूछते हैं। यथा–जीव या जीवात्मा का पंचमहाभूतों से कोई संबंध नहीं है, परंतु फिर भी जीव का शरीर पंचभूतों से क्यों बनता है ? तत्वों की संख्या कितनी है, उनके स्वरूप और लक्षण क्या हैं ? भगवान तो परम स्वतन्त्र हैं, फिर वह किस प्रकार अपनी माया से क्रीड़ा करते हैं और उसे छोड़कर साक्षी के समान उदासीन भी कैसे हो जाते हैं ? इसके पश्चात् नवम् अध्याय में ब्रह्मा जी को भगवान श्री विष्णु जी का चतुर्श्लोकी भागवत का उपेदश है, जो इस प्रकार है :

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्।। (2/9/2)

अर्थात् : सृष्टि के पूर्व में केवल मैं ही मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म, जहां यह सृष्टि नहीं है, वहां मैं ही मैं हूं और इस सृष्टि में जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूं और जो कुछ अवशिष्ट या बचा रहेगा, वह भी मैं ही हूं।

ऋतेऽर्थ यत् प्रतीयते न प्रतीयेत् चात्मनि।
तद्विधादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।। (2/9/32)

अर्थात् : वास्तव में न होने पर भी अर्थात् अभाव की स्थिति में जो कुछ भी मेरे अतिरिक्त प्रतीत होता है, वह दो चन्द्रमाओं की भांति मिथ्या है (जैसे वास्तव में चंद्रमा एक ही है, परंतु जल या तालाब आदि में उसकी छाया देखने पर जो दूसरे चंद्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है या आभास होता है, वह दो चंद्रमाओं का मिथ्या भ्रम ही माया है) अथवा विद्यमान होने पर भी जो आकाश-मंडल के नक्षत्रों में राहु की भांति मेरी प्रतीति नहीं होती, वह भी मेरी माया है। (राहु का एक नाम स्वर्मानु भी है। इस प्रकार कहने को तो वह प्रकाशमय नक्षत्र या मानु है, पर वास्तव में तो वह अंधकार रूप है अर्थात् होते हुए भी नहीं है। यही स्थिति ब्रह्म की है, वह है भी और नहीं भी है। यही प्रभु की माया है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चा वचेष्वनु।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।। (2/9/34)

अर्थात् : जिस प्रकार प्राणियों के पंच भूतों से रचित शरीर में आकाश आदि पंच महाभूत शरीर के कार्यरूप में निर्मित होने के कारण उसमें प्रवेश भी करते हैं तथा एक अन्य दृष्टि से देखें, तो पहले से ही उन स्थानों और रूपों में कारण रूप से विद्यमान होने के कारण प्रवेश नहीं भी करते, उसी प्रकार मैं उन प्राणियों के शरीर की दृष्टि से मैं उनमें आत्मा के रूप में प्रवेश किए हुए हूं और आत्मदृष्टि से अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूं। आत्मा तो स्वयं प्रभु का ज्योतिर्मय स्वरूप ही है, जो शरीर से भिन्न है, किंतु शरीर भी तो प्रभु द्वारा ही प्रदत्त है, वह है भी और नहीं भी।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।। ( 2/9/32)

अर्थात् : एक ओर यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं है, अर्थात् नेति-नेति का भाव या अभाव और निषेध की पद्धति और दूसरी ओर यह ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्म का भाव

और अन्वय की पद्धति, एक साथ दो भाव यही तो सिद्ध करते हैं कि सर्वातीत और सर्वस्वरूप ब्रह्म सर्वदा, सर्वत्र स्थित वास्तविक तत्त्व है तथा जो उसे जानना चाहता है, उसे केवल इसी रहस्य को जानने की आवश्यकता है। इसके पश्चात् भागवत के दस लक्षणों सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, अति, मन्वंतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति व आश्रय की चर्चा के साथ द्वितीय स्कंध समाप्त हो जाता है।

## तृतीय स्कंध

उद्धव व विदुर जी की भेंट के साथ यह स्कंध प्रारंभ होता है और द्वितीय व तृतीय अध्याय में उद्धव जी भगवान की बाल-लीलाओं का व अन्य लीला चरित्रों का वर्णन करते हैं। चौथे अध्याय में उद्धव जी से विदा होकर विदुर जी का मैत्रेय ऋषि के पास जाने का प्रसंग है और पांचवे अध्याय में मैत्रेय जी द्वारा सृष्टि क्रम के वर्णन का प्रसंग है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी की उत्पत्ति और ब्रह्माजी द्वारा भगवान की बहुत ही भावपूर्ण स्तुति का वर्णन है। इसके पश्चात् दस प्रकार की सृष्टि, मन्वंतरादि काल विभाग का वर्णन, सृष्टि के विस्तार का वर्णन है। 13वें अध्याय में वाराह अवतार की कथा है और 14वें अध्याय में दिति का असमय में कामातुर होकर अपने पति ऋषि कश्यप जी से समागम का वर्णन है। सायंकाल में लोकधर्म के विरुद्ध गर्भ धारण करने के कारण दिति को उसके पति कश्यप ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारे गर्भ से दो बड़े ही अमंगलकारी और अधम राक्षस पुत्र जन्म लेंगे, जिनका स्वयं प्रभु चक्रपाणि वध करेंगे, परंतु दिति की अनुनय-विनय से द्रवित होकर ऋषि ने इतना अवश्य कहा कि तुम्हारा एक पौत्र अवश्य भगवान का भक्त होगा, संसार जिसका यशोगान करेगा। इसके पश्चात् जय-विजय नामक विष्णुलोक के द्वारपालों को सनक सनन्दक के शाप का प्रसंग है और शाप के कारण उनके स्वर्ग से पतन और दिति के पुत्र रूप में हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष के जन्म की कथा है। 18वें अध्याय में हिरण्याक्ष के साथ भगवान वाराह के युद्ध का तथा उसके वध का प्रसंग है। 20वें अध्याय में पुनः ब्रह्मा जी द्वारा रचित सृष्टि के विभिन्न भेदों की चर्चा है। इसके पश्चात् सरस्वती तट पर कदर्म की तपस्या व उसके फलस्वरूप भगवान का स्वयं उनके यहां अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्र की रचना करने का वरदान देने की कथा का विस्तार से वर्णन है। इसके पश्चात् कदर्म-देवहूति के विवाद, विहार और सांख्यशास्त्र का उपदेश देने के लिए भगवान विष्णु के अवतार कपिल मुनि के जन्म का विवरण है। इसके पश्चात् माता देवहूति के प्रश्न व भगवान कपिल द्वारा उन्हें सांख्य-योग के विभिन्न गूढ़ रहस्यों के वर्णन के साथ यह स्कंध समाप्त हो जाता है।

## चतुर्थ स्कंध

इस स्कंध की प्रसिद्धि 'पुरञ्जनोपाख्यान' के कारण है, जिसमें भारतीय दर्शन, अध्यात्म व तत्वज्ञान का विभिन्न रूपकों के माध्यम से बहुत ही सरल व सहज रूप से वर्णन किया गया है।

कथा इस प्रकार है कि पूर्वकाल में पुरंजन नामक एक यशस्वी राजा था, जिसका अविशात नामक मित्र था। कोई भी उसकी चेष्टाओं को नहीं समझ सकता था। उसे तरह-तरह के भोगों को भोगने की लालसा थी, परंतु इस सबके लिए उसे कोई उपयुक्त नगर नहीं मिल रहा था। आखिर एक दिन उसे कर्मभूमि भारतखंड में नौ द्वारों वाला एक बहुत ही सुंदर नगर दिखाई दिया। वहां उसे एक अतीव सुंदरी भी दिखाई दी, जिसके साथ दस सेवक थे। इस नगर की रक्षा एक पांच फन वाला सर्प कर रहा था। राजा उस स्त्री के प्रति कामासक्त हो गया और रति-याचना करने लगा। इस पर वह नारी बोली कि ठीक है राजन, मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार है और हम इस नौ द्वार वाली पुरी में निवास करेंगे व भोगों का आनंद लेंगे। नारद जी आगे कहते हैं कि वह नगरी बड़ी ही विचित्र थी। उसमें सात द्वार नगरी के ऊपर और दो द्वार नीचे थे। एक दिन अकस्मात् वह राजा अपने 11 सेनापतियों को साथ लेकर और 5 घोड़ों के रथ पर बैठकर शिकार के लिए गया और बहुत से पशुओं का शिकार किंया और जब वह वापस नगर आया, तो पाया कि रानी कुपित होकर कोप भवन में बैठी है। राजा ने जाकर उसे मनाया और पुनः भोग-विलास में डूब गया। उसकी भोग-विलासिता के कारण शत्रुओं—चण्डवेग गन्धर्व और उसके मित्रों ने नगर पर आक्रमण कर दिया। बेचारा पंचमुखी नाग अकेला ही काफी समय तक शत्रुओं से लड़ता रहा। इधर राजा भी शत्रु के आक्रमण की सूचना सुनकर काफी भयभीत हो गया। इस बीच काल कम्पा और उसके पति यवनराज भय ने उस पंचफन वाले नाग को पराजित कर दिया। यवनराज भय के बड़े भाई प्रज्वार ने उस नगर में आग लगा दी। यवनराज भय ने राजा को बंदी बना मृत्युदंड दे दिया।

अगले अध्याय में इसी पुरंजनोपाख्यान के रूपकों का वास्तविक अर्थ स्पष्ट करते हुए नारद जी कहते हैं कि हे राजा ! प्राचीनबर्हि पुरंजन स्वयं यह देहधारी जीव हैं और नौ द्वारों वाला यह नगर मानव देह ही है, जिसमें नौ छिद्र रूपी द्वार हैं (2 आंखे+2 कान+2 नासिका+1 मुख+1 गुदा+1 लिंग)। अविद्या व अज्ञान की माया रूपी प्रतिमूर्ति वह अतीव सुंदरी है तथा उसके दस सेवक दस इन्द्रियां हैं (5 कर्मेदिया+5 ज्ञानेंद्रियां)। यह इंद्रियों रूपी सेवकों से घिरी माया की प्रतिमूर्ति अज्ञान व अविद्या नवछिद्रमय देह को पूर्णतः भोगों में लिप्त कर देती है। ऐसे

में इस नवछेदमय अयोध्या पुरी की रक्षा करने वाला पंचमुखी सर्प पंच प्राणवायु हैं (प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान)। 21 सेनापतियों व 5 घोड़े जुते रथ क्रमशः पंच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेंद्रियों व ग्यारहवां मन तथा इंद्रियों के 5 विषय (रस, रूप, गंध, स्पर्श आदि) 5 जुते घोड़े हैं। पुण्य व पाप इन दो कर्मों वाले रथ के पहिए हैं, तीन गुण (सत्व, रज, तम) उस रथ की ध्वजा हैं। त्वचा आदि सात धातुओं का उस पर आवरण है। विभिन्न इंद्रियों के विषयों को अन्यायपूर्वक ग्रहण करना ही शिकार खेलना है। काल की प्रबल गति व वेग ही शत्रु गंधर्व चंडवेग है और उसने 360 साथी गंधर्व वस्तुतः वर्ष के 360 दिन व रात्रि हैं, जो आयु का हरण करते रहते हैं। उन्हीं से यह पंच प्राणों वाला दिन-प्रतिदिन युद्ध करता-करता पराजित हो जाता है। काल भयग्रस्त जीव के जीवन का ज्वर अर्थात् व्याधि आदि से अंत कर देता है।

## पंचम स्कंध

26 अध्यायों के इस स्कंध में मुख्यतः नाराशंसी गाथाएं हैं, जिनमें प्रियव्रत, अग्नीध्र, राजा नामि, ऋषभ देव व भरत-चरित्र का वर्णन है। यह भरत, शकुंतला पुत्र भरत न होकर जड़ भरत है। इसके पश्चात् भरत जी का मृग के मोहपाश में फंसकर मृग-योनि में जन्म लेने का वृतांत है, इसके पश्चात् गण्डकी नदी के प्रताप से उनके ब्राह्मण कुल में जन्म लेने की कथा है तथा जड़ भरत व सिंधु सौवीर नरेश के मध्य हुए आध्यात्मिक संवाद का भरत जी के उपदेश के रूप में संकलन है। इसके पश्चात् पूर्व वर्णित पुरंजनोपाख्यान की भांति रूपक के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से जीवों के संसार रूपी मार्ग का बड़ा ही रोचक व सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। विशेष रूप से 13वां तथा 14वां अध्याय तो अविद्या व अज्ञान का नाश करने वाली तथा ज्ञानचक्षुओं को प्रकाशित करने वाली चिंतामणि के समान है।

इसके पश्चात् भरत के वंश का व भुवनकोश का वर्णन है। 17वें अध्याय में पुण्यसलिला गंगा के अवतरण और भगवान शंकरकृत संकर्षण देव की स्तुति है। इसके पश्चात् भारत वर्ष का पौराणिक भूगोल की दृष्टि से वर्णन है, जिसके साथ ही अन्य छः द्वीपों व सूर्य की रथ गति का भी विस्तृत विवेचन है। 22वें अध्याय में भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति और उनकी गति का वर्णन है। ध्यान व शांतचित्त से विष्णु भगवान का स्मरण करने के लिए शिशुमार नामक ज्योतिश्चक्र का वर्णन है।

शिशुमार वस्तुतः सूंस को कहते हैं और शिशुमार-चक्र के अनुसार यह सूंस कुंड़ली मारे हुए नीचे की ओर मुंह करके बैठा है। इसकी पूंछ पर ध्रुव स्थित है।

पूंछ के मध्य में प्रजापति, इंद्र, अग्नि और धर्म हैं। कटि में सप्तऋषि गण स्थित हैं। यह शिशुमार थोड़ी दायीं ओर सिकुड़कर कुंडली मारकर बैठा है और उत्तरायण के चौदह नक्षत्र, जो क्रमशः अभिजित से पुनर्वसु तक हैं, इसके दायीं ओर हैं और दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र जो क्रमशः पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ तक हैं, वह इसके बाईं ओर हैं। इसके मुख में मंगल, लिंग प्रदेश में शनि, मुकुट में गुरु, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण और नेत्र में चंद्रमा तथा नाभि में शुक्र, गले में राहु व समस्त अंगों में केतु स्थित है। वस्तुतः यह भगवान का ग्रह, नक्षत्र व तारों के रूप में विराट स्वरूप है, जो चिंतन व ज्योतिष के लिए अत्यंत उपयोगी है। (आज भी बहुत से ज्योतिष के विद्वान् शिशुमार चक्र का प्रयोग करते हैं)। इसके पश्चात् विभिन्न प्रकार के नरक लोकों यथा रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, सूचीमुख आदि 28 नरकों का वर्णन है।

## षष्ठ स्कंध

19 अध्यायों वाला यह छठा स्कंध नारायण कवच व पुंसवन व्रत विधि के कारण बहुत ही जनोपयोगी है। (पुंसवन व्रत विधि करने से पुत्र संतान की प्राप्ति होती है)। नारायण कवच बहुत ही प्रभावी कवच है, जिसके पाठ से व्याधियों, रोगों, ग्रहों के दुष्प्रभावों व अनेक अमंगलों से मनुष्य की रक्षा होती है। एकादशी व द्वादशी को तथा पूर्णिमा तिथि को इसको अवश्य करना चाहिए।

इस स्कंध का प्रारंभ कान्यकुब्ज के अंजामिलोपाख्यान से होता है, जो अपने पुत्र नारायण को पुकारते-पुकारते मृत्यु को प्राप्त होकर भगवान विष्णु के परमलोक को गया था। इसके पश्चात् भागवत् धर्म का निरूपण करते हुए विष्णुदूत बताते हैं कि यदि चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी और चाहे कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, यदि वह भगवान विष्णु के नाम का स्मरण करता है यथा नारायण, गोविंद, वासुदेव, माधव आदि तो उसी क्षण उसके कोटि-कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात् 4, 5 व छठे अध्याय में दक्ष प्रजापति के चरित व वंश का बड़े विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

आठवें अध्याय में प्रख्यात नारायण कवच है, जिसके प्रयोग से देवराज इन्द्र तथा शत्रुओं की चतुरंगिनी सेना को पराजित कर सकुशल निकल आए थे। अत्यंत भय, हानि, आसन्न पराजय, असुरक्षा के अवसर पर इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। कौशिकगोत्री ब्राह्मण व गंधर्वराज चित्ररथ की कथा के अनुसार इस कवच का प्रभाव मृत्यु के पश्चात् मृत शरीर में भी रहता है। इस कवच के पाठ से पूर्व हाथ-पैर धोकर आचमन करें, फिर हाथ में कुश की पवित्री धारण करके उत्तर की

ओर मुंह करके बैठ जाएं। इसके पश्चात् कवच धारण पर्यंत और कुछ भी नहीं बोलना चाहिए। ॐ **नमो नारायणाय** व ॐ **नमो भगवते वासुदेवाय** इन मंत्रों द्वारा हृदयादि अंगन्यास तथा अंगुष्ठादि करन्यास करें। ॐ **नमो नारायणाय** इस अष्टाक्षर मंत्र का क्रमशः पैरों, घुटनों, जांघों, पेट, हृदय, वक्षस्थल, मुख और सिर में न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात् ॐ **नमो भगवते वासुदेवाय** इस द्वादशाक्षर मंत्र के ॐ आदि बारह अक्षरों का दाईं तर्जनी से बाईं तर्जनी तक दोनों हाथ की 8 अंगुलियों और दोनों अंगूठों की दो-दो गांठों में न्यास करें। इसके पश्चात् ॐ **विष्णवे नमः** इस मंत्र के पहले अक्षर ॐ का हृदय में, **'वि' का ब्रह्मरंध्र में, 'ष' का भौंहों के बीच, ण का चोटी में, वे का दोनों नेत्रों में और न का शरीर की सब गांठों** में न्यास करें। **ॐनमः अस्त्राय फट'** कहकर दिगबंध करें।

## नारायण कवच

इसके पश्चात् वृत्रासुर द्वारा देवताओं की पराजय, दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र-निर्माण व वृत्रासुर वध की संपूर्ण कथा है। इसके पश्चात् वृत्रासुरी से पूर्व जन्म का वृतांत और मां पार्वती द्वारा चित्रकेतु गंधर्व को शाप देने की कथा है। इस स्कंध का अंतिम 19वां अध्याय बहुत ही तनोपयोगी व महत्त्वपूर्ण है। जिसमें पुंसवन-व्रत की विधि है, जिसके विधिपूर्वक करने से पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है तथा साथ ही विभिन्न ऐश्वर्यों की भी प्राप्ति होती है। यह व्रत मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से प्रारंभ होता है। इसके पश्चात् मरुदगणों के जन्म की कथा सुनकर स्नान करके दो श्वेत वस्त्र धारण करें और कुछ भी खाने से पूर्व भगवान लक्ष्मी-नारायण की पूजा करें और विभिन्न मंत्रों से जो इस अध्याय में दिए हुए हैं, उनसे विधिपूर्वक पूजन करें। मनुष्य को जीवन में एक बार इस व्रत का अवश्य पालन करना चाहिए।

## सप्तम स्कंध

सप्तम स्कंध में मुख्यतः हिरण्यकशिपु व भक्तराज प्रह्लाद की कथा का ही विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त मानव धर्म, वर्ण धर्म और स्त्री धर्म का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। ब्राह्मण के 6 कर्म क्रमशः अध्ययन, अध्यापन, दान लेना, दान देना और यज्ञ करना, यज्ञ कराना—माने गए हैं। क्षत्रिय को दान लेना निषिद्ध माना गया है। ब्राह्मणों के जीवन निर्वाह के लिए चार प्रकार के साधनों द्वारा ब्राह्मणत्व में त्याग की चरम सीमा को प्रकट किया गया है :

1. **वार्ता**—यज्ञाध्ययनादि कराकर धन लेना।

**2. शालीन**—बिना मांगे जो कुछ प्राप्त हो जाए, उसी में निर्वाह करना।

**3. यायावर**—नित्यप्रति धान्यादि मांग लाना।

**4. शिलोञ्छन**—किसानों द्वारा खेत काटकर अन्न घर पर ले जाने के पश्चात् पृथ्वी पर जो अन्न के कण गिरे रह जाते हैं, उन्हें 'शिल' कहते हैं तथा बाजार में पड़े हुए अन्न के दानों को 'उञ्छ' कहते हैं। इन शिल व उञ्छों को बीनकर अपना जीवन निर्वाह करने वाले ब्राह्मण 'शिलोञ्छन' वृत्ति वाले कहलाते हैं। इसके पश्चात् ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमों के नियम का वर्णन है और इसके पश्चात् 13वां अध्याय आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके अवधूत दत्तात्रेय जी एवं भक्त प्रहलाद के संवाद के माध्यम से यति, धर्म, त्याग व निस्पृहता की चर्चा की गई है। इस चर्चा में दत्तात्रेय जी कहते हैं कि इस लोक में उन्होंने गुरु के रूप में शिक्षा अजगर और मधुमक्खी से ली है, क्योंकि इनसे वैराग्य और संतोष की शिक्षा मिलती है। इसके पश्चात् गृहस्थ संबंधी सदाचार और गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म के वर्णन के साथ यह अध्याय समाप्त हो जाता है।

## अष्टम स्कंध

24 अध्यायों का यह स्कंध कई विशिष्टताओं के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना गया है। इसमें ग्राह द्वारा गजेंद्र का पकड़ा जाना और भगवान की स्तुति द्वारा उसकी मुक्ति का प्रसंग है। गजेन्द्र मोक्ष की घटना व स्तुति भगवान को विशेष प्रिय है और एकादशी को इसका पाठ विशेष फलदायक माना गया है। इसके पश्चात् समुद्र मंथन का उद्योग व विभिन्न रत्नों की उत्पत्ति व भगवान विष्णु का मोहिनी रूप में अमृत बांटने की कथा है। फिर देवासुर संग्राम व महादेव जी के मोहिनी रूप पर मोहित होने की कथा है। अब पुनः भगवान के वामन अवतार व राजा बलि की कथा का वर्णन आता है और अंत में मत्स्यावतार की कथा के साथ यह स्कंध समाप्त हो जाता है।

## नवम स्कंध

नवम स्कंध में मुख्य रूप से अन्य पुराणों की भांति पुराणों के एक प्रमुख लक्षण वंशानुचरित का वर्णन है। मनु व इनके पांच पुत्रों के वंश, इक्ष्वाकु वंश, निमि के वंश, चंद्र वंश, विश्वामित्र जी के वंश, पुरु के वंश, भरत के वंश, मगध देशीय राजाओं के वंश, अनु, द्रह्यु, तुर्वसु और यदु आदि वंशों का वर्णन है।

## दशम स्कंध

90 अध्यायों का यह स्कंध श्रीमद्भावगत का सबसे विस्तृत व महत्त्वपूर्ण अध्याय है। यह स्कंध पुनः दो खंडों, पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध में विभाजित है। इस स्कंध में प्रसिद्ध रास पंचाध्यायी भी प्राप्त होती है। पूर्वार्ध में 49 अध्यायों में भगवान श्रीकृष्ण के प्राकट्य से लेकर अक्रूर जी के हस्तिनापुर तक जाने की कथा है। उत्तरार्ध में शेष 40 अध्याय में प्रभु के जरासंध से युद्ध व द्वारकापुरी के निर्माण से लेकर भगवान का मरे हुए ब्राह्मण-बालकों को वापस लाने तक की कथा है। यह स्कंध संपूर्ण भागवत का साररूप-कृष्णलीलामृत से आप्लावित है तथा कलियुग में त्रिताप निवारण के लिए मर्त्यलोक के मनुष्यों की सर्वाधिक दुर्लभ वस्तु है। **सकल पदारथ है जग माहीं, बुद्धिहीन नर पावत नाहीं।** के अनुरूप ऐसे पवित्र, पापविमोचक, पुण्यप्रदायक स्कंध के होते हुए, जो इसका पठन-पाठन नहीं करता, उससे बड़ा दुर्भाग्यशाली इस संसार में संभवतः कोई नहीं है।

## दशम स्कंध (पूर्वार्ध)

दशम स्कंध के पूर्वार्ध का प्रारंभ वासुदेव-देवकी विवाह और कंस द्वारा देवकी के 6 पुत्रों की हत्या के प्रसंग से प्रारंभ होता है। द्वितीय अध्याय में भगवान के अंश शेषजी के गर्भ में सातवें बालक के रूप में प्रवेश करने का प्रसंग है। **(गीता प्रेस गोरखपुर के श्रीमद्भागवत महापुराण की व्याख्या में यह कहा गया है कि त्रेतायुग में जब भगवान ने श्रीराम अवतार लिया था, तब शेषजी लक्ष्मण रूप में भगवान के छोटे भ्राता बने थे और इसी कारण उन्हें इस बात का दुःख था कि मैं प्रभु को वन जाने से रोक नहीं सका और बड़े भाई की इच्छा और आज्ञा का सम्मान करना पड़ा। अतः द्वापर के कृष्णावतार में मैं बड़ा भ्राता बनकर अपने प्रभु की भलीभांति सेवा कर सकूंगा और उनके दुःखों व विपत्तियों को स्वयं सह लूंगा, अतः वह श्रीकृष्ण भगवान से पूर्व ही माता देवकी के गर्भ में आ गए)** जब शेषजी ने अपने अंश द्वारा माता देवकी के गर्भ में प्रवेश किया, तभी भगवान विष्णु ने अपनी योगमाया को आदेश दिया कि वह शेष जी के अंश को देवकी ज़ी के गर्भ से निकालकर रोहिणी जी के गर्भ में रख दे और स्वयं जाकर गोकुल में नन्द बाबा की पत्नी यशोदा के गर्भ में स्थित हो जाए और स्वयं भगवान देवकी जी के गर्भ में स्थित हो जाएंगे। भगवान ने योगमाया को यह भी आशीर्वाद दिया कि कलियुग में पृथ्वी लोक में लोग तुम्हारे विभिन्न नामों से स्थान बनवाएंगे और पूजन करेंगे। तुम्हारी पूजा दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा; चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या,

माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका के नामों से होगी। भगवान शेष के अंश को देवकी जी के गर्भ में से खींचे जाने के कारण संसार में वह संकर्षण के नाम से प्रसिद्ध हो जाएंगे और लोकरंजन करने के कारण 'राम' कहलाएंगे। (भारतीय वाङ्मय में तीन राम ही प्रसिद्ध हैं : 1. मर्यादापुरुषोत्तम भगवान राम, दूसरे श्री बलराम व तीसरे परशु धारण करने वाले परशुराम)।

इसके पश्चात् भगवान शंकर, ब्रह्मा जी व अन्य देवताओं तथा नारद जी द्वारा गर्भस्थ भगवान की बड़ी ही भावपूर्ण स्तुति है, जिसमें वेद व उपनिषदों के दर्शन व अध्यात्म का सार वृक्षरूपी रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। भगवान की स्तुति में नारद जी कहते हैं कि हे सत्यस्वरूप भगवन्, यह संसार वस्तुतः एक सनातन वृक्ष है, जिसका आश्रय प्रकृति है। इसमें दो प्रकार के सुख व दुख रूपी फल लगते हैं। इसकी तीन प्रमुख जड़ें हैं—सत्व, रज व तम। इसका पोषण चार प्रकार के रसों से होता है : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इस वृक्ष को जानने के 5 मुख्य प्रकार हैं 1. श्रोत्र, 2. त्वचा, 3. नेत्र, 4. रस, 5. नासिका। यह वृक्ष 6 प्रकार के स्वभाव वाला है। 1. पैदा होना, 2. रहना, 3. बढ़ना, 4. बदलना, 5. घटना, 6. नष्ट हो जाना। इस वृक्ष की सात प्रकार की छाल है—1 रस, 2. रुधिर, 3. मांस, 4. मेरु, 5. अस्थि, 6. मज्जा, 7. भुक्त। इस वृक्ष की 8 शाखाएं हैं 1. पंच महाभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) 6. मन, 7. बुद्धि, 8. अहंकार इसमें नौ खोड़र है। इसके दस पत्ते हैं, जो वस्तुत दस प्राण हैं 1. प्राण, 2. अपान, 3. व्यान 4. उदान, 5. समान, 6. नाग, 7. कूर्म, 8. कृकल, 9. धनंजय, 10. देवदत्त। इस वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं 1. जीव 2. ईश्वर (यह रूपक **द्वा सुपर्णा सयुजा सखायां...अभिचाकशीत** संहिता 1.164.20, मुण्डकोपनिषद 3.11 आदि से लिया गया है। विस्तृत व्याख्या हेतु लेखक की पुस्तक 'उपनिषदों में क्या है' में श्वेताश्वतर उपनिषद् का चतुर्थ अध्याय देखें)।

इसके पश्चात् **तृतीय अध्याय** में भगवान श्रीकृष्ण का भाद्रपद मास में कृष्ण पक्ष में अष्टमी तिथि को अर्द्ध रात्रि में रोहिणी नक्षत्र में जन्म लेने का वर्णन है। यह वर्णन इतना रोचक, मनोहारी व चित्ताकर्षक है कि मन रसाद्रित हो जाता है। स्वर्ग में देवता दुन्दुभि बजा रहे हैं, किन्नर और गंधर्व मधुर स्वर में गायन कर रहे हैं, सिद्ध और चारण मंगलमय स्तुति कर रहे हैं। विद्याधारी अप्सराएं नृत्य कर रही हैं। जल से भरे बादल धीरे-धीरे गर्जन कर रहे हैं। देवता पुष्प वर्षा कर रहे हैं। भगवान ने भाद्रपद मास में इसलिए जन्म लिया, क्योंकि वह संसार का भद्र या कल्याण करने के लिए अवतार ले रहे थे। कृष्ण पक्ष में भगवान ने इसलिए जन्म लिया, क्योंकि वह स्वयं कृष्ण रूप में अवतार ले रहे थे। अष्टमी तिथि पक्ष

के बीचोबीच संधि स्थल पर पड़ती है और अष्टमी विशेष रूप से योगमाया की प्रिय तिथि है, अतः भगवान ने अष्टमी तिथि को चुना। रात्रि में भगवान ने इसलिए जन्म लिया, क्योंकि योगियों को रात्रि विशेष प्रिय है। दूसरे भगवान चंद्रवंश में जन्म ले रहे थे, अतः रात्रि में जन्म लेना ही उचित समझा। रोहिणी चन्द्रमा का सर्वप्रिय नक्षत्र है, अतः रोहिणी नक्षत्र में भगवान ने अपना स्वरूप प्रकट किया। इसके पश्चात् पृश्नि और सुतपा रूप में देवकी व वासुदेव के पूर्व जन्मों के वृतांत का भगवान स्मरण कराते हैं। अदिति और कश्यप बताते हैं कि यह तीसरी बार भगवान उनके पुत्र रूप में जन्म ले रहे हैं (भगवान कृष्ण के रूप में जन्म लेने से पूर्व भगवान ने देवकी व वसुदेव के यहां पूर्व जन्म में उपेंद्र व वामन रूप में भी अवतार लिया था)। वस्तुतः अपने सबसे पहले जन्म में जब पृश्नि व सुतपा के रूप में आप तप कर रहे थे, तो आपने मुझसे वर मांगा था कि आपके मेरे सदृश पुत्र हो। मेरे सृदश तो और कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि वैसा कोई है ही नहीं, अतः यह तो मैं पूर्ण नहीं कर सकता था। किसी को कोई वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके उसे पूरी न कर सकने पर शास्त्रों में उससे तिगुनी वस्तु देने का विधान है, अतः मैं ही आपके यहां तीन बार पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ हूं।

**चतुर्थ व पंचम अध्याय** में कंस के हाथ से छूटकर योगमाया का आकाश में जाना व आकाश में जाकर भविष्यवाणी करने का प्रसंग है तथा गोकुल में भगवान के जन्म महोत्सव के विशाल उत्सव की चर्चा है।

**छठे अध्याय** में पूतना उद्धार की कथा है। पूतना ने जब भगवान को बाल रूप में मारने के उद्देश्य से स्तनों पर विष लगाकर दुग्धपान कराना चाहा, तो भागवत में वर्णन मिलता है कि भगवान नेत्र बंद कर लिए। अब भगवान ने नेत्र क्यों बंद कर लिए ? इस पर जितनी उत्प्रेक्षाएं, व्याख्याएं, मत व टीकाएं प्राप्त होती हैं, वह असंख्य हैं, जैसे हरि अनंत हरि कथा अनंता, परंतु फिर भी कुछ मतों की व्याख्या करना यहां समीचीन होगी।

1. पुष्टिमार्गी शुद्धद्वैताचार्य वल्लभाचार्य जी ने अपनी सुबोधिनी टीका में इसकी दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहा है कि वस्तुतः अविद्या ही पूतना का रूप है और भगवान श्रीकृष्ण ने विचार किया कि अविद्या तो मेरे सम्मुख टिक नहीं सकती, फिर मेरी लीला कैसे पूर्ण होगी, इसलिए प्रभु ने नेत्र बंद कर लिए।

2. राक्षसी व बालघातिनी जैसे पाप करने वाली इस पूतना ने, इस जन्म में तो कुछ ऐसे शुभ कर्म किए नहीं कि मेरे दर्शन हों, फिर यह मेरे सम्मुख कैसे आ गई। अतः प्रभु नेत्र बंद करके उसके पूर्व जन्मों के वृतांत का ध्यान करने लगे, तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यह पूतना पूर्व जन्म में राजा बलि की कन्या रत्नमाला

थी और जब मैं वामन अवतार में इसके पिता की यज्ञशाला में गया था, तो इसके मन में यह भावना हुई थी कि यदि ऐसा बालक मेरे यहां हो, तो मैं उसे स्तनपान कराऊंगी। वामन रूप में भगवान ने इस मनोरथ को जान लिया और द्वापर में उसकी इस इच्छा को पूर्ण किया। इसीलिए कहा है कि यदि मनुष्य के मन में कोई भी इच्छा या संकल्प कभी उदित होता है, तो वह कभी नष्ट नहीं होता, अपितु आकाश में अक्षय रूप में स्थिर रहता है, जब तक उसकी पूर्ति नहीं हो जाती।

3. एक अन्य मत यह भी है कि पूतना बालघातिनी है, अतः ऐसी पापिनी का मुंह नहीं देखना चाहिए, इसलिए प्रभु ने नेत्र बंद कर लिए।

4. भगवान तो विश्व रूप हैं, समष्टि रूप हैं, जो लीलावतार के लिए व्यष्टि रूप में प्रकट हुए थे। अतः ब्रह्मांड के जीवों में भय व्याप्त हो गया कि प्रभु विषपान करने जा रहे हैं, तो हमारा क्या होगा, जब यह विष उदर में जाएगा, अतः उन्हें अभय प्रदान करने के लिए भगवान ने नेत्र बंद कर लिए।

5. श्रीकृष्ण भगवान ने भगवान शंकर की हलाहल पात्र की लीला का स्मरण करते हुए नेत्र बंद कर लिए और भगवान शंकर के नीलकंठ स्वरूप का ध्यान करने लगे।

6. दोनों नेत्र सूर्य व चंद्र के प्रतीक माने गए हैं और जीव अपने कर्मवश दो ही मार्गों को जाता है (देवयान या पितृयान), परंतु सूर्य और चंद्र दोनों ही इसे अपने मार्ग से जाने नहीं देना चाहते थे। अतः दोनों ने अपने-अपने प्रतिनिधि नेत्रों को बंद कर लिए।

7. भगवान कृष्ण ने सोचा, यदि मैं नेत्र बंद नहीं करूंगा, तो मैं इस राक्षसी को करुण दृष्टि से देखूंगा, फिर इसका वध कैसे होगा ? यदि उग्र दृष्टिपात कर दिया, तो यह अभी भस्म हो जाएगी और मुझे तो अपनी लीला करनी है। अतः उचित है कि मैं नेत्र ही बंद कर लूं।

8. तंत्र शास्त्र के अनुसार स्त्री स्वयं में परम शक्ति स्वरूपा है, सृजनकर्मी है तथा सृष्टि संभव है। दोनों स्तन व सृजन पद्म (योनि) मिलकर एक त्रिभुज का रूप बनाते हैं, जो शक्ति का यांत्रिक स्वरूप है। यंत्र रूपी विग्रह है, अतः देवी के इस रूप का दर्शन होते ही प्रभु ने श्रद्धा व भक्ति वश अपने नेत्र बंद कर लिए।

9. एक अन्य सहृदय कवि का मत है कि भगवान के नेत्र तो राजहंस सदृश हैं और पूतना बक रूपा है, अतः हंस रूपी नेत्र स्वयं ही बंद हो गए।

10. भगवान ने सोचा कि यदि मैं इसका दुग्धपान कर लेता हूं, तो यह मेरी धात्री रूप माता हो गई और माता को मैं कैसे मार कर सकता हूं, अतः मैं नेत्र ही बंद कर लेता हूं, जिससे मुझे इसका वेष व रूप ही नहीं दिखाई देगा और मैं

धात्री हत्या के दोष से मुक्त रहूंगा।

11. भगवान विष का पान कर रहे थे, अतः योग द्वारा उस विष को निवृत्त करने के लिए उन्होंने योगदृष्टि से ध्यान करना प्रारंभ कर दिया और सांसारिक दृष्टि बंद कर दी।

12. भगवान तो जगत्पिता हैं, यह संपूर्ण सृष्टि उनका संकल्प मात्र है, चाहे वह मनुष्य हो, देव हो या असुर अथवा राक्षस। यह सब हैं तो उसी परमपिता की संतान, उसके अंश। अब संतान चाहे अच्छी हो या बुरी, यदि पिता को उसे मारना पड़े, तो दुःख तो होता ही है। अतः अपनी संतान की मृत्युकालीन पीड़ा को प्रभु देखना नहीं चाहते थे। इस कारण प्रभु ने नेत्र ही बंद कर लिए।

पूतना मोक्ष की कथा के पश्चात् शकरभंजन व तृणावर्त उद्धार की कथा का वर्णन है। **अष्टम अध्याय** में यदुवंशियों के कुल पुरोहित द्वारा भगवान के नामकरण संस्कार का वर्णन है। नामकरण संस्कार के समय गर्गाचार्य कहते हैं कि हे नन्द बाबा, यह जो सांवला-सांवला सा तुम्हारा बेटा है, यह प्रत्येक युग में शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगों में यह क्रमशः 'श्वेत रक्त व पीत—इन विभिन्न रंगों में अवतरित हुआ था, परंतु अब यह कृष्ण वर्ण का हुआ है, अतः इसका नाम कृष्ण होगा। यह पुत्र पहले कभी वसुदेव जी के घर भी जन्मा था, इसलिए इसे 'श्रीमान वासुदेव' भी कहा जाएगा। इसके पश्चात् भगवान की मनमोहक व मनोहर परंतु रहस्यमयी बाल लीलाओं का वर्णन है, जिनके लिए यह पुराण इतना प्रसिद्ध व लोकप्रिय है तथा भक्ति रस का पवित्र कोश माना गया है। ये लीलाएं माखन चोरी की, बालहठ द्वारा चंद्रमा को मांगने की, मिट्टी खाने की और समस्त मुख खोलने पर समस्त ब्रह्मांड को देखने की लीलाएं हैं। मथुरा जिले में गोकुल के निकट आज भी ब्रह्मांड घाट नामक स्थान है, जहां प्रभु ने यह लीला की थी।

**नवम अध्याय** में भगवान के ऊखल बंधन की लीला है, जहां माता यशोदा भगवान को रस्सी से बांधना चाहती हैं, परंतु रस्सी दो अंगुल कम ही रहती है। चाहे उसमें कितनी भी रस्सी जोड़ी जाए। यहां मां यशोदा के समस्त प्रयासों के पश्चात् रस्सी के दो अंगुल कम पड़ने की भी विद्वानों ने विविध व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। यथा—

1. भगवान में तो यह गुण है कि उनके दर्शन मात्र से तो जीवन के कोटि-कोटि जन्मों के कर्मों के बंधन कट जाते हैं और वह मुक्त हो जाता है, फिर यह रस्सी भला उस सर्वगुणसंपन्न सच्चिदानंद परब्रह्म को कैसे बांध सकती है ?

2. दो का अर्थ ही अज्ञान है, द्वैत भाव अर्थात् जीव और ब्रह्म की दो विभिन्न सत्ताएं हैं। यही तो समस्त माया, अज्ञान व बंधन का कारण है। इसलिए भगवान

दो अंगुल की रस्सी की ही कमी रहने देते हैं।

3. साधारण अर्थ में तो क्योंकि दो वृक्षों का उद्धार करना था, अतः भगवान ने दो अंगुल रस्सी ही कम होने दी। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत-सी व्याख्याएं भी हैं।

**दशम अध्याय** में नलकूबर और मणिग्रीव को नारद जी के श्राप की कथा है, जिसमें शरीर व धन की निःसारता का वर्णन किया गया है। नारद जी कहते हैं कि जरा सोचो, हे विषय भाग में लिप्त मनुष्यो, जिस शरीर व धन पर तुम्हें इतना घमंड है, वह शरीर किसका है ? गर्भाधान करने वाले पिता का या नौ माह पेट में रखने वाली माता का या उस अन्न का, जिसे खाकर वह पोषित हो रहा है ? इसका अंत तो अग्नि में जलकर राख बन जाना है या कुत्तों व सियारों द्वारा नोचा जाना है, फिर इस शरीर पर किस कारण से इतना घमंड ! ऐसे ही धन तो स्वयं में एक दोष है। भगवान स्वयं कहते हैं कि जिस पर मैं अनुग्रह करता हूं, सर्वप्रथम उसका धन छीन लेता हूं। धनी पुरुष में तीन प्रकार के दोष माने गए हैं : 1. धन जो स्वय में दोष है, 2. धन होने का अभिमान, 3. धन की तृष्णा, लालसा और धन आ जाने पर इसकी इच्छा। इन तीन दुर्गुणों में से पहले दो दुर्गुण दरिद्र पुरुषों में नहीं होते। अतः भगवत् कृपा और सत्पुरुषों के संग से उनका शीघ्र कल्याण हो जाता है।

11वें अध्याय में प्रभु की वृन्दावन यात्रा और वत्सासुर और वकासुर के उद्धार का प्रसंग है। 12वें अध्याय में अधासुर के उद्धार की कथा है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी के मोह की कथा है, जिसमें भगवान की लीला का रूप देखने के लिए ब्रह्माजी ने समस्त ग्वालों व गायों को छिपा दिया और ब्रह्मलोक चले गए, और तब भगवान ने संपूर्ण गायों व गोपबालकों को अपने रूप से ही बना दिया और जब ब्रह्माजी एक वर्ष बाद वापस आए, तो वह स्वयं भी भ्रम में पड़ गए कि कौन से ग्वाले व गाएं वास्तविक हैं, यह या वह। अतः उन्होंने प्रभु की स्तुति की और उनकी माया से मोहित होकर उनका गुणगान करते हुए ब्रह्मलोक चले गए। ब्रह्माजी द्वारा 14वें अध्याय में की गई स्तुति में 'नारायण' शब्द की बड़ी ही गूढ़ व गंभीर व्याख्या मिलती है।

15 से 17 अध्याय में धेनुकासुर के उद्धार की व कालिया नाग के दमन की प्रभु लीला का वर्णन है। 18वें अध्याय में प्रलम्बासुर वध की और 19वें अध्याय में गौ और गोपों की दावानल से रक्षा करने का प्रसंग है। दावानल या वन में लगने वाली अग्नि की घटना में यह प्रसंग आता है कि उस भयंकर आग को भगवान ने मुख से पी लिया (**भागवत में प्रत्येक घटना के पीछे बहुत ही विस्तृत दार्शनिक**

व आध्यात्मिक चिंतन के संकेत हैं। जैसे अग्नि को मुख से पीने की लीला के पीछे प्रभु का संकेत यह था कि मेरे राम अवतार में इस अग्नि ने जानकी जी की रक्षा की थी। अतः मैं इसे अपने मुख में स्थापित करके इसको सम्मान व सत्कार देता हूं। 2. कार्य का लय कारण में होता है। अग्नि भगवान के विराट रूप में मुख से उत्पन्न हुई थी, इसलिए भगवान ने उसे पुनः मुख से ही ग्रहण किया)। इसके पश्चात् 20वें अध्याय में वर्षा ऋतु की, बादल और बिजलियों का तथा शरद ऋतु की चांदनी भरी सुहानी रातों का मनोहारी वर्णन है।

21वां अध्याय भागवत् रूपी अमृत की वर्षा करने वाले उस मेघ के समान है, जो निःस्पृह भाव से उसकी जल बूंदों के संपर्क में आने वालों को भाव रस से आद्रित कर देता है। गोधूलि बेला में गायों के चरणों से उठती पवित्र रेणु, अस्ताचलगामी होते सूर्य भगवान का प्रस्थान करता रथ, कल-कल करती निर्झरणी यमुना का शीतल मंद सुगंध बयारों वाला तट, कदंब के वृक्ष की सघन छाया, जो गोपियों व कृष्ण का, माया-जीव व ब्रह्म का, ललिता त्रिपुर सुंदरी व नटराज का, नटवर व नटखट नंदकिशोर की लीला स्थली, उदित होते चंद्रमा की शुभ्र ज्योत्सना, यह सब मिलकर मन में एक ऐसा मधुर, कोमल व तप्त भाव उत्पन्न कर देते हैं कि मन इन मनमोहक दृश्यों को देखता-देखता मनमोहन में रम जाता है और उसे सुनाई पड़ती है—मधुर-मधुर चित चुराने वाली चितचोर की वेणु बांसुरी और वेणुगीत। वाणी जिसके वर्णन में असमर्थ है, शब्द जिसकी अभिव्यक्ति में अक्षम हैं, जिससे केवल मन-ही-मन में अनुभव करके नेत्रों के द्वार से स्वयं अश्रुरूप में आ जाता है कि नेत्र शायद पूर्णतः न देख पाएं, अतः मैं स्वयं देखूं।

उस मधुर वेणु की स्वर लहरियों से हिरणियां भी अपने कृष्णों के पास चली जाती हैं (कृष्ण का संकेत यहां कुष्णसार मृगों से है) और आकर नंद नन्दन के चरण कमलों में अपने नेत्र कमलों को निछावर कर देती हैं। मयूर अपने पंखों को खोलकर नृत्य कर रहे हैं और वह भी मानो अपने पंखों में छिपे नेत्रों के द्वारा मदनमोहन की रूप सुधा का अधिकाधिक पान करना चाहते हैं। गोपियां तो मूर्च्छित ही हुई पड़ी हैं। यह मूर्च्छा साधारण नहीं, कृष्ण दर्शन से प्राप्त होने वाली तुरीय अवस्था है, जिसे साधारण जन मूर्च्छा समझ रहे हैं। गाएं कान खड़े करके नेत्रों से अविरल अश्रु व थनों से अविरल दुग्ध बहा रही हैं। सजीवों की तो छोड़ो, प्रकृति का हर कण कृष्ण के रंग में रंग गया है, कृष्ण पक्ष की कृष्ण रात्रि, नील घटा के कृष्ण बादल, यमुना जी का कृष्ण जल, वृक्षों की कृष्ण छाया, कृष्ण अभिसार सब कुछ कृष्णमय हो गया है। वेणुगीत अध्याय के अमृत रस का पान मनुष्य जीवन में सौभाग्य से ही होता है, अतः विषय-भोग के विष से यदि अवकाश

मिले, तो जीव को कम-से-कम एक बार इस अध्याय को अवश्य पढ़ना या सुनना चाहिए।

22वें अध्याय में गोपियों के चीर हरण की कथा है। इसके पश्चात् प्रभु के द्वारा गोवर्धन धारण करने की लीला का प्रसंग है। वेणुगीत की भांति 29वें अध्याय में भगवान की **रास लीला** का मधुर वर्णन है। 30वें अध्याय में गोपियों की विरह दशा का बड़ा ही करुण व मार्मिक वर्णन है। 32वें अध्याय में गोपिकागीत है, जिसमें गोपियां श्रीकृष्ण से कहती हैं कि हे माधव, हम तो तुम्हारे बिन मोल की दासी हैं। हमारा नेत्रों से तो वध न करो। हे कुंजबिहारी, हे रास रासेश्वर, हे कमलनयन, हे श्यामसुंदर! हमारा जीवन तुम्हारे लिए है, हम तुम्हारे लिए जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं, हमारी रक्षा करो।

32वें अध्याय में भगवान का गोपियों को सांत्वना देने का प्रसंग है और 33वें अध्याय में महारास का वर्णन है, जो भगवान ने यमुना के तट पर रमणरेती पर किया। आज भी वृंदावन में रमणरेती स्थान है।

34वें अध्याय में सुदर्शन व शंखचूड़ के उद्धार की कथा है। 35वें अध्याय में भगवान की लीलाओं का उनकी अनुपस्थिति में जब वह गाय चराने गए होते थे, उस समय के युगल गीतों का वर्णन है। 36वें अध्याय में अरिष्टासुर का वध और कंस द्वारा अक्रूर जी को ब्रज में भेजने की घटना का वर्णन आता है।

इसके पश्चात् केशी और व्योमासुर के उद्धार की कथा, नारद जी द्वारा भगवान की स्तुति और अक्रूर जी की ब्रज यात्रा का प्रसंग है। 39वें अध्याय में प्रभु अब अक्रूर जी के साथ मथुरा को प्रस्थान करते हैं। मथुरा में कुब्जा कृपा का प्रसंग आता है, जिसके पश्चात् धनुषभंग-कुबलयापीड उद्धार व मल्लयुद्ध में चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानों तथा कंस के उद्धार की कथा है। कंस वध के पश्चात् श्रीकृष्ण-बलराम के यज्ञोपवीत की और गुरुकुल में प्रवेश की कथा आती है। 46वें अध्याय में उद्धव जी की ब्रजयात्रा है (जिसे अष्टछाप के कवियों ने बड़े ही सुंदर ढंग से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है, जैसे उद्धव शतक, भ्रमरगीत आदि)।

47वें अध्याय में भ्रमरगीत है, जिसमें गोपियां भौंरे के माध्यम से उद्धव को खरी-खोटी सुनाती हैं। उपालम्भ देती हैं (लेखक को राष्ट्रीय संग्रहालय के महानिदेशक व बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विद्वान् डॉ. आर.सी. शर्मा जी ने वृंदावन यात्रा के समय यह घटना बताई थी कि वृंदावन में भ्रमरगीत का पाठ होते समय जब एक प्रख्यात नृत्यांगना का नृत्य हो रहा था, तो प्रत्यक्ष रूप से भ्रमर रंगमंच पर आ गया था, जो भ्रमर गीत की रस आह्लादिनी शक्ति का प्रमाण है। उक्त घटना की जयसिंह होरा के श्री वातन गोस्वामी जी ने भी पुष्टि की थी)। इसके

पश्चात् अक्रूर जी की हस्तिनापुर यात्रा और अपनी बहन कुंती के वार्त्तालाप के पश्चात् भागवत का यह स्कंध समाप्त हो जाता है।

### दशम स्कंध (उत्तरार्द्ध)

दशम स्कंध के उत्तरार्ध का प्रारंभ भगवान के जरासंध से युद्ध व द्वारका नगरी के निर्माण की कथा से होता है। इसके पश्चात् कालयवन के भस्म होने व मुचुकुंद की कथा का प्रसंग है। 52, 53, व 54वें अध्याय में मुख्य रूप से भगवान का श्री रुक्मिणी जी से विवाह का प्रसंग है। 55वें अध्याय में रुक्मिणी जी के गर्भ से प्रद्युम्न जी के जन्म की कथा और शम्बासुर के वध की चर्चा है। इसके पश्चात् स्यंतक मणि की कथा तथा जाम्बवती और सत्यभामा के साथ भगवान श्रीकृष्ण के विवाह की कथा आती है। 57वें अध्याय में स्यंतक मणि के अपहरण, शतधन्वा के वध व श्वफल्क के पुत्र अक्रूर जी के पुनः द्वारका आने की कथा है। 58वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहों की कथा है, जिसमें भौमासुर का वध और उसके कारागर से मुक्त सोलह हजार एक सौ कन्याओं के साथ भगवान के पाणिग्रहण की कथा है। 62वें अध्याय में उषा व अनिरुद्ध के प्रेम प्रसंग की चर्चा है तथा भगवान का बाणासुर के साथ युद्ध व राजा नृग की कथा का प्रसंग है।

## 6. नारद पुराण

नारद पुराण भी मूल रूप से वैष्णव प्रकृति व प्रवृत्ति का पुराण है। यह पुराण दो भागों, पूर्वभाग व उत्तरभाग में विभाजित है। पूर्व भाग में अध्यायों की संख्या 125 है और उत्तर भाग में अध्यायों की संख्या 82 है। यह पुराण इस दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इसके सभी 18 पुराणों को सार संक्षेप रूप में भी प्रस्तुत किया है। अठारह पुराणों की यह अनुक्रमणी (अ. 92-109 पूर्वभाग) में संकलित है। संक्षेप में नारद पुराण में विविध ज्ञानपूर्ण बातें, इतिहास गाथाएं, गोपनीय अनुष्ठान, धर्मनिरूपण तथा भक्तिमहत्त्वपरक विलक्षण कथाएं, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, मंत्र विज्ञान, बारह महीनों की तिथियों के व्रतों की कथा, एकादशीव्रत माहात्म्य, गंगा-माहात्म्य आदि का अलौकिक व महत्त्वपूर्ण व्याख्यान प्राप्त होता है। पूर्वभाग में—सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार ब्रह्माजी के इन मानसपुत्रों का नारद जी के प्रति कथन है। उत्तर भाग में वसिष्ठ ऋषि द्वारा मान्धाता के प्रति वर्णन है।

38 अध्यायों के भाग में नारद पुराण की महिमा और विष्णु भक्ति के माहात्म्य के पश्चात् भारतवर्ष के भूगोल के वर्णन के पश्चात् गंगा-यमुना संगम प्रयाग, काशी व गंगा तथा गायत्री की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है। छठे अध्याय में सनक नारद जी को कहते हैं कि गंगा का पवित्र जल, तुलसी जी, भगवान के चरणों में अविरल भक्ति तथा गुरु में श्रद्धा, यह कलिकाल में मनुष्यों के लिए दुर्लभ है। **सूर्य के मकर राशि पर स्थित रहते हुए जहां कहीं भी गंगा में स्नान किया जाए, वह स्नान मनुष्य को जन्म जन्मांतरों के पाप से मुक्त कर देता है।** इसी प्रकार बारहवें अध्याय में धर्मराज कहते हैं कि जो सूर्य की संक्रांति के दिन दूध आदि से श्री हरि को नहलाता है, वह इक्कीस पीढ़ियों को तार देता है। शुक्ल पक्ष में चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, एकादशी, रविवार, द्वादशी, पंचमी तिथि, सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण, मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, सूर्य के आधे उदय के समय, सूर्य के पुष्य नक्षत्र पर रहते समय, रोहिणी और बुध के योग में, शनि और रोहिणी नक्षत्र, मंगल और अश्विनी योग, शनि-अश्विनी, बुध-अश्विनी, शुक्र-रेवती, बुध-अनुराधा, श्रवण-सूर्य, सोमवार-श्रवण, हस्त-बृहस्पति, बुध अष्टमी तथा बुध और आषाढ़ा के योग में शांत चित्त तथा मौन रहकर पवित्रतापूर्वक भगवान विष्णु को दुग्ध, दही, घृत व शहद तथा गंगा जल अर्थात् पंचगव्य से स्नान कराता है। वह इस जन्म में सुख, सौभाग्य, समृद्धि, सुमंगल तो प्राप्त करता ही है, अपने पूर्वजन्म के संचित सभी पापों का क्षय कर लेता है।

इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि और सोमवार के दिन जो भगवान शंकर का दुग्धाभिषेक करता है, वह भगवान शिव का अत्यंत प्रिय व उनका कृपापात्र हो जाता है। इसके पश्चात् भगीरथ द्वारा गंगावतरण की कथा का प्रसंग है। इसके पश्चात् 16वें अध्याय से मार्गशीर्ष मास से लेकर कार्तिक मास पर्यन्त उद्यापन सहित शुक्ल पक्ष की द्वादशी के व्रतों का वर्णन है। इसके साथ ही वर्ष की विभिन्न द्वादशी तिथियों पर भगवान विष्णु के पूजन के मंत्र दिए गए हैं :

| तिथि | मंत्र |
|---|---|
| 1. अग्रहायण (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी | 1. **'ॐ केशवाय नमस्तुभ्यम्'** यंत्र से घृतमिश्रित तिल की 108 वार आहुति दें। |
| 2. पौष मास | 2. **'ॐ नमो नारायणाय'** का जाप करके खीर अर्पण करें। |

| | |
|---|---|
| 3. माघ शुक्ला द्वादशी | 3. ॐ **नमस्ते माधवाय** इस मंत्र से अग्नि में बार घी की आहुति दें। |
| 4. फाल्गुन शुक्ला द्वादशी | 4. ॐ **गोविन्दाय नमस्तुभ्यम्** का 108 बार जाप तथा घृत मिश्रित तिल से आहुति दें। |
| 5. चैत्र शुक्ल पक्ष की द्वादशी | 5. ॐ **नमोऽस्तु विष्णवे तुभ्यम्**–108 बार जाप करके भगवान को दूध से स्नान कराएं। |
| 6. वैशाख शुक्ला द्वादशी | 6. ॐ **नमस्ते मधुहन्त्रे**–108 बार जाप करके घृत से आहुति दें। |
| 7. ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी | 7. ॐ **नमःस्त्रि विक्रमाय**–108 बार जाप करके खीर की आहुति दें। |
| 8. आषाढ़ शुक्ला द्वाद्रशी | 8. ॐ **नमस्ते वामनाय**–108 बार जाप करके दूर्वा व घी की आहुति दें। |
| 9. श्रावण शुक्ला द्वादशी | 9. **'ॐ नमोऽस्तु श्रीधराय'**–108 बार जाप करके दही मिले घी से आहुति दें। |
| 10. भाद्रपद मास की द्वादशी | ॐ **हृषीकेश नमस्तुभ्यम्**–108 बार जाप करके मधुमिश्रित धान से आहुति दें। |
| 11. आश्विन मास की शुक्ला द्वादशी | ॐ **नमस्ते पद्मनाभाय**–108 बार जाप करके तिल, चावल, जौ और घृत द्वारा होम करें। |
| 12. कार्तिक शुक्ला द्वादशी | ॐ **नमो दामोदराय**–108 बार जाप करके घृत मिश्रित तिल से आहुति दें। |

वर्ष भर भक्तिपूर्वक व्रत का पालन करके मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को उद्यापन करना चाहिए।

इसके पश्चात् 19वें अध्याय में अत्यंत दुर्लभ व पुण्यदायक हरिपंचक व्रत की कथा है, जो समस्त दुखों का निवारण करके धर्म, काम, अर्थ व मोक्ष प्रदायक तथा संपूर्ण मनोरथों को देने वाला है। इस व्रत की विधि इस प्रकार है : मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मनुष्य नियमपूर्वक रहते हुए केवल एक समय भोजन करें, तत्पश्चात् दूसरे दिन एकादशी को भगवान विष्णु की पूजा करें व पंचामृत विधि से उन्हें स्नान कराएं। भगवान की पूजा में निम्नलिखित मंत्र का

उच्चारण करें :

**नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते।**
**नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धि प्रदायिने।।** (21/89)

इसके पश्चात् निम्नलिखित व्रत से भगवान को उपवास व्रत समर्पित करें।

**पंचरात्रं निराहारो ह्यद्यप्रभृति केशव।**
**त्वदाज्ञया जगतस्वामिन् ममाभीष्टप्रदो भव।।** (21/10-11)

हे संपूर्ण जगत के स्वामी केशव ! आपकी आज्ञा से मैं आज से 5 रात तक निराहार रहूंगा। आप मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें। एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को इंद्रियसंयम एवं उपवासपूर्वक भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए। एकादशी व पूर्णिमा तिथि को रात्रि में जागरण भी करना चाहिए। पूर्णिमा के दिन दूध के साथ भगवान विष्णु को स्नान कराना चाहिए। तिल का होम व दान करना चाहिए। इस प्रकार पौष से लेकर कार्तिक मास में भी शुक्ल पक्ष में पूर्वोक्त विधि से इस व्रत को और मार्गशीर्ष में उद्यापन करें। ऐसा व्रत विधिपूर्वक करने से इस संसार में कुछ भी ऐसा दुर्लभ नहीं है, जो प्राप्त न हो।

इसके पश्चात् अन्य पुराणों की भांति श्राद्ध विधि व विभिन्न नरक लोकों का वर्णन है। इसके पश्चात् द्वितीय पाद में जड़भरत व सौवीर नरेश का संवाद है, जिसके द्वारा आध्यात्मिक व दार्शनिक रूप से परमार्थ का निरूपण किया गया है।

इसके पश्चात् द्वितीय पाद में वेदांगों का बहुत ही विस्तार से सरल व सहज भाषा में वर्णन है। वेद से संबंधित दो शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं : 1. वेदांत, 2. वेदांग। (वेदांत अर्थात् वेदों का अंत) यह वेदों के साहित्यिक विभाजन से जुड़ा है। वैदिक साहित्य चार भागों से मिलकर बना है **1. संहिता**–जिसमें वैदिक ऋचाएं संकलित हैं। **2. ब्राह्मण**–जिसमें पद्यात्मक संहिताओं की गद्यात्मक व्याख्या है। **3. आरण्यक**–वेदों का वह भाग जिसका अध्ययन वन या अरण्यों में किया जाता है। **4. वेदांत**–वेदों के अंतिम दार्शनिक जिज्ञासा से युक्त साहित्यिक भाग। इसके पश्चात् वेदों का साहित्यिक विभाजन की दृष्टि से अंत हो जाता है। अतः यह वेदांत है।

इसी प्रकार वेदों के पूर्ण ज्ञान व अध्ययन के लिए 6 अंगों या विषयों को जानना आवश्यक है, जिससे मनुष्य वेदों में पारंगत हो सके। इन 6 अंगों को वेदों का अंग या वेदांग कहते हैं। ये 6 वेदांग इस प्रकार हैं–1. शिक्षा, 2. व्याकरण, 3. निरुक्त, 4. कल्प, 5. ज्योतिष, 6. छंद।

नारद पुराण के द्वितीय पाद में अध्याय 46 से 53 तक 8 अध्यायों में इन्हीं

6 वेदांगों का वर्णन है।

शिक्षा नामक वेदांग का निरूपण करते हुए सनन्दन जी कहते हैं कि हे नारद जी ! अधिक आयु हो जाने से, बाल पक जाने से, धन से अथवा बंधु-बांधवों से कोई बड़ा नहीं होता। ऋषि-मुनियों ने यह निर्णय किया है कि जो **'अनूचान'** हो, वही महान् है। इस पर नारद जी ने पूछा कि हे विप्रवर ! ''अनूचान' कैसे होता है ? यह क्या होता है ? इस पर सनन्दन जी ने कहा कि 6 वेदांगों सहित चारों वेदों का भली-भांति अध्ययन करने वाला तथा उनका पूर्ण अर्थ जानने वाला अनूचान होता है। मात्र पोथी बांच लेने से कोई अनूचान नहीं होता।

इस पर नारद जी ने कहा कि आप ही अब मुझे वेदांगों के बारे में विस्तार से बताइए।

सनन्दनजी बोले ! शिक्षा में स्वर को ही प्रधान माना गया है। अतः स्वरशास्त्रों के निश्चय के अनुसार विशेष रूप से **आर्चिक** (ऋक् संहिता संबंधी), **गाथिक** (गाथा-संबंधी) और **सामिक** (साम संबंधी) स्वर व्यवधान का प्रयोग करना चाहिए, ऋचाओं में एक का अंतर देकर स्वर होता है, गाथा में दो के व्यवधान से और साम मंत्रों में तीन के व्यवधान से स्वर होता है। वेदत्रयी में जो याज्य, स्तोत्र, कारण और मंत्र आदि यज्ञों में प्रयुक्त होते हैं, उनके त्रुटिहीन उच्चारण के लिए **शिक्षा शास्त्र का ज्ञान अपेक्षित है अन्यथा विस्वर अर्थात्** स्वर उच्चारण में अशुद्धि हो जाती है। संपूर्ण वैदिक वाङ्मय के उच्चारण के लिए वक्षस्थल, कंठ और सिर—ये तीन स्थान हैं। इन तीनों को **सवन** कहते हैं अर्थात् वक्षस्थल में धीमे या नीच स्वर से जो शब्दोच्चारण होता है, उसे प्रातःस्वन कहते हैं; कंठस्थान में मध्यम स्वर में किए हुए शब्दोच्चारण का नाम माध्यन्दिन सन है तथा मस्तक रूप स्थान में उच्च स्वर से जो शब्दोच्चारण होता है, उसे तृतीय सवन कहते हैं। उरो भाग, कंठ व सिर—ये सातों स्वरों के विचरण स्थान हैं।

सामवेद के स्वर संचार का वर्णन करते हुए सनंदन जी कहते हैं कि द्विजातियों के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद के स्वरूप का परिचय कराना ही शिक्षा है। सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना और उनचास तान—इन सबको स्वर मंडल कहा गया है। षडज (सा), ऋषभ (रे), गान्धार (गा), मध्यम (मा), पंचम (पा), धैवत (धा), निषाद (नि) ये सात स्वर हैं। षडज, मध्यम और गांधार—यह तीन ग्राम हैं। षडज भूर्लोक से अर्थात् पृथ्वी तत्त्व से, मध्यम भुवर्लोक से तथा मेधलोक से गांधार उत्पन्न होता है। षडज स्वर देवताओं को, ऋषभ स्वर ऋषि-मुनियों को, गांधार स्वर पितरों को, मध्यम स्वर गन्धर्वों को तथा पंचम स्वर देव, पितर व महर्षियों सभी को प्रिय होता है। निषाद स्वर यक्षों को और धैवत संपूर्ण भूत समुदाय को प्रिय

होता है, मोर षड्ज स्वर में बोलता है। गाएं ऋषभ स्वर में रंभाती हैं, भेड़ व बकरियां गांधार स्वर में बोलती हैं। क्रौंच पक्षी मध्यम स्वर में बोलता है। बसंत में कोयल पंचम स्वर में बोलती है। घोड़ा धैवत स्वर में हिनहिनाता है और हाथी सदैव निषाद में चिंघाड़ता है। षडज स्वर कंठ से प्रकट होता है। ऋषभ मस्तक से उत्पन्न होता है। गांधार का उच्चारण मुख सहित नासिका से होता है, मध्यम स्वर हृदय से प्रकट होता है। पंचम स्वर का उत्थान छाती, सिर और कंठ से होता है। धैवत ललाट से जन्मता है तथा निषाद संपूर्ण शरीर की संधियों से प्रकाशित होता है। षडज स्वर नासिका, कंठ व वक्ष स्थल, तालु, जिह्वा और दांतों के आश्रित हैं। इन 6 अंगों से उसका जन्म होता है। इसीलिए उसे षडज कहते हैं। नाभि से उठी हुई वायु कंठ और मस्तक से टकराकर वृषभ के समान गर्जना करती है। इसलिए उससे प्रकट हुए स्वर का नाम ऋषभ है। नाभि से उठी हुई वायु कंठ और सिर से टकराकर पवित्र गंध लिए हुए बहती है। इस कारण उसे गांधार कहते हैं। नाभि से उठी हुई वायु उरु और हृदय से टकराकर नाभि स्थान में आकर मध्यवर्ती होती है। अतः उसका नाम मध्यम है। नाभि से उठी हुई वायु वक्ष, हृदय, कंठ और सिर से टकराकर इन पांच स्थानों से स्वर के साथ प्रकट होती है, इसलिए उस स्वर का नाम **पंचम** रखा गया है। षडज स्वर अग्नि के द्वारा गाया जाता है। ऋषभ ब्रह्मा जी का प्रिय स्वर है। गांधार सोम का और मध्यम विष्णु का प्रिय स्वर है। पंचम स्वर नारद जी द्वारा गाया गया है। धैवत और निषाद, इन स्वरों को तुम्बरु नामक गंधर्व ने गाया है। (याया, हूहू, तुम्बरु ये तीन संगीत प्रिय गंधर्व हैं। बहुत ही कम लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि शम्मी कपूर की प्रसिद्ध फिल्म 'जंगली' का गाना, जिसके बोल हैं याहू! याया व हूहू गंधर्वों के दो प्रथम शब्द से या हू बना है, जो भारतीय जनमानस के अवचेतन में संगीत की परंपरा के रूप में निरंतर प्रवाहित होता रहा है।)

हे नारद ! काष्ठ अर्थात् लकड़ी की काष्ठ वीणा और शरीर से निर्मित मानव देहरूपी गात्र वीणा—यह दो ही प्रकार की संसार में वीणाएं हैं। साम गान के सर्वाधिक उपयुक्त गात्र वीणा होती है। गात्र वीणा वह, जिस पर विद्वानों के लिए अंगुली और अंगुष्ठ से रंजित तथा स्वर और व्यंजन से युक्त होती है। इस गायन में अपने दोनों हाथों को संयमित करके उन्हें घुटनों पर रखें। प्रणवोच्चारण के पश्चात् सब अंगुलियों को फैलाकर स्वरमंडल का आरोपण करना चाहिए। अंगुलियों से अंगुष्ठ का और अंगुष्ठ से अंगुलियों का स्पर्श वर्जित है। अंगुलियों को अलग-अलग करके न रखें और उसके मूलभाग का भी स्पर्श न करें, सदैव उन अंगुलियों के मध्य पर्व में अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करना चाहिए।

51वें अध्याय में दूसरे वेदांग कल्प के अंतर्गत नक्षत्रों की गति, यति और स्थिति का ज्ञान, मंत्रों के ऋषियों, छंदों और देवताओं का ज्ञान, देवों, पितरों और ऋषियों के पूजन, तर्पण आदि के विधि-विधान का ज्ञान और यज्ञ संपादन की सम्यक् विधि का वर्णन है। इसी अध्याय में गणेश जी के पूजन की विशेष महिमा बताई गई है। 22वें अध्याय में व्याकरण शास्त्र का और 53वें अध्याय में निरुक्त का वर्णन है। निरुक्त में शब्दों के निर्वचन पर विचार किया जाता है। शब्द रूढ़, यौगिक एवं योगरूढ़ होते हैं। योगरूढ़ वह शब्द है, जिसका अर्थ अन्य संज्ञाओं पर तो लागू होता है, परंतु उनका प्रयोग उनके लिए नहीं होता है, जैसे अश्व। 'अश्नुत अध्वानम्' अर्थात् मार्ग तय करता है, इसलिए उसे अश्व कहा गया है। बैल, ऊंट आदि भी मार्ग तय करते हैं, परंतु उन्हें अश्व नहीं कहा जाता। निरुक्त में इस बात का विवेचन किया जाता है कि शब्दों की रचना धातुओं से किस प्रकार होती है। शब्दों का विभाजन है—नाम (अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि), आख्यात (ऊंट धातु रूप), उपसर्ग (कुल 20) और निपात (क, च, ट, त, प, टि आदि निरर्थक शब्द जो प्रतिपूर्ति के लिए जोड़ दिए जाते हैं, जैसे बाल+क = बालक)। निरुक्त में वेदों में प्रयुक्त संदिग्धार्थक व विशेष कठिन शब्दों की तालिका भी दी गई है।

ज्योतिष को वेदों का नेत्र कहा गया है। त्रिस्कंध ज्योतिष के अंतर्गत गणित अर्थात् सिद्धांत मात्र, ग्रहण, ग्रहों के उदयास्त काल आदि का वर्णन, जातक स्कंध में होरा, ग्रह-नक्षत्रों का फल, ग्रहों के बल का कथन, ग्रहराशियों के स्वभाव, दशा-अंतर्दशा, राजयोग, नाभस योग, प्रवज्या योग, द्वादश भावगत ग्रहों के फल, ग्रहगोचर फल समय, द्रेष्काण का स्वरूप आदि का वर्णन है। संहिता प्रकरण में धूमकेतु, भौमचार, बुधचार, बृहस्पतिचार फल आदि का वर्णन है। इसी अध्याय में बताया गया है कि षष्ठी को तेल, अष्टमी को मांस, चतुर्दशी में क्षौर (बाल कटवाना) एवं पूर्णिमा व अमावस्या में स्त्री के साथ शयन त्याग दें। अमावस्या, षष्ठी, प्रतिपदा, द्वादशी, सभी पर्व और नवमी को कभी दातौन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार रविवार को तेल लगाने से रोग में वृद्धि होती है। सोमवार को तेल लगाने से कांति बढ़ती है। मंगल को तेल लगाने से व्याधि हाती है। बुधवार को तेल अवश्य लगाना चाहिए, इससे सौभाग्य की वृद्धि होती है। गुरुवार को तेल नहीं लगाना चाहिए, इससे दुर्भाग्य आता है और हानि होती है। शुक्रवार को भी हानि होती है। शनिवार को अवश्य तेल लगाना चाहिए, इससे धन-संपत्ति व सौभाग्य की वृद्धि तथा निरोगी काया प्राप्त होती है। पुष्य नक्षत्र की विशेष प्रशंसा की गई है। यह सर्वाधिक शुभ और मंगलमय नक्षत्र है और पापग्रह से विद्ध या बलवान होने पर शुभफलदायक ही होता है।

इसमें किया गया प्रत्येक कार्य सफल होता है तथा अभीष्ठ फलदायक होता है। **केवल विवाह को छोड़कर।**

रविवार को सप्तमी तिथि चाहे किसी भी पक्ष की हो तथा बुधवार को प्रतिपदा हो, तो संवर्तयोग होता है। यह प्रत्येक शुभकार्य को नष्ट कर देता है, अतः इसे त्याग देना चाहिए। **यदि रविवार को हस्त नक्षत्र हो, सोमवार को मृगशिरा हो, मंगलवार को अश्विनी नक्षत्र हो, बुधवार को अनुराधा हो, गुरुवार को पुष्य हो, शुक्रवार को रेवती हो तथा शनिवार को रोहिणी हो** तो सिद्धि योग होता है। धर्म, अर्थ तप, जाप आदि सभी कार्य सफल हो जाते हैं। इसके पश्चात् वर-वधू की कुंडली का मिलान आदि के संदर्भ में यह कहा गया है कि पुत्र का विवाह करने के 6 मासों के भीतर पुत्री का विवाह नहीं करना चाहिए। एक मंगल कार्य करने के 6 मास के भीतर दूसरा मंगल कार्य नहीं करना चाहिए। यदि एक ही माता के गर्भ से उत्पन्न दो कन्याओं का विवाह 6 मास के ही भीतर हो जाए, तो उन दोनों में से एक तीन वर्ष के भीतर विधवा हो जाती है, दो सहोदर वरों को दो सहोदरा कन्याएं नहीं देनी चाहिए। दो सहोदरों का एक ही दिन विवाह या मुंडन नहीं करना चाहिए। इसके पश्चात् वास्तु विद्या का भी वर्णन है। दिशाशूल अर्थात् किस दिन किस दिशा की यात्रा निषिद्ध है, इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि शनि व सोमवार को पूर्व दिशा में न जाएं, गुरुवार को दक्षिण की ओर प्रस्थान न करें। शुक्रवार व रविवार को पश्चिम दिशा में न जाएं तथा बुध व मंगल को उत्तर दिशा की यात्रा न करें।

ज्योतिष के पश्चात् अंतिम वेदांग छंद के अंतर्गत वैदिक व लौकिक छंदों के लक्षणों का वर्णन किया गया है। छंदों को वेदों का चरण कहा गया है, क्योंकि वैदिक ऋचाएं छंदों के विना गति नहीं कर सकतीं अर्थात् उनका उच्चारण नहीं हो सकता। छंदों का ऋचाओं से इतना घनिष्ठ संबंध है कि वेदों को छांदस भी कहा जाता है। वैदिक छंदों में गायत्री, शक्वरी और अति शक्वरी आदि भेद बताए गए हैं। लौकिक छंदों में मात्रिक व वर्णिक छंदों का वर्णन है। छंदशास्त्र के विद्वानों ने मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, नगण और गुरु तथा लघु—इन्हीं को छंदों की सिद्धि में कारण बताया है। जैसे, जिसमें सभी अर्थात् तीनों अक्षर गुरु हों, उसे मगण (SSS) कहा जाता है, जिसका आदि अक्षर लघु और शेष दो अक्षर गुरु हो, वह यगण (ISS) माना जाता है।

तृतीय पाद में मंत्रों के संबंध में अत्यंत गूढ़ बातें, मंत्रों के विभिन्न दोषों, मंत्र शोधन, दीक्षा विधि, पंचदेव पूजा, मातृकान्यास, श्रीकण्ठमातृका, गणेशमातृका व कलामातृका आदि के न्यासों का वर्णन है। मंत्रों के तीन प्रकार के भेद होते

हैं : स्त्री, पुरुष और नपुंसक। स्त्रीलिंग मंत्र वे हैं, जिनके अंत में 'ह' अर्थात् स्वाहा लगे हों। जिनके अंत में हुम और फर है, वह पुरुष मंत्र कहे गए हैं। जिनके अंत में **नमः** लगा हो, वह नपुंसक मंत्र है। इसके पश्चात् शौचाचार, स्नान, संध्या, तर्पण आदि के संदर्भ में यह बताया गया है कि बाईं या दाहिनी ओर की जो भी नासिका चल रही हो, उसी ओर का बायां या दायां पैर सुबह उठकर पृथ्वी पर रखने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है और विघ्न व क्लेशों का नाश होता है।

68वें अध्याय में श्रीमहाविष्णु संबंधी अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर और विविध मंत्रों के अनुष्ठान की विधि बताई गई है। **ॐ नमो नारायणाय** यह अष्टाक्षर मंत्र है तथा **ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फट्** यह द्वादश अक्षरों का सुदर्शन मंत्र है। जो व्यक्ति प्रतिदिन प्रातःकाल पच्चीस बार अष्टाक्षर मंत्र का जाप करके जल पीता है, वह सब पापों से मुक्त हो ज्ञानवान, नीरोग व प्रत्येक कार्य में सफलता पाने वाला होता है। चंद्रग्रहण या सूर्यग्रहण के समय उपवास पूर्वक ब्राह्मी घृत का स्पर्श करके अष्टाक्षर मंत्र का आठ हजार जाप करके ग्रहण शुद्ध होने पर यदि साधक उस अभिमंत्रित घृत को पी ले, तो मेधा (धारण शक्ति), कवित्वशक्ति तथा वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है। **ॐ नारायणाय विश्वमहे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात** यह विष्णुगायत्री समस्त पापों का नाश करने वाली है। इसके पश्चात् भगवान श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न संबंधी विविध मंत्रों के अनुष्ठान की संक्षिप्त विधि का वर्णन है।

भगवान राम का **षडक्षर मंत्र रां रामाय नमः** है, जो जाने या अनजाने में, विधिपूर्वक या किसी भी प्रकार से जप करने से महापातक व उपपातक को तत्काल नष्ट कर देता है। जानकी जी का अत्यंत शक्तिशाली व सद्यः फलदायक मंत्र **श्री सीतायै स्वाहा** है। इस मंत्र का एक लाख जाप करके (जो अत्यंत सरल व संभव है), बेल के फूलों के दशांश का हवन करता है, तो वह अपनी खोई संपत्ति, प्रभुता व सम्मान पुनः प्राप्त कर लेता है, ऐसा उल्लिखित है। भगवान श्रीराम का अष्टाक्षर मंत्र **ॐ रामचंद्राय नमः** व **ॐ रामभद्राय नमः** है। इसी प्रकार **हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा** यह दस अक्षरों वाला महामंत्र है। **रामाय धनुष्पाणये स्वाहा** यह भी प्रभु राम का एक अन्य अतीव शक्तिशाली व शत्रुविनाशक दशाक्षर मंत्र है। **ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय, ॐ नमो भगवते रामभद्राय** यह दोनों द्वादशाक्षर मंत्र हैं। **श्री राम जय राम जय जय राम** यह तेरह अक्षरों का मंत्र है। **ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः** यह 18 अक्षरों का मंत्र है, जो अमोघ, सद्यःफलदायक व समृद्धिदायक है। **ॐ नमः ब्रह्मण्यसेव्याय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोक धुर्याय न्यस्तदंडार्पिताङ्घ्रये** यह तैंतीस अक्षरों का भोग-मोक्ष प्रदायक मंत्र है। **ॐ दाशरथाय विद्महे। सीतावल्लभाय**

**धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।** यह रामगायत्री है, तो संपूर्ण मनोवांछित फलों को देने वाली है।

74वें अध्याय में विविध मंत्रों द्वारा हनुमान जी की उपासना, रहस्यमय दीपदान और भूतप्रेत विनाशक मंत्रों का वर्णन है। सनत्कुमार जी कहते हैं कि हे विप्रवर, अब हनुमान जी के मंत्रों का वर्णन करता हूं, जो सभी अभीष्ट वस्तुओं को देने वाले और सभी मनोवांछित को पूर्ण करने वाले हैं। सर्वप्रथम मंत्र है **हौं हस्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौ हस्ख्फ्रें हसौं हनुमते नमः** यह 12 अक्षरों का महामंत्रराज है। इस मंत्र का 12 हजार जाप करने के पश्चात् दही, दूध व घी मिलाए हुए धान के दशांश की आहुति व वैष्णवपीठ पर आवाहन स्थापनपूर्वक पाद्यादि उपचारों से पूजन करने से राजभय, शत्रुभय व रोगभय पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। एक अन्य अतीव गोपनीय व शक्तिशाली मंत्र **हं पवन नन्दनाय स्वाहा** है, जो दस अक्षरों का है। सब तंत्रों में इसे अत्यंत गोपनीय माना गया है, क्योंकि इस मंत्र के विधिपूर्वक जाप से हनुमान जी साक्षात् दर्शन देते हैं। हनुमान जी का ध्यान करके प्रतिदिन 10 हजार मंत्र का जाप करें। सातवें दिन विशेष पूजन करें। उस दिन मंत्रसाधक एकाग्रचित्त से दिन-रात जाप करें। रात के तीन पहर बीत जाने पर चौथे पहर में महान् भय दिखाकर हनुमान अवश्य साधक के सम्मुख आते हैं और अभीष्ट वर देते हैं। पूजन में सिद्धि व समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए गेहूं, उड़द, मूंग, चावल और तिल इन पंचधान्यों को पीसकर उनका दीपक बनाने से हनुमानजी अत्यंत प्रसन्न होते हैं तथा कामना शीघ्र पूर्ण होती है।

इसके पश्चात् 76वें अध्याय में भगवान कृष्ण के विविध मंत्रों के अनुष्ठान की विधि है। यथा **क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा, 'ॐ कृष्ण कृष्ण महाकृष्ण सर्वज्ञ त्वं प्रसीद मे। रमारमण विद्येश विद्याभाशु प्रयच्छ मे** आदि। इसके पश्चात् राधा-कृष्ण युगल सहस्त्रनामस्तोत्र का भी वर्णन है, जो नारद जी को भगवान शिव से प्राप्त हुआ था।

इसके पश्चात् चतुर्थ पद में पुराणों की अनुक्रमणिका व बारह मास की प्रत्येक तिथियों से संबंधित व्रतों का विस्तार से वर्णन है। इसके पश्चात् एकादशी व्रत व अशून्य शयन व्रत का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया गया है तथा मोहिनी को दशमी के अंत भाग में स्थान की प्राप्ति तथा दशमी विद्धा एकादशी के निषेध का प्रसंग है। इसके पश्चात् मोहिनी-वसु संवाद के माध्यम से गंगाजी के माहात्म्य का यहां बहुत ही विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। पुरोहित वसुजी मोहिनी को बतलाते हैं कि **कृष्ण पक्ष में षष्ठी से लेकर पुण्यमयी अमावस्या तक** अर्थात् दस दिन तक गंगाजी इस पृथ्वी पर निवास करती हैं, अतः इन तिथियों में गंगास्नान विशेष फलदायक

होता है। यदि जीवन-भर प्रतिमास की चतुर्दशी और अष्टमी तिथि को सदा गंगाजी के तट पर निवास किया जाए, तो उत्तम फल व मोक्ष की प्राप्ति होती है। सरस्वती नदी का प्रभाव मनुष्य के शरीर पर तीन महीने, यमुना जी का जल सात महीने, नर्मदा जी का दस महीने व गंगाजी का एक वर्ष रहता है। गंगाजी में मध्याह्न काल में स्नान करने पर प्रातः काल की अपेक्षा दस गुना अधिक पुण्य होता है, सायं काल सौ गुना व भगवान शिव के समीप अनन्त गुना होता है। **कार्तिक या वैशाश्व की अक्षय तृतीया** को किया स्नान एक वर्ष तक स्नान का फल देता है। द्वादशी को श्रवण नक्षत्र हो, अष्टमी को पुष्य हो और चतुर्दशी को आर्द्रा नक्षत्र हो, तो गंगा स्नान अत्यंत दुर्लभ होता है। अपने जन्म नक्षत्र से भक्तिभाव से किया गया गंगा स्नान आजन्म संचित पापों का नाश कर देता है। माता भागीरथी ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि को मंगलवार तथा हस्त नक्षत्र को पृथ्वी लोक पर आई थीं। अतः इस तिथि पर किया गया स्नान अनंत फलदायक होता है। इसके पश्चात् विभिन्न तीर्थों यथा गया जी, काशी, पुरुषोत्तम क्षेत्र, प्रयाग व बदरिकाश्रम व नर्मदा, अवंती व मथुरा वृंदावन को विभिन्न पुण्य स्थलों के माहात्म्य व मोहिनी के यमुना जी में प्रवेश होने व नारद पुराण के पाठ व श्रवण के माहात्म्य के साथ यह पवित्र पुराण समाप्त हो जाता है।

## 7. मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण वस्तुतः शाक्त प्रधान पुराण है, जिसकी प्रसिद्धि व ख्याति का कारण इसमें दुर्गाजी के चरित्र व दुर्गासप्तशती का वर्णन है। इस पुराण का नामकरण मार्कण्डेय ऋषि द्वारा कथन किए जाने से मार्कण्डेय हुआ है। आकार व परिमाण में छोटा होते हुए भी (लगभग 9000 श्लोक व 137 अध्याय) अपनी विषय वस्तु की विशिष्टताओं के कारण यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस पुराण में पंच लक्षणों सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित आदि का वर्णन है, परंतु विषय वस्तु के आधार पर भी इस पुराण के मुख्य रूप से 5 भाग किए जा सकते हैं–

1. प्रथम नौ अध्यायों में जैमिनी ऋषि द्वारा मार्कण्डेय ऋषि से महाभारत संबंधी चार शंकाओं को पूछा गया है, जिनका समाधान विंध्याचल पर्वत पर रहने वाले धर्म पक्षियों के माध्यम से किया गया है।

2. अगले 35 अध्यायों में धर्म पक्षियों ने जड़ सुमति के माध्यम से सर्ग, प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति व विकास आदि का वर्णन किया है। इन अध्यायों में ब्रह्मवादिनी मदालसा के पवित्र जीवन-चरित्र का भी बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को शैशवावस्था में ही ब्रह्म ज्ञान का उपदेश

दिया था, जिससे उसने राजा होने पर भी ज्ञानयोग व कर्मयोग का अपूर्व सामंजस्य करके दिखाया। भारतीय नारी के मातृरूपा का जितना सुंदर चित्रण इस पुराण में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

3. अध्याय 45 से 80 तक में मार्कण्डेय ऋषि ने अपने शिष्य क्रोष्टुकि को पुराण के मूल विषय वस्तु यथा जंबूद्वीप, उसके पर्वत, गंगाजी की उत्पत्ति, भारतवर्ष में भगवान कूर्म की स्थिति व विभिन्न मनुओं के उत्पत्ति प्रसंग से परिचित कराया है।

4. अगले बारह अध्यायों में देवी चरित का वर्णन है, जिसमें महिषासुर वध, शुम्भ-निशुम्भ वध और रक्तबीज वध का वर्णन है।

5. अंत में पुनः पुराणों के लक्षणों के अनुकूल राजवंशों के राजाओं का वर्णन है। ग्रंथ के प्रारंभ में मार्कण्डेय ऋषि जैमिनी ऋषि को द्रोण नामक पक्षी के वेद शास्त्रों में निपुण ज्ञानी पुत्रों पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख के बारे में बताते हैं, जो विन्ध्य पर्वत पर एक गुफा में रहते हैं और ऋषि को कहते हैं कि अपनी शंकाओं के समाधान के लिए वह इन ज्ञानी पक्षियों की शरण में जाएं। यह बात सुनकर जैमिनी ऋषि उन पक्षियों के पास पहुंचे और महाभारत संबंधी अपनी चार शंकाएं प्रश्न रूप में प्रस्तुत कीं।

**प्रश्न 1 :** सर्वव्यापी भगवान कृष्ण जो सृष्टि का सृजन, स्थिति व संहार करने वाले हैं और निर्गुण हैं, फिर उन्होंने मनुष्य रूप में जन्म या अवतार क्यों लिया ?

**प्रश्न 2 :** द्रुपद की कन्या द्रौपदी अकेली ही पांच पांडवों की पत्नी होते हुए भी पंचकन्याओं में पवित्र स्थान कैसे प्राप्त कर पाई ? (सीता, मंदोदरी, द्रौपदी, तारा, कुंती ये पंचकन्याएं मानी गई हैं।)

**प्रश्न 3 :** भगवान के अग्रज बलराम जी तीर्थ यात्रा के प्रसंग में ब्रह्म हत्या जैसे पाप से कैसे मुक्त हो गए थे ?

**प्रश्न 4 :** द्रौपदी के पांच महारथी अविवाहित पुत्र, जिनके पिता वीर पांडव थे और जिन पर भगवान कृष्ण का वरद हस्त था, वह कैसे अनाथों की भांति अश्वत्थामा द्वारा मारे गए ?

उन पक्षियों ने जैमिनी ऋषि के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि :

**उत्तर 1 :** तत्वदर्शी मुनियों ने जल को 'नार' कहा है और यही भगवान का प्रमुख निवास स्थान होने के कारण वह नारायण कहे गए हैं। वह संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है और संपूर्ण सृष्टि उनमें व्याप्त है, वह समष्टि रूप भी है, व्यष्टि रूप और सगुण भी है, निर्गुण और साकार भी है, निराकार भी। ऐसे असीम नारायण की ससीम मनुष्य किस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है? शब्द उसका प्रतिपादन ही नहीं कर सकते, जैसे समुद्र की गहराई व आकाश के विस्तार का वर्णन कैसे किया

जा सकता है ? इसी भाव को योगी व वेदांती 'नेति-नेति' कहकर पुकारते हैं अर्थात् अतुलनीय, अशेष, असीमित, अथाह, अनंत, दिव्य रूप, गुणातीत, भावातीत, शब्दातीत, पूर्णतः शुद्ध सत्व तत्व। इसी शुद्ध सत्व रूप को योगी चार भावों से देखते हैं। प्रथम मूर्ति वासुदेव की है, जो सर्वथा एक रूप, अज्ञेय और राग-द्वेष से रहित है। दूसरा स्वरूप तमोगुण से युक्त शेष या संकर्षण के नाम से पाताल में रहता है। तीसरी सतोगुण से युक्त मूर्ति प्रद्युम्न की है और चौथी मूर्ति, जो रजोगुण से युक्त है, अनिरुद्ध जी की है, जो सृष्टि उत्पन्न करती है। इस प्रकार इस पुराण में प्रभु स्वयं को ही निर्गुण और सगुण, दोनों रूपों में अभिव्यक्त करते हैं और संसार में जब-जब धर्म का ह्रास और अधर्म की वृद्धि होती है, तभी प्रभु का सगुण रूप प्रकट होता है। इसी कारण वासुदेव कृष्ण मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं।

**उत्तर 2 :** पक्षी कहते हैं कि हे ऋषिवर ! पूर्वकाल में त्वष्टा प्रजापति के पुत्र विश्वरूप का इंद्र ने वध कर दिया था, अतः इंद्र पर ब्रह्म हत्या का दोष लगा। इससे उनके ओज, आभा व तेज की क्षति हुई और वह तेज का अंश धर्मराज युधिष्ठिर के रूप में प्रकट हुआ। इसके पश्चात् इंद्र ने वृत्रासुर जो एक ब्राह्मण था, का वध कर दिया, जिससे उन्हें पुनः ब्रह्म हत्या का दोष लगा और पुनः उनके ओज, आभा व तेज में क्षति हुई और वह तेजोभूत अंश वायु देवता के प्रताप से कुंती के गर्भ से भीम रूप में प्रकट हुए। इसके पश्चात् जब इंद्र ने गौतम का रूप धारण करके अहिल्या का सतीत्व भंग किया, तो उनका रूप, तेज, बल, पराक्रम सभी आधे नष्ट हो गए। यही अंश अश्विनी कुंती के गर्भ से अर्जुन के रूप में प्रकट हुआ। इंद्र के सौंदर्य व रूप कां अंश अश्विनी कुमारों द्वारा माद्री के गर्भ में स्थापित किया गया, जिससे अतीव सुंदर नकुल व सहदेव का जन्म हुआ। इस प्रकार पांचों पांडवों में इंद्र का ही अंश था अर्थात् देवराज ही पांच रूपों में अवतीर्ण हुए। उधर द्रौपदी जो अग्निसंभूता थी, इंद्र की पत्नी शची के अंश से प्रकट हुई थी। अतः वही अपने पति के पांचों रूपों के साथ एक पत्नी के रूप में रही। अतः द्रौपदी का पूर्वजन्म जाने बिना उन्हें बहुपतिगामिनी कहना दोषपूर्ण व अनुचित है। यही कारण है कि भगवान कृष्ण प्रेम से द्रौपदी को कृष्णा कहते थे और भारतीय वाङ्मय की पंच पतिव्रता नारियों में पंचकन्या के रूप में उनका स्मरण व पूजन किया जाता है।

**उत्तर 3 :** तीसरे प्रश्न के उत्तर में मद्यपान के विभिन्न दोषों की चर्चा की गई थी तथा सच्चे पश्चात्ताप से शाप मुक्ति की कथा का वर्णन आता है।

**उत्तर 4 :** द्रौपदी के अविवाहित पुत्रों की हत्या की शंका के उत्तर में पक्षिराज सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की संपूर्ण कथा का वर्णन करते हैं और उसमें प्रसंग आता है कि जब राजा हरिश्चंद्र ने विश्वामित्र जी को अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया

और वह नगर छोड़कर जा रहे थे, तभी नगरवासी आर्त स्वर में मर्मस्पर्शी विलाप करने लगे, जिससे राजा क्षण भर को ठहर गए और उनको ठहरा देखकर विश्वामित्र क्रोधित होकर बोले कि अरे हरिश्चंद्र, तुझे धिक्कार है, जो तू राज्य मुझे देकर फिर भी प्रजा के मोह से मुक्त नहीं हो पाया है, तुझे धिक्कार है, तू यहां से शीघ्र निकल जा। यह कठोर वचन सुनकर राजा शीघ्र ही चल पड़े। महाराजा हरिश्चन्द्र की पत्नी शैव्या भी धीरे-धीरे अपने पति का अनुसरण कर रही थी। उनको धीरे-धीरे चलते देखकर विश्वामित्र ने महारानी की पीठ पर डंडे से कड़ा प्रहार किया, जिससे महाराजा हरिश्चंद्र व्याकुल हो गए और उनकी आंखों में आंसू आ गए।

धर्मनिष्ठ सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की यह दुर्दशा देखकर पांचों विश्वदेव परस्पर कहने लगे कि ओह ! यह विश्वामित्र तो बड़ा ही पापी है। न जाने किस लोक में जाएगा। इसने यज्ञकर्ताओं में श्रेष्ठ महाराज को राज्य से नीचे उतार दिया है। विश्वदेवों का यह कथन सुनकर विश्वामित्र को बहुत रोष आया। उन्होंने उनको श्राप देते हुए कहा–"जाओ, तुम लोग मनुष्य हो जाओ।" फिर उनके अनुनय-विनय पर प्रसन्न होकर महामुनि ने कहा कि अच्छा मनुष्य होने पर तुम्हारा विवाह नहीं होगा, संतान नहीं होगी, तुम सांसारिक बंधन में नहीं पड़ोगे और शीघ्र ही 20 वर्ष की आयु भोगकर तुम पुनः देवत्व को प्राप्त कर लोगे। यही पांचों विश्वदेव द्रौपदी के गर्भ से इस श्राप के फलस्वरूप पांच पाण्डवपुत्रों के रूप में जन्मे और अपने शाप की अवधि पूर्ण होने पर अश्वत्थामा द्वारा मारे जाने पर देवत्व को प्राप्त हो गए।

इसके पश्चात् भार्गव के पुत्र सुमति की कथा के माध्यम से पुनर्जन्म में सिद्धांतों तथा गर्भ में जीव की स्थिति, उसके विकास क्रम व मृत्यु की विस्तार से चर्चा की गई है। मृत्यु के पश्चात् जीव किस प्रकार अन्य लोकों की यात्रा पर जाता है और मृतक के परिवार द्वारा प्रदत्त पिंडों द्वारा किस प्रकार उसका पोषण होता है, इसका वर्णन है। इसके पश्चात् विभिन्न प्रकार के नरक लोगों का वर्णन है। इसके पश्चात् महाराज अत्रि की पत्नी अनुसूइया जी के गर्भ से भगवान विष्णु के अंश भगवान दत्तात्रेय जी के जन्म की कथा का बहुत ही विस्तृत प्रसंग है।

इसके पश्चात् इस पुराण के एक अन्य प्रमुख उपाख्यान अलर्कोपाख्यान का प्रारम्भ होता है, जिसमें सर्वप्रथम नागकुमारों द्वारा राजा ऋतध्वज के पूर्ववृतांत का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है तथा गालव मुनि की कथा आती है, जिसमें एक प्रसंग आता है कि एक दैत्य उनके यज्ञ कर्म में बाधा डालता था और मुनि को एक दिन भगवान सूर्य की कृपा से कुवलय नामक अश्व प्राप्त हुआ और आकाशवाणी हुई कि राजा ऋतध्वज इस अश्व पर चढ़कर उस पापी दैत्य का वध करेंगे। इसके पश्चात् राजकुमार ऋतध्वज द्वारा पातालकेतु नामक दैत्य के वध व गंधर्व कन्या

मदालसा से विवाह का प्रसंग है। इसके पश्चात् अपने भाई पातालकेतु का बदला लेने की दृष्टि से उसके भाई तालकेतु द्वारा कपटपूर्वक मदालसा को मारने की व पुनः उसके जन्म व प्राप्ति की चर्चा है।

इसके पश्चात् मदालसा के गर्भ से तीन पुत्रों क्रमशः विक्रांत, सुबाहु और अरिमर्दन के जन्म की कथा है, जिन्हें माता ने बाल्यावस्था से ही वैराग्य, निस्पृहता, निर्लिप्तता व संसार की निःसारता तथा आत्मा व ब्रह्म के परम सत्य का ऐसा व्यापक उपदेश दिया है कि उनकी प्रकृति व प्रवृत्ति वैराग्यपूर्ण हो गई। इस पर ऋतध्वज ने मदालसा से कहा कि यदि पुत्रों को तुम ऐसे ही उपदेश देती रही, तो हमारा तो वंशविच्छेद हो जाएगा और भविष्य में पिंडदान की परंपरा का लोप हो जाएगा। अतः अब जो तुम्हारे पुत्र हो, उसे सांसारिक प्रवृत्तियों में लगाओ, जिससे वह राजपाट व धर्म में रुचि रखे। पति की आज्ञा मानकर मदालसा ने अपने चौथे अलर्क को राजनीति, वर्णाश्रम व गृहस्थ धर्म व श्राद्धकर्म जैसा सारगर्भित उपदेश दिया, वैसा भारतीय वाङ्मय में अद्वितीय है। इस उपदेश के पश्चात् मदालसा ने अपने पुत्र अलर्क को एक अंगूठी देकर शिक्षा दी कि जब कभी जीवन में संकट पड़ जाए, तो इस अंगूठी में रेशमी वस्त्र में लिपटा अत्यंत सूक्ष्म अक्षरों में लिखा पत्र वह अवश्य पढ़े। इसके पश्चात् अलर्क पुत्रों को राजपाट सौंपकर मदालसा व कुवलयाश्व तपस्या करने वन चले गए।

अलर्क ज्ञानी होते हुए भी सांसारिक सुख व भोगों में आसक्त हो गया, जिस पर उसे तत्वज्ञान के उद्देश्य से उसके बड़े भाई सुबाहु ने काशिराज के साथ मिलकर उस पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण में अलर्क पराजय के कगार पर ही था कि उसे अपनी माता मदालसा की दी हुई अंगूठी का स्मरण आ गया और उसने कष्ट के समय उसका संदेश पढ़ने के उद्देश्य से उसे खोला, तो उसमें रेशमी वस्त्र पर लिखा था कि **"हे पुत्र ! भोगों में आसक्ति त्याग देनी चाहिए और यदि उसका त्याग न किया जा सके, तो सत्पुरुषों का संग करना चाहिए, क्योंकि सत्पुरुषों का संग विपत्तियों को हरने वाला होता है। कामनाओं को सर्वथा त्याग देना चाहिए तथा यदि उन्हें त्यागा न जा सके, तो भी मुमुक्षा (मुक्ति की इच्छा) की कामना करनी चाहिए, क्योंकि मुमुक्षा ही कामना को नष्ट करने की औषधि है।"**

माता के संदेश को अलर्क ने बार-बार पढ़ा और सत्पुरुष के संग के लिए भगवान दत्तात्रेय जी की शरण ली। दत्तात्रेय-अलर्क संवाद में भारतीय योग, दर्शन व अध्यात्म पर गहन व गूढ़ चर्चा होती है, जिसमें योग, प्राणायाम, रोगों के उपचार, योगमार्ग में होने वाले विघ्नों, उनसे बचने के उपाय, सात धारणाओं, आठ ऐश्वर्यों व योगी की मुक्ति पर बहुत ही विशद व व्यापक विवरण प्राप्त होता है। इसके

पश्चात् प्रणव की चर्चा व मृत्यु निकट होने पर होने वाले विभिन्न लक्षणों का बहुत ही विस्तार से वर्णन मिलता है। उन लक्षणों में से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं, जो पुरुष ध्रुव व अरुंधती नक्षत्र या तारे को नहीं देख सकता, उसकी एक वर्ष में मृत्यु हो जाती है। जो स्वप्न में वमन, मूत्र और विष्ठा में सोने व चांदी के भंडार देखता है, उसकी दस माह में मृत्यु हो जाती है। स्वप्न में किसी भी रूप में स्वर्ण का दिखना मृत्यु का द्योतक है। जिसका पैर या एड़ी धूल या कीचड़ में रखने पर पादाग्र भाग खंडित दिखाई देता है, उसका जीवन सात मास ही शेष रहता है। यदि गिद्ध, कबूतर, उल्लू, कौआ या नीले रंग का पक्षी मस्तक पर आकर बैठ जाए, तो यहां केवल 6 मास तक जीवित रहने की सूचना है। जो व्यक्ति घी, तेल, दर्पण या जल में अपनी परछाई नहीं देख सकता, वह मात्र एक मास तक इस संसार में रहता है। स्नान करने के तुरंत बाद जिसकी छाती और पैर सूख जाएं और जल पीने पर भी कण्ठ सूखा रहे, वह दस दिन से अधिक जीवित नहीं रहता। यदि स्वप्न में नंगा व सिर मुंडाए कोई व्यक्ति हंसता और उछलता-कूदता दिखाई दे, तो जान लेना चाहिए कि मृत्यु आ गई है। जिसको दीपक बुझने की गंध नहीं आती, उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। जो अपने कानों को बंद करने पर अपनी ही आवाज न सुन सके, उसकी मृत्यु एक या दो मास में हो जाती है। जिसका माथा गरम हो, परंतु नाभि शीतल रहे, वह मृत्यु का संकेत है।

इन जानकारियों से अलर्क के मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह बिना युद्ध के संपूर्ण राज्य अपने बड़े भाई सुबाहु को सहर्ष देने को तैयार हो जाता है और राजपाट छोड़कर वन को चला जाता है। बड़े भाई सुबाहु को भी राजपाट में कोई रुचि नहीं थी, वह तो केवल अपने भाई में वैराग्य की भावना जगाना चाहता था, अतः वह भी वैसे ही वन को चला जाता है और अलर्क का पुत्र राज्यभार संभालता है। इस प्रकार मदालसा-अलर्क खंड में कर्तव्यपरायणता, त्याग, योग, सत्य, पुरुषार्थ व वैराग्य के महत्त्व का प्रतिपादन अनेक कथाओं द्वारा किया गया है।

इसके पश्चात् मार्कण्डेय मुनि व क्रौष्टुकि संवाद में सर्ग अर्थात् प्रजा की सृष्टि, स्थिति व सृजन क्रम का वर्णन है तथा विभिन्न मनुओं के जन्म की कथा है। मार्कण्डेय पुराण इस तथ्य को स्वीकार करता है कि अंततोगत्वा सारी सृष्टि सूर्य से उत्पन्न हुई है। इस कारण सूर्य की उपासना अवश्य करनी चाहिए। सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु के काल में ही आज सृष्टि प्रवाहमान है (प्रत्येक शुभ कार्य के संकल्प में हम वैवस्वत मन्वंतर का ही उच्चारण करते हैं)। सूर्य को ही त्रयी विद्या का भी मूल बतलाया गया है, जो वस्तुतः व मुख्यतः वैदिक विचारधारा की परंपरा है। त्रयी विधा अर्थात् सर्वत्र त्रिगुणात्मकता सनातन भारतीय वैदिक धर्म

की विशिष्टता है। सत्व-रज-तम, भू-भुवः-स्वः, ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सृजन-स्थिति-प्रलय-मन-वाक-प्राण, अव्यय-अक्षर-क्षर पुरुष, दक्षिणाग्नि-गार्हस्थत्याग्नि-आवाहनीयाग्नि, विराट-हिरण्यगर्भ-अव्याकृत, अ-उ-म, ऋक्-यजु-साम यही भारती मेधा का सत्यम्-शिवम्-सुंदरम् है।

इसी त्रिगुणात्मकता के आधार पर मार्कण्डेय पुराण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व प्रसिद्ध भाग दुर्गासप्तशती का प्रारंभ होता है, क्योंकि मां दुर्गा का एक नाम त्रिगुणा भी है और शक्ति का प्रतीक चिह्न उलटा त्रिभुज है। इस पुराण के अंतर्गत वर्णित दुर्गा सप्तशती तंत्र शास्त्र की एक अमूल्य निधि है, जिसमें 700 श्लोकों, तीन चरित्रों व 13 अध्यायों में मां दुर्गा की गोपनीय तांत्रिक साधना का वर्णन है, तंत्रयोग या शाक्त मार्ग के अनुसार यद्यपि जगत के मूल में आधा शक्ति विद्यमान है, परंतु इस शक्ति को अभिव्यक्त होने हेतु सदैव आधार चाहिए। बिना आधार के शक्ति प्रकट नहीं हो सकती। जिस आधार को लेकर यह शक्ति प्रकट होती है, उसे भी यह चैतन्य और गतिमान बना देती है। यही शक्ति की विशिष्टता है, जिसके द्वारा शव, शिव में परिवर्तित होकर शक्ति से मिलकर संसार को क्रियाशील बनाते हैं।

दुर्गा सप्तशती में 700 श्लोकों के पीछे भी भारतीय अंक प्रतीकों का गूढ़ रहस्य निहित है। शक्ति मातृका रूपी है और अक्षर-वर्ण वर्ग (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, अंतस्य व ऊष्म) 7 है। अग्नि की सात जिह्वाएं (हिरण्या, कनका, रक्ता, आरक्ता, सुप्रभा, बहुरूपा और सती), अर्थभेद के सात रूप, शक्ति की प्रतिरूपा नारी के सात अवस्था भेद (कन्या, रोहिणी, गौरी, बाला, तरुणी, प्रौढ़ा और वृद्धा), शरीर को निर्मित करने वाली सप्त धातुएं, सूर्य की सात रश्मियां (सुषुम्ना, सुरादना, उद-वसु, विश्वकर्मा, उदावसु, विश्वव्यचा, हरिकेश), शक्तिरूपा वाणी के सात स्वर, सप्त चक्र परिवार और सृजन के संस्कार विवाह की सप्तपदी, सप्तमातृका व सप्तमृतिका, सप्तलोकों का शक्ति द्वारा पोषित होने के कारण **दुर्गासप्तशती**– सप्तशती हैं।

शब्द, अर्थ और ज्ञान ये तीनों परस्पर संशलिष्ट हैं। लौकिक पुरुष, आद्य-ऋषि व योग-सिद्ध–इन तीनों के उच्चारित शब्द एक से नहीं होते, क्योंकि प्रत्येक के लिए सत्य के निर्णय के लिए अर्थ और शब्द का पारस्परिक संबंध भिन्न-भिन्न होता है। इसी भावना के अनुरूप दुर्गा सप्तशती के प्रथम चरित व प्रथम अध्याय के विनियोग में जहां देवता महाकाली है, वहीं मध्यम चरित व द्वितीय अध्याय में देवता महालक्ष्मी और उत्तर चरित व पंचम अध्याय में देवता महासरस्वती हैं। सत्वगुणी ब्राह्मी शक्ति महासरस्वती ही वाक् शक्ति है, जबकि रजोगुणी वैष्णवी शक्ति महालक्ष्मी मनःशक्ति है, तमोगुणी रुद्र शक्ति, महाकाली प्राण शक्ति है और सप्तशती

के तीनों चरित्रों के पाठ से ये तीनों केंद्र जागृत व चेतन हो जाते हैं।

दुर्गा सप्तशती की साधना की सफलता हेतु शक्ति के तीनों स्वरूपों प्रतिभा, यंत्र व बीजाक्षर का समन्वय आवश्यक है। बीजाक्षर के देवता की शब्दात्मक सत्ता व शक्ति घनीभूत रूप में संकेद्रित व संचित रहती है। जिसके उच्चारण से निकली तरंगें देवता को आकर्षित करती हैं तथा षट्चक्रों के विभिन्न कमलदलों व तत्वों को कंपित करती हैं। तदनुरूप प्रथम चरित में महाकाली का बीजाक्षर रूप (ऐं) है (पाठकगण कृपया भ्रमित न हों कि काली जी का बीजमंत्र क्लीं है, यह सत्य है कि उनका व कृष्ण जी का बीजमंत्र क्लीं है, परंतु दुर्गा सप्तशती के विशिष्ट संदर्भ में यह ऐं है, तो बालात्रिपुरसंदरी के मंत्र बीज मंत्र का भी प्रथम अक्षर है)। वस्तुतः महाकाली जहां एक ओर संहार से जुड़ी हैं, वहीं वह सृजन के व्यष्टि बीज से भी जुड़ी हैं, क्योंकि संहार के पश्चात् समस्त चैतन्य शक्ति के बीज इन्हीं में समाहित हो जाते हैं, वैसे भी काला वर्ण समस्त वर्णों को अवशोषित कर लेता है।

51 नर मुंडों की माला वस्तुतः 51 मातृकाएं हैं तथा नरमुंड मृत्यु व नवजीवन, दोनों का प्रतीक है। जीव के पुनर्जन्म के पश्चात् भी यदि उसका कपाल सुरक्षित हो, तो कभी भी और कहीं भी उससे संपर्क स्थापित किया जा सकता है। यह तंत्र की अति उच्च कोटि की सिद्धि है, अतः अकाल मृत्यु व जन्म की निरंतरता की भी कड़ी है। प्रथम चरित के ऋषि इसी कारण ब्रह्मा जी हैं, जो सृजनधर्म का पालन करते हैं। इस चरित में मेधा ऋषि राजा सुत्य व समाधि को भगवती की महिमा बताते हैं तथा मधु कैटभ के वध का प्रसंग आता है। मध्यम चरित में महालक्ष्मी का बीजाक्षर ह्लीं है तथा इसमें देवताओं के तेजोमय अंश से देवी का प्रादुर्भाव और महिषासुर की सेना के वध का प्रसंग है।

तृतीय अध्याय में सेनापतियों सहित महिषासुर के वध का प्रसंग है। चौथे अध्याय में शक्रादि स्तुति अर्थात् इंद्र आदि देवताओं द्वारा देवी की भावपूर्ण स्तुति है। पंचम अध्याय से उत्तम चरित प्रारंभ होता है, जिसकी देवी महासरस्वती व बीज क्लीं है। **यही तीनों शब्द मिलकर (ऐं ह्लीं क्लीं) नामक बीजाक्षर की रचना करते हैं, जो मां दुर्गा की तांत्रिक आराधना का मेरुदंड है।** इस अध्याय में देव स्तुति से प्रसन्न होकर चंडमुंड के मुख से अम्बिका के रूप की प्रशंसा सुनकर शुम्भ का उनके पास दूत भेजना व दूत के निराश होकर लौटने का प्रसंग है तथा यह अध्याय देवी-दूत संवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

छठे अध्याय में धूम्रलोचन वध की कथा है और सप्तम अध्याय में चंड-मुंड के वध की कथा आती है। आठवें अध्याय में रक्तवीज के वध की। नवें अध्याय में निशुम्भ वध की और दशम अध्याय में शुम्भ वध की कथा है। 11वें अध्याय

में देवताओं द्वारा देवी की स्तुति तथा देवी द्वारा देवताओं को वरदान देने का प्रसंग है तथा यह अध्याय देवी स्तुति के नाम से प्रसिद्ध है। 12वां अध्याय फल स्तुति के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें देवी के चरित्रों के पाठ का माहात्म्य वर्णित है। दुर्गा सप्तशती का अष्टमी-चतुर्दशी व नवमी को पाठ करने का विशेष माहात्म्य माना गया है। 13वें अध्याय में सुरथ और वैश्य को वरदान के साथ यह सप्तशती पूर्ण हो जाती है।

सप्त शती को 13 अध्यायों में क्यों विभाजित किया गया है, इसका विशिष्ट कारण यह है कि 13 की संख्या वैदिक धर्म में सदैव शुभ मानी गई है। यद्यपि कुछ पाश्चात्य देशों में इसको अशुभ मानने का प्रचलन है। 13 की संख्या में दो अंक हैं 1 व 3। 1 स्वयंभुव शिव का प्रतीक है, क्योंकि महादेव को एकदृक् भी कहा गया है। ब्रह्म 1 ही है, दूसरा तो संसार में सब कुछ माया है, एकोब्रह्म द्वितीयं नास्ति। स्वयं दुर्गा सप्तशती के दुर्गा को 'एका' कहा गया है। दुर्गा—एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा—मार्कण्डेय पुराण 90/7। इसी प्रकार अथर्ववेद के प्रसिद्ध देव्यर्थशीर्ष में 23वें श्लोक में कहा गया है—**एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका** अर्थात् जो अकेली ही सर्वत्र है, इसलिए जिसे एका कहते हैं। इसी प्रकार तीन तो त्रिभुज की अंक रूप में अभिव्यक्ति है जो देवी का यंत्र रूप है और चिद्रूपा-त्रिगुणित- कुंडलिनी-देवी प्रसूत मित्व तो जगत प्रसिद्ध है। अतः 13 अंक में शिव व शक्ति की घनीभूत शक्ति समाहित है। अतः सप्तशती के 13 अध्याय हैं। यद्यपि दुर्गासप्तशती के पाठ में अर्गला, कीलक, रात्रिसूक्त आदि का विधान है, परंतु सर्वाधिक रहस्यात्मक व चमत्कारिक सिद्धकुंजिका स्तोत्र है, जिसके विधि पूर्वक पाठ से संकल्पित इन्हीं बीजाक्षरों व नवार्ण मंत्रों को नौ कोष्ठक बनाकर लोम व विलोम क्रम में स्थापित करने से नवार्ण यंत्र बन जाता है, जो दुर्गा सप्तशती का मंत्र स्वरूप है।

| | | |
|---|---|---|
| ऐं | ह्लीं | क्लीं |
| ण्डा | मु | चा |
| मै | वि | च्चै |

इसके पश्चात् पुराण में नवें से 13 मन्वंतर तक का संक्षिप्त वर्णन है व दौच्य मनु की उत्पत्ति कथा है तथा कौत्य मन्वन्तर की कथा व 14 मन्वन्तरों के श्रवण फल का वर्णन है। इसके पश्चात् सूर्य तत्त्व की, सूर्य देव की स्तुति, सूर्य का अवतार

व सूर्य महिमा के प्रसंग में राजा राज्यधर्म की कथा है। इसके पश्चात् राजा खनित्र की कथा व नरिष्यंत व दम के चरित्र के साथ इस पवित्र पुराण का उपसंहार हो जाता है।

## 8. अग्नि पुराण

अग्नि देव के स्वयं के श्रीमुख से वर्णित होने के कारण यह अग्नि पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अनेकानेक विधाओं का समावेश होने के कारण स्वयं पुराणकार का कथन है—**आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः** (अग्नि. 383/51)। अर्थात् इस आग्नेय (अग्नि) पुराण में सभी विद्याओं का वर्णन है। अग्निदेव ने महर्षि वशिष्ठ को यह पुराण सुनाय़ा था। पद्म पुराण में पुराणों को भगवान विष्णु का ही विग्रह अथवा मूर्तरूप बतलाया गया है और उनके विभिन्न अंग ही विभिन्न पुराण कहे गए हैं। इस दृष्टि से अग्नि पुराण को भगवान श्रीहरि का बायां चरण कहा गया है—

**अङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते** **(स्वर्गखंड 62/4)**

अग्नि पुराण में 383 अध्याय हैं, जिसके अंतर्गत परा-अपरा विद्याओं का वर्णन, मत्स्य, कर्म आदि नारायण के अवतारों की कथाएं, रामायण के सातों कांडों की संक्षिप्त कथा, हरिवंश नाम से प्रभु का वर्णन, भगवान श्रीकृष्ण के वंश का वर्णन, महाभारत के सभी पर्वों की संक्षिप्त कथा, सृष्टि-वर्णन, स्नान-संध्या-पूजा-होम-विधि, मुद्राओं के लक्षण, दीक्षा-विधि, अभिषेक-विधि, विविध मंडलों की रचना-विधि, निर्वाण-दीक्षा के 48 संस्कार, पवित्रारोपण, अधिवास-विधि, देवालय-निर्माण-फल, भूपरिग्रह-विधान, शिलान्यास-विधान, प्रासाद-लक्षण, प्रासाद-देवता-स्थापन-विधि, विविध देव प्रतिमाओं के लक्षण, पिंडिका-लक्षण, लिंग का लक्षण तथा मान, प्राण-प्रतिष्ठा की विधि, देव-पूजाविधि, कलाशोधन, विद्याशोधन, शांतिशोधन, तत्व दीक्षा, देवों के विविध मंत्र, वास्तु पूजा विधि और खगोल शास्त्र का वर्णन है। इसी प्रकार इनमें तीर्थ माहात्म्य, गया यात्रा विधि और श्राद्धकल्प, ज्योतिष शास्त्र, त्रैलोक्य विजय विद्या, संग्राम-विजय विद्या, महामारी विद्या, वशीकरण आदि षट् कर्म, संवत्सरों के नाम, मंत्र, औषधि, कुब्जिका पूजा, लक्षकोटि होम-विधि, वर्णाश्रम धर्म, विविध पातक एवं उनके प्रायश्चित्त विधान, प्रतिपदा से पूर्णिमा तक के तिथि-व्रत, वार-व्रत, दिवस-व्रत, मास-व्रत, दीपदान-व्रत, भीष्म-पञ्चक-व्रत, षोडश महादान, दान-माहात्म्य, राजधर्म, विविध स्वप्न, शकुन-अपशकुन, पुरुष-स्त्री के शुभाशुभ लक्षण, रत्न-परीक्षा, धनुर्वेद, व्यवहार, सीमाविवाद-निर्णय, उत्पात शान्ति विधि, भोजन की विधि, दिक्पालादि-स्नान एवं विनायक स्नान की विधि, सूर्य एवं चंद्रवंश का विस्तार, सिद्धौषधि एवं रसादि

का वर्णन, वृक्षायुर्वेद, गज चिकित्सा, अश्व चिकित्सा, गज शांति, अश्व शांति, नागों के लक्षण और सर्पदंश की चिकित्सा, बाल तंत्र, ग्रह यंत्र, नारसिंह मंत्र, त्रैलोक्यमोहन मंत्र, लक्ष्मी एवं त्वरिता पूजा तथा मंत्र, वागीश्वरी पूजा एवं सिद्धि आदि का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही इनमें अघोरास्त्र-मंत्रोद्धार, पाशुपत-शांति, रुद्र-शांति, छंदशास्त्र, काव्य-लक्षण, नाट्यशास्त्र, शृंगारादि रस, अलंकार, व्याकरण शास्त्र, शब्दकोश, प्रलय वर्णन, नरक वर्णन, कर्मविपाक, योगांग, ब्रह्मज्ञान, भगवद्गीता का भावार्थ, यमगीता तथा अंत में पुराण के पठन-पाठन, श्रवण और दान का माहात्म्य बतलाया गया है।

## 9. भविष्य पुराण

भविष्य पुराण वस्तुतः सौर प्रधान ग्रंथ है, जिसमें पंचदेवों में परिगणित सूर्य की महिमा, उनके स्वरूप, परिवार, उपासना पद्धति व असंभव लगने वाली विचित्र व अद्‌भुत कथाओं का वर्णन है। व्रतों व उपवासों पर तो जितनी विशिष्ट सामग्री एक साथ एक ही स्थान पर इस पुराण में मिलती है, वैसी अग्नि पुराण के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है। व्रतों की विधि, उनसे जुड़ी कथाओं व उनके सुफल होने का इस पुराण में बड़ा ही विस्तृत विवेचन मिलता है, जो आज के संदर्भ में बहुत ही जीवनोपयोगी है। विशेष रूप से अशून्य शयन व्रत का आज के वैवाहिक जीवन में सुख, सौभाग्य व समृद्धि के लिए बहुत ही महत्त्व है। इसके अतिरिक्त सामुद्रिक शास्त्र अर्थात् स्त्री-पुरुष के शारीरिक लक्षणों, रत्नों व मणियों की परीक्षा, विभिन्न प्रकार के स्तोत्र आदि अनेक प्रकार की औषधियों का और सर्प-विद्या का इतना विशद वर्णन है कि यदि इसे भारतीय ज्ञान का विश्वकोश कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त इतिहास का 2000 वर्ष का इतना सटीक व क्रमिक वर्णन मिलता है कि इसमें नंद व मौर्य वंश से लेकर आल्हा-ऊदल, शंकराचार्य, तैमूर, बाबर, हुमायूं, शिवाजी और महादजी सिंधिया आदि का भी विवरण प्राप्त होता है। पुराणों के रचयिता व्यास आदि मुनियों की दृष्टि इतनी दिव्य थी कि इस पुराण में महारानी विक्टोरिया का 1857 में भारत की साम्राज्ञी बनने का भी विवरण है। इस पुराण में भविष्य में होने वाली घटना के रूप में यह भी बताया गया है कि अंग्रेज़ी यहां की प्रमुख भाषा हो जाएगी और संस्कृत विलुप्तप्राय हो जाएगी। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

**रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैव फरवरी।**
**षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहार वृद्धिश्मू।।**

इस पुराण में कुल चार खंड हैं, जो क्रमशः ब्राह्म पर्व, मध्यम पर्व, प्रतिसर्ग पर्व व उत्तर पर्व के नामों से प्रसिद्ध हैं। भविष्य पुराण के अनुसार इसमें श्लोकों

की संख्या 50 हजार होनी चाहिए, परंतु वर्तमान में 28 हजार श्लोक ही उपलब्ध हो पाते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ का आधा भाग काल के गर्त में विलुप्त हो चुका है।

## ब्राह्म पर्व

व्यास शिष्य महर्षि सुमंतु एवं राजा शतानीक के संवाद से इस पुराण का श्रीगणेश होता है। प्रथम दो अध्यायों में भविष्य पुराण की महिमा और परंपरा, सृष्टि वर्णन, वेद व पुराणों की उत्पत्ति, काल गणना व युगों की संख्या आदि विषयों का वर्णन है। तृतीय अध्याय में गर्भाधान से यज्ञोपवीत तक के संस्कारों की संक्षिप्त विधि है तथा भोजन विधि के प्रसंग में धनवर्धन की कथा, जिसके द्वारा एक बार छोड़ देने पर पुनः भोजन न करने के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् दाहिने हाथ में स्थित पांच प्रकार के तीर्थों का विस्तार से वर्णन किया गया है। तीर्थ का अर्थ यहां दाहिने हाथ के विभिन्न भागों में स्थित कर्मकाण्डीय विभाजन से है, जो पांच प्रकार के माने गए हैं :

1. देवतीर्थ, 2. पितृतीर्थ, 3. ब्रह्मतीर्थ, 4. प्रजापत्य तीर्थ और 5. सौम्य तीर्थ (देवकार्य के लिए प्रशस्त माना गया है।)। ब्राह्मण के दक्षिणा आदि कर्म देवतीर्थ से संपन्न होते हैं। तर्पण व पिंड आदि कर्म पितृतीर्थ से और आचमन आदि कर्म ब्राह्मतीर्थ से संपन्न होते हैं। विवाह के समय लग्नहोत्र आदि कर्म प्रजापत्य तीर्थ से ही संपन्न किए जाने चाहिए। चौथे अध्याय में वेदाध्ययन, ॐकार व गायत्री जप का महत्त्व, अभिवादन विधि व माता-पिता तथा गुरु की महिमा का वर्णन है। पांचवे अध्याय में विवाह योग्य स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षणों की संक्षिप्त चर्चा की गई है। सुमन्तु ऋषि राजा शतानीक से कहते हैं कि पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने स्त्रियों के लक्षण बताते हुए कहा था कि जिस स्त्री के चरण लाल कांतिवाले, कोमल तथा भूमि पर समतल रूप से पड़ते हों, वह अत्यंत सौभाग्यवती व उत्तम सुख प्राप्त करने वाली होती है। जिस स्त्री के चरण रूखे, फटे हुए तथा नाड़ियों से युक्त हों, वह दरिद्रा व दुर्भगा होती है। यदि पैर की अंगुलियां परस्पर मिली हों तथा सीधी गोल, स्निग्ध व सूक्ष्म नखों से युक्त हों, तो ऐसी स्त्री अत्यंत ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली व राज महिषी होती है। छोटी अंगुलियां आयु को तो बढ़ाती हैं, परंतु छोटी और विरल अंगुलियां धन का नाश करने वाली होती हैं, यद्यपि ऐसी विरला ही देखने में मिलती हैं, परंतु यदि किसी स्त्री की ग्रीवा में चार अंगुल के परिमाप में स्पष्ट रूप से तीन रेखाएं हों, तो वह स्त्री अत्यंत भाग्यशाली व पिता, व पति दोनों कुलों की मान व सम्मान वृद्धि करने वाली होती है। इसके पश्चात्

15वें अध्याय तक धन व स्त्री की महत्ता, आठ प्रकार के विवाह व पतिव्रता स्त्री के गुणों की चर्चा की गई है। इसके पश्चात् 16वें अध्याय में पंच महायज्ञों यथा ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ व अतिथियज्ञ की चर्चा है। पुनः इसी अध्याय में पक्ष की 5 तिथियों को किए जाने वाले विशिष्ट भोज्य पदार्थों की चर्चा की गई है, जिनका केवल एक पक्ष में ही भोजन करने से असीम पुण्य, स्वास्थ्य, धन व यश की प्राप्ति होती है और उसे दस अश्वमेध यज्ञों की फल प्राप्ति होती है :

| | | |
|---|---|---|
| प्रतिपदा | = | दूध |
| द्वितीया | = | लवण रहित भोजन |
| तृतीया | = | तिल व उससे बने पदार्थ |
| चतुर्थी | = | दूध |
| पंचमी | = | फल |
| षष्ठी | = | शाक |
| सप्तमी | = | बिल्व फल का आहार |
| अष्टमी | = | पिष्ट |
| नवमी | = | अनग्निपाक |
| दशमी व एकादशी | = | घृताहार |
| द्वादशी | = | खीर |
| त्रयोदशी | = | गोमूत्र |
| चतुर्दशी | = | यवान्न (जौ) |
| पूर्णिमा | = | कुशा का जल |
| अमावस्या | = | हविष्य भोजन |

इस व्रत में स्त्री-पुरुष व चारों वर्णों का समान अधिकार है। जो इन तिथि व्रतों का आरंभ आश्विन की नवमी, माघ की सप्तमी और वैशाख की तृतीया तिथि या कार्तिक की पूर्णिमा से करता है, उसकी दीर्घायु होती है। इसके पश्चात् प्रतिपदा तिथि की विशिष्टता का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जिस दिन दिशा, उपदिशा, देवता, दानव आदि की रचना हुई, उस तिथि का नाम प्रतिपदा रखा गया तथा इसी से सभी तिथियों की उत्पत्ति मानी गई है तथा इसके व्रत-उपवास की विधि दी गई है। इस तिथि का और अधिक वर्णन वराह पुराण में मिलता है। इसके पश्चात् द्वितीया, तिथि के महत्त्व का वर्णन करते हुए अश्विनी कुमारों को च्यवन ऋषि द्वारा यज्ञ में सोम रस पिलाने की और राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या के पातिव्रत्य का वर्णन है तथा राजा शतानीक की कथा है कि जो कोई व्यक्ति सुंदर रूप चाहता हो, वह कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया से व्रत आरंभ करे

और पुष्प का भोजन करे और प्रत्येक द्वितीया को ऐसा ही करता हुआ वर्ष भर भोजन करे तथा वर्ष के अंत में सोने-चांदी के पुष्प बनाकर अथवा कमल पुष्प ब्राह्मणों को प्रदान करे, तो वह अतीव सुंदर हो जाता है।

फिर बहुत ही महत्त्वपूर्ण व जीवनोपयोगी फल द्वितीया या अशून्यशयन व्रत का वर्णन है, जिसके करने से स्त्री कभी विधवा नहीं होती और उसका अपने पति से वियोग नहीं होता। इस व्रत की बहुत अधिक महत्ता है। गृहस्थों को इस व्रत को अवश्य करना चाहिए। क्षीरसागर में श्रीलक्ष्मी जी के साथ भगवान विष्णु के शयन करने के समय यह व्रत होता है। श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को लक्ष्मीजी के साथ श्रीवत्स भगवान विष्णु का पूजन निम्न प्रार्थना के अनुसार करना चाहिए :

**श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीवतन रीपतेऽव्यय।**
**गार्हस्थ्यं वा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्।।**
**गावाश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः।**
**जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः।।**
**लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान।**
**तथा कलमसंबंधो देव मा मे वियुज्यताम्।।**
**लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा।**
**शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन।।**

इसके पश्चात् भगवान को प्रिय लगने वाले फलों तथा खजूर, नारिकेल आदि मधुर फलों को भगवान की शैया पर समर्पित करना चाहिए तथा स्वयं रात्रि को उन्हीं फलों को खाकर दूसरे दिन ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार जो स्त्री चार मास तक यह व्रत करती है, वह न तो विधवा होती है और न ही पति से उसका विवाह-विच्छेद होता है। इस दिन अश्विनीकुमारों का भी अवश्य पूजन करना चाहिए।

इसके पश्चात् गौरी तृतीया तथा गणेश चतुर्थी के व्रत के विधि-विधान का वर्णन है तथा गणेश चतुर्थी के संदर्भ में एक कथा का वर्णन किया गया है, जिसमें बताया गया है कि एक बार कार्तिकेय ने पुरुषों व स्त्रियों के श्रेष्ठ लक्षणों की रचना की और गणेश जी ने उसमें विघ्न डाल दिया, जिससे दोनों भाइयों में युद्ध हो गया और पिता शिवजी को उनका क्रोध शांत करने के लिए आना पड़ा। उन्होंने कार्तिकेय से पूछा कि अच्छा बताओ, मुझमें किस पुरुष के लक्षण हैं ? इस पर कार्तिकेय ने कहा कि मेरे ग्रंथानुसार आप संसार में कापाली के नाम से प्रसिद्ध होंगे। इस पर शिवजी को क्रोध आ गया और उन्होंने ग्रंथ को समुद्र में फेंक दिया।

बाद में क्रोध शांत होने पर उन्होंने समुद्र से कहा कि अब इस लक्षण ग्रंथ की तुम पुनर्रचना करो और यह अब तुम्हारे नाम से अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध होगा। इसी कारण स्त्री-पुरुष के विभिन्न लक्षणों वाले ग्रंथ अब सामुद्रिक शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस पुराण में 24वें से 28वें अध्याय तक पुरुषों के शुभाशुभ लक्षण, राजपुरुषों के लक्षण व स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों का वर्णन है। स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों में ब्रह्माजी कार्तिकेय से कहते हैं कि जिस स्त्री की ग्रीवा में रेखा हो और नेत्रों का प्रांत के किनारे का सफेद भाग कुछ लाल हो, वह स्त्री जिस घर में जाती है, उस घर की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। जिस स्त्री के वाम स्थान पर, हाथ में, कान के ऊपर या गले पर तिल अथवा मस्सा होता है, उसकी प्रथम संतान पुत्र होता है।

29वें, 20वें व 31वें अध्याय में चतुर्थी व्रत व विनायक पूजा के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। चतुर्थी तिथि के तीन भेद बताते हुए सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन ! **शिवा, शांता** और **सुखा** ये तीन चतुर्थियां अन्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली व फलदायक होती हैं। जिनका मनुष्य को अवश्य पालन करना चाहिए। भाद्रपद मास की शुक्ला चतुर्थी का नाम शिवा है। इस चतुर्थी को गुड़, लवण और घृत का दान अतीव शुभकर माना गया है। इस दिन सौभाग्यवती स्त्री को अपने सास-ससुर का विशेष सत्कार करना चाहिए तथा उन्हें गुड़ के पुए और नमकीन पुए खिलाने चाहिए। सुंदर व सुशील पति की कामना करने वाली अविवाहित कन्याओं को विशेष रूप से इस चतुर्थी का व्रत और गणेश पूजन करना चाहिए। माघ मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को शांता कहते हैं। इस दिन स्नान-दान आदि सत्कर्म गणेश की विशेष कृपा से सहस्र गुना अधिक फलदायक होते हैं। इस दिन उपवास कर गणेशजी का पूजन व हवन करना चाहिए तथा स्त्रियों को विशेष रूप से अपने ससुर को भोजन कराना चाहिए। इस व्रत के करने से अखंड सौभाग्य की प्राप्ति होती है और नारी को वैधव्य दुःख नहीं भोगना पड़ता। इसी प्रकार किसी भी मास की भौमवार युक्त शुक्ला चतुर्थी को 'सुखा' कहते हैं। इस व्रत के करने से शरीर के अंगों की दुर्घटना आदि से विशेष रक्षा होती है तथा सुख-सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

इस दिन रक्त चंदन, रक्त पुष्प से भौम या मंगल का पूजन करने से उत्तम रूप व विशेष धन की प्राप्ति होती है। संकल्प पूर्वक स्नान करके इस दिन पवित्र होकर घर में आने के पश्चात् दूर्वा, पीपल व शमी तथा गौ को विशेष मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्पर्श करना चाहिए। इसके पश्चात् घृत, दुग्ध, यव, तिल आदि विविध भक्ष्य पदार्थों से, शर्वाय, शर्वपुत्राय, ललितांगाय व लोहितांगाय आदि नामों से 108 बार आहुति देनी चाहिए। इस प्रकार चार बार भौम युक्त चतुर्थी का व्रत

करके उसका उद्यापन करना चाहिए। ऐसा करने से मंगल ग्रह के सभी दोषों का शमन हो जाता है और स्त्री-पुरुषों का मंगलीक या कुंज दोष शांत हो जाता है।

इसके पश्चात् 32वें अध्याय में नागों को प्रिय पंचमी व्रत का विधान और फल का वर्णन है। पुनः सर्पो के रूप-लक्षण, रंग व जातियों का विस्तार से वर्णन है। इसके पश्चात् विभिन्न तिथियों व नक्षत्रों में सर्प दंश से पीड़ित पुरुषों के लक्षणों का वर्णन किया गया है। सर्पो के विष का वेग, फैलाव तथा सात धातुओं में विष के पहुंचने का और उसके प्रभाव का वर्णन है तथा उसकी चिकित्सा विधि दी गई है। जब विष के कारण सभी इंद्रियां निश्चेष्ट हो जाएं, काटने पर रक्त न निकले तथा केश उखाड़ने पर दर्द न हो और व्यक्ति मृत्यु के सन्निकट हो, तो भगवान शिव द्वारा बताई गई औषधि से प्राणों की रक्षा होती है। मोर का पित्त, मार्जार का पित्त, गंधनाड़ी की जड़, कुंकुम, तगर, कूट, कासमर्द की छाल तथा उत्पल, कुमुद और कमल—इन तीनों के केसर। सभी का समान भाग लेकर उसे गोमूत्र में पीसकर नस्य दें या अंजन लगाएं, तो मरा हुआ व्यक्ति भी पुनर्जीवित हो जाता है। इसी संदर्भ में यह भी बताया गया है कि **'ॐकुरुकुल्ले फट्-स्वाहा'**, इस मंत्र का जहां जाप होता है, वहां कोई सर्प नहीं आ सकता।

39वें अध्याय में षष्ठी तिथि के कल्प का वर्णन है, जो भगवान शंकर के पुत्र स्कंद या कार्तिकेय की तिथि मानी गई है। सुमंतु मुनि का कथन है कि यदि किसी व्यक्ति के पद, धन व मान की हानि हो गई हो, तो वह इस तिथि को व्रत करने से उसकी स्थिति पूर्ववत् हो जाती है। यदि राज्यच्युत राजा इस व्रत का अनुष्ठान कर ले, तो उसे खोया राज्य तक प्राप्त हो जाता है। कार्तिक मास की षष्ठी तिथि को इस व्रत का विशेष माहात्म्य है। इस तिथि को फलाहार कर व्रत पूर्ण किया जाता है। इस तिथि को व्रत करके घृत, दही, जल और पुष्पों से कार्तिकेय भगवान को दक्षिण की ओर मुख करके निम्नलिखित मंत्र से अर्घ्य देना चाहिए :

**सप्तर्षिदारज स्कंद स्वाहापति समुद्भव।**
**रुद्रार्यमाग्निम विभो गंगागर्भ नमोऽस्तुते।**
**प्रीयतां देव सेनानीः सम्पादयतु हृद्रतम्।।**

**(ब्राह्म पर्व 39/6)**

यह व्रत शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष, दोनों षष्ठियों को करना चाहिए। यदि किसी कारणवश दिन में उपवास न कर सकें, तो रात्रि व्रत भी उत्तम फल प्रदान करता है। इसके आगे इसी व्रत की महिमा का विस्तार से वर्णन करते हुए 46वें अध्याय में सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन ! सभी षष्ठियों में से भाद्रपद मास

की षष्ठी तिथि सर्वोत्तम पुण्यदायिनी, कल्याण प्रदायनी व मंगलदात्री है। यह तिथि कार्तिकेय को सर्वाधिक प्रिय है। इस तिथि को किया गया व्रत, तप, दान व स्नान अक्षय फलदायक होता है। यदि दक्षिण दिशा (कुमारिका क्षेत्र) में इस दिन कोई भगवान कार्तिकेय के दर्शन कर लेता है, तो वह ब्रह्म हत्या जैसे भयंकर पापों से मुक्त हो जाता है। अतः इस दिन मनुष्य को अवश्य कार्तिकेय का दर्शन करना चाहिए। इस दिन कार्तिकेय का पूजन मनोवांछित फल प्रदायक होता है। इस दिन चंदन, कपूर आदि से कार्तिकेय के पूजन से सेना में कार्यरत अधिकारियों या सेना से संबंधित लोगों को विशेष लाभ होता है और उच्च पद शीघ्र प्राप्त होता है। किसी भी युद्ध या संग्राम पर जाने से पूर्व इनका स्मरण करने से सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। इस तिथि को तेल का बिलकुल सेवन नहीं करना चाहिए, यह निषिद्ध है। दिन में व्रत रखकर रात्रि में भोजन कर लेना चाहिए। ऐसा करने से खोया यश, धन, बल व राज्य की पुनः प्राप्ति हो जाती है।

अध्याय 47 से 216वें तक भगवान सूर्य के माहात्म्य का जैसा व्यापक व विस्तृत विवरण इस पुराण में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण कुछ विद्वान् इसे सौर ग्रंथ की भी संज्ञा देते हैं। भगवान सूर्य का आविर्भाव सप्तमी तिथि को हुआ था, इसलिए उनके पूजन के लिए यह तिथि प्रशस्त मानी गई है। हिरण्यगर्भ रूपी अंड से जिसमें समष्टि प्राण थे तथा जहां से व्यष्टि प्राणों की उत्पत्ति हुई, वहीं पर सृजन की प्रक्रिया के समय भगवान सूर्य की स्थिति मानी गई है। इस अंड के साथ उत्पन्न होने और इस अंड में रहकर ही वृद्धि प्राप्त करने के कारण यह 'मार्तण्ड' के नाम से विख्यात हुए। दक्ष प्रजापति ने अपनी कन्या रूपा को इन्हें भार्या रूप में प्रदान किया और इनकी दो संतानों, यमुना व यम का जन्म हुआ। रूपा अधिक समय तक भगवान सूर्य का तेज सहन नहीं कर पाई और उन्होंने अपनी छाया से अपनी एक प्रतिमूर्ति उत्पन्न करके उसे भगवान सूर्य के समीप छोड़कर स्वयं उत्तर कुरु देश में तप करने के लिए प्रस्थान किया।

भगवान सूर्य से यह बात गोपनीय रखी गई और वह संज्ञा में ही रूपा का भाव ग्रहण करते रहे, जिससे कालांतर में उन्हें दो संतानें, शनि व ताप्ती की प्राप्ति हुई। स्वाभाविक रूप से छाया अपनी संतानों पर यम व यमुना की तुलना में अधिक वात्सल्य व मोह करती थी। एक दिन किसी बात पर यमुना और ताप्ती में विवाद हो गया और दोनों पारस्परिक शाप से मर्त्यलोक पर नदी रूपा हो गईं। ऐसे ही किसी अवसर पर छाया व यमन में परस्पर विवाद हो गया और छाया ने क्रुद्ध होकर यम को प्राण हिंसक कर्म करने का श्राप दे दिया। इस बीच विवाद सुनकर भगवान सूर्य भी आ गए और यम से कलह का कारण पूछा। इस पर यम ने श्राप की

बात बताते हुए यह कहा कि यह निश्चित रूप से मेरी माता नहीं है, क्योंकि कोई भी माता अपने पुत्र को श्राप नहीं देती। यह सुनकर सूर्य भगवान को भी संदेह हुआ और उन्होंने छाया से सत्य वृतांत बताने को कहा। छाया भयभीत हो गई और उसने सब वृतांत बता दिया। यह जानकर सूर्य देव अपनी भार्या की खोज में अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति के घर पहुंचे, जहां से उन्हें पता चला कि रूपा तो उत्तर कुरु में तप कर रही है, परंतु साथ ही दक्ष ने यह भी कहा कि तुम्हारा प्रचंड तेज रूपा से सहा नहीं जाता है। अतः तुम विश्वकर्मा से अपना रूप प्रशस्त करवा लो। इस पर भगवान सूर्य ने विश्वकर्मा से अपना संपूर्ण शरीर तक्षण कराकर सुंदर बनवा लिया, परंतु तक्षण-कर्म से सूर्य भगवान को बहुत पीड़ा होती थी, अतः विश्वकर्मा ने पैरों की अंगुलियों को छोड़ दिया। (यही कारण है कि सूर्य भगवान की किसी भी मूति में पैरों की अंगुलियां नहीं दिखाई जातीं और घुटनों से नीचे ऊंचे-ऊंचे पदस्त्राण पहना दिए जाते हैं)।

तक्षण से पीड़ित शरीर पर भगवान आदित्य ने तुरंत रक्त चंदन और करवीर (कनेर) के पुष्पों का लेप कराया, जिससे उनकी वेदना शांत हो गई। यही कारण है कि रक्त चंदन और करवीर (कनेर) के पुष्प भगवान सूर्य को अत्यंत प्रिय हैं और उनके पूजन में प्रयुक्त होते हैं। इसके पश्चात् भगवान सूर्य उत्तर कुरु में अपनी पत्नी से मिलने गए, जहां वह उन्हें सप्तमी तिथि को ही प्राप्त हुई थी। अतः सप्तमी तिथि भगवान भास्कर को अत्यंत प्रिय है। जो व्यक्ति पंचमी तिथि को एक समय भोजन करके षष्ठी को उपवास करता है और सप्तमी को दिन में उपवास करके विविध शाक-पदार्थों को भगवान सूर्य के लिए अर्पण करके ब्राह्मणों को देता है और रात्रि में मौन होकर भोजन करता है, उसे असीम पुण्य की प्राप्ति होती है।

कार्तिक मास से शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि से इस व्रत का प्रारंभ करना चाहिए और चार मास तक व्रत करके उसका पारण करना चाहिए। उद्यापन वाले दिन भगवान सूर्य को पंचगव्य से स्नान कराना चाहिए और केसर का चंदन, अगस्त्य के पुष्प, अपराजित नामक धूप व पायस का नैवेद्य अर्पण करना चाहिए। रक्त चंदन, कनेर के पुष्प, गुग्गुल की धूप, लड्डू, पायस का नैवेद्य, घृत, ताम्रपात्र पौराणिक ग्रंथ और पुराण ग्रंथ सूर्य भगवान को विशेष रूप से प्रिय हैं। अतः इन्हीं से उनका पूजन करना चाहिए। (पूजन के विस्तृत विवरण व विधि के लिए भविष्य पुराण के ब्राह्म पर्व का अध्याय 47 देखें।)

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण जी द्वारा साम्ब को सूर्यनारायण की पूजा विधि का विस्तार से बताए जाने का वर्णन है। इसी वर्णन में यह प्रसंग मिलता है कि दिन में सूर्य की पूजा विग्रह में अर्थात् मूर्ति में, परंतु रात्रि में अग्नि में करनी चाहिए।

प्रभात में पूर्वाभिमुख होकर सायंकाल में पश्चिमाभिमुख होकर और रात्रि में उत्तराभिमुख होकर पूजा करनी चाहिए। भगवान सूर्य के अत्यंत ही गूढ़ व गोपनीय मंत्र का रहस्य बताते हुए कृष्ण भगवान साम्ब से कहते हैं कि ॐ **खखोल्काय स्वाहा** इस सप्ताक्षर मूल मंत्र से सूर्यमंडल के मध्य षट्दल-कमल का ध्यान करके जो भी विधिपूर्वक विभिन्न उपचारों से उनका पूजन करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। विभिन्न रोगों यथा हृदय रोगों से मुक्ति मिल जाती है, धनहीन को धन की प्राप्ति होती है, पुत्रहीन को पुत्र की प्राप्ति होती है, विद्यार्थी को विद्या की प्राप्ति होती है, कन्या को उत्तम वर की प्राप्ति होती है और साधक चिरंजीवी होता है।

इसके पश्चात् द्वादश आदित्यों के नाम व रथ सप्तमी व्रत की महिमा का वर्णन है। यथा माघ मास की सप्तमी को **वरुण** नामक सूर्य की, फाल्गुन में **सूर्य** की, चैत्र में **वैशाख** सूर्य की, वैशाख में **धाता** की, ज्येष्ठ में **इंद्र** की, आषाढ़ में **रवि** की, श्रावण में **नभ** की, भाद्रपद में **यम** की, आश्विन में **पर्जन्य** की, कार्तिक में **त्वष्टा** की, मार्गशीर्ष में **मित्र** की और पौष मास में **विष्णु** नाम से भगवान सूर्य की पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् 55वें अध्याय में भगवान सूर्य के अभिषेक और उनकी रथयात्रा का वर्णन है (भगवान की रथयात्रा माघ शुक्ला अष्टमी को होती है)। इसके पश्चात् गोचर में दुष्ट ग्रह आ जाने पर उनकी शांति का विधान और तिल की महिमा है। स्वयं ब्रह्माजी इस अध्याय में कहते हैं कि अपनी जन्मराशि से दुष्ट स्थान में स्थित ग्रहों के कष्ट निवारण और उन्हें शांत करने के लिए तथा अपनी सुख व समृद्धि के लिए ग्रह-समिधाओं से हवन का प्रावधान है। सूर्य के लिए **अर्क** की, चंद्रमा के लिए **पलाश** की, मंगल के लिए **खदिर** की, बुध के लिए **अपामार्ग** की, बृहस्पति के लिए **पीपल** की, शुक्र के लिए **गूलर** की, शनि के लिए **शमी** की, राहु के लिए **दूर्वा** की, केतु के लिए **कुशा** की समिधा से हवन करना चाहिए। गौ, शंख, लाल बैल, सुवर्ण, वसन युगल, श्वेत अश्व, काली गौ, लौह पात्र और छाज—ये क्रमशः नौ ग्रहों की दक्षिणा हैं। गुड़ और भात, घी-मिश्रित खीर, हविष्यान्न, क्षीरान्न, दही-भात, घृत, तिल और उड़द के बने पकवान, गूदों वाला फल, चित्रवर्ण का भात एवं कांजी—ये क्रमशः नवग्रहों के भोजन हैं। जैसे शरीर पर कवच धारण कर लेने से बाणों के प्रहार नहीं लगते, वैसे ही ग्रहों की शांति करा लेने से कोई भी ग्रहजनित दुःख, पीड़ा व कष्ट नहीं रहता। **'आ कृष्णेन'** (यजु. 33/43), **इमं देवा.** (यजु. 9/40) इत्यादि नवग्रहों के अलग-अलग मंत्रों से एक-एक ग्रह के नाम से समिधा, घृत, शहद और दही की एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियां दें। दुष्ट ग्रहों की शांति के लिए ब्राह्मणों को तिल अवश्य प्रदान करने चाहिए तथा घी के साथ तिलों का हवन करना चाहिए।

64वें अध्याय में भगवान सूर्य द्वारा पिण्डी को काम्य व्रतों के बारे में बताया गया है। (काम्य व्रत अर्थात् ऐसा व्रत, जो किसी कामना की पूर्ति के लिए किया जाता है)। काम्य व्रत में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपवास फल-सप्तमी का है। इस तिथि को किया गया व्रत अक्षय पुण्यदायक व पापों के समूह को नष्ट करने वाला होता है तथा सूर्य भगवान की असीम अनुकंपा प्राप्त होती है। भाद्रपद मास की शुक्ला चतुर्थी को अर्कार्चित व्रत करके पंचमी को केवल एक बार भोजन करें। षष्ठी को जितेन्द्रिय व जितक्रोध होकर पूर्ण उपवास करें और रात्रि को भगवान सूर्य के चरणों में पृथ्वी पर शयन करें। सप्तमी को खजूर, नारियल, आम, मातुलुंग, नैवेद्य का भोग लगाकर ब्राह्मणों को दें और स्वयं प्रसाद ग्रहण करें। इस प्रकार एक वर्ष सप्तमी का व्रत करके अंत में उद्यापन करना चाहिए। गोमूत्र, गोमय (गोबर), गोदुग्ध, दही, घी, कुश का जल, श्वेत मृत्तिका, तिल, सरसों का उबटन, दूर्वा, गौ के सींग का जल, चमेली के फूल के रस—इन्हीं से ही स्नान व प्राशन करना चाहिए। इस व्रत को करने से दरिद्रता नष्ट हो जाती है; दुखों का नाश हो जाता है, हृदय रोग व आंखों के रोग से विशेष रूप से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। **सप्तमी के व्रत का विशेष रहस्य यह है कि इस दिन 'नीला वस्त्र' कदापि धारण नहीं करना चाहिए।** अन्यथा सभी सत्कर्म व व्रत निष्फल हो जाते हैं और मनुष्य पापग्रस्त हो जाता है तथा दो चांद्रायण-व्रत करने से ही शुद्ध हो पाता है।

इसी संदर्भ में ब्रह्मा जी ने पुष्प व तेल पूजन के गोपनीय रहस्यों को भी अनावृत किया है। मल्लिका या बेला का फूल चढ़ाने से उत्तम भोगों की प्राप्ति होती है। श्वेत कमल अर्पण करने से सौभाग्य, कुटज पुष्प से अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मंदार पुष्प अर्पित करने से श्वेत कुष्ठ रोग का नाश होता है। बिल्व पत्र पूजन से विपुल संपदा प्राप्त होती है। वकुल या मौलसिरी पुष्प अर्पित करने से रूपवती कन्या का लाभ होता है। पलाश पुष्प से अरिष्ट शांति होती है और अगस्त्य पुष्प के चढ़ाने से सूर्य की विशेष कृपा प्राप्त होती है। राज्य अधिकारियों से लाभ व उच्च पद की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार सूर्य मंदिर में घृत का दीपक प्रज्ज्वलित करने से नेत्र रोग नहीं होता, महुए के तेल का दीपक जलाने से सौभाग्य, सुमंगल व प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त होती है। कड़ुए तेल का दीपक जलाने से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है व न्यायालय व मुकदमे में जीत होती है।

71वें अध्याय में ब्रह्मा जी द्वारा कहा गया भगवान सूर्य का विशिष्ट मनोवांछित फलदायक स्तोत्र है, जिसके स्तवन से सूर्य की असीम व अद्वैत अनुकंपा प्राप्त होती है।

इसके पश्चात् विभिन्न तिथियों के स्वामियों का तथा सूर्य भगवान से संबंधित अन्य व्रत यथा पुत्रद, जय, जयंतसंज्ञक, विजय, आदित्याभिमुख, रोगहा व महाश्वेतार आदि का वर्णन है।

127वें एवं 128वें अध्याय में साम्ब द्वारा भगवान सूर्य की आराधना व सूर्यस्तवराज की कथा है, जो अत्यंत पुण्यदायक मानी गई है। 163वें अध्याय में सूर्य भगवान को स्नान कराने के लिए तीन प्रकार के स्नान का वर्णन है : एक सौ पल प्रमाण (लगभग 6 लीटर) जल, पंचामृत आदि से कराया गया स्नान केवल **स्नान** कहलाता है। केवल 25 पल (लगभग 1½ लीटर) पंचामृत से कराया गया स्नान **अभंग** स्नान कहलाता है और दो हजार पल या (124 लीटर) जल पंचामृत से कराया गया स्नान **महास्नान** कहलाता है। 175 से 180वें अध्याय में गरुड़ जी व आरुणिक के संवाद के माध्यम से सूर्य भगवान का शांतिक कर्म पाठ है, जिसके विधिपूर्वक करने से अपमृत्यु तक टल जाती है। इसके पश्चात् मारीच सप्तमी, बिम्ब सप्तमी और अर्कसंपुटिका-सप्तमी व्रत के माहात्म्य के साथ ब्राह्मण पर्व का समापन हो जाता है।

## मध्यम पर्व–प्रथम भाग

21 अध्यायों के इस भाग में गृहस्थाश्रम की महिमा, सृष्टि तथा सात ऊर्ध्व और सात पाताल लोकों का वर्णन, भूगोल व ज्योतिश्चक्र, ब्राह्मणों की महिमा और उनके 26 दोष व माता, पिता एवं गुरु की महत्ता का वर्णन है। इसके पश्चात् पूर्त कर्मों का वर्णन है तथा विभिन्न वृक्षों को लगाने से मिलने वाले फल का वर्णन है। यथा, अशोक का वृक्ष लगाने से अपने नामानुरूप लगाने वाले को कभी शोक नहीं होता, प्लक्ष या पाकड़ का वृक्ष लगाने से उत्तम स्त्री की प्राप्ति होती है। बिल्व का वृक्ष लगाने से दीर्घ आयु होती है। जामुन का वृक्ष लगाने से धन में वृद्धि होती है। तेंदू का वृक्ष से कुलवृद्धि और अनार से स्त्री का सुख प्राप्त होता है। आम का वृक्ष लगाने से मनोवांछित इच्छा की पूर्ति और वट वृक्ष लगाने से मोक्ष प्राप्त होता है। कदंब का वृक्ष कृष्ण व ललिता त्रिपुरसुंदरी को अत्यंत प्रिय है और इसके लगाने से निश्चित रूप से विपुल व अथाह लक्ष्मी का आकस्मिक लाभ होता है। इसका एक वृक्ष जीवन में अवश्य लगाना चाहिए। तिंतिडी या इमली का वृक्ष लगाने से हर प्रकार से हानि होती है, अतः इसका आरोपण नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार कटहल व केवांच का वृक्ष नहीं लगाना चाहिए, अन्यथा संतति का क्षय होता है, वृक्ष आरोपण के लिए वैशाख मास सर्वश्रेष्ठ और ज्येष्ठ अशुभ माना गया है। इसी प्रकार आषाढ़, श्रावण तथा भाद्रपद भी श्रेष्ठ मास हैं, परंतु आश्विन व कार्तिक में

वृक्षारोपण विनाशकारी माना गया है। आम के पौधे की वृद्धि के लिए यदि नारियल के जल में शहद मिलाकर इसे सींचा जाए, तो आश्चर्यजनक फल लगते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ निषिद्ध बातों का भी वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं कि तुलसी वन में कोई **यज्ञ कर्म** नहीं करना चाहिए तथा शिवलिंग की प्रतिष्ठा में अन्य देवों की स्थापना नहीं करनी चाहिए। इसके पश्चात् देव-प्रतिमा निर्माण की विधि, कुंड निर्माण की विधि और उनके संस्कारों की विधि का वर्णन है। यहां यह बिंदु ध्यान देने योग्य है कि यज्ञ कुंड दस प्रकार के होते हैं : 1. वर्गाकार, 2. वृत्ताकार, 3. पद्माकार, 4. अर्धचन्द्राकार, 5. योनि की आकृति के, 6. चंद्राकार, 7. पंचकोणीय, 8. सप्तकोणीय, 9. अष्टकोणीय एवं 10. नौ कोणों वाले।

इसके पश्चात् अग्नि पूजन की विधि और यज्ञ पात्रों के स्वरूप का वर्णन है तथा पूर्णाहुति की विधि पर विशेष प्रकाश डाला गया है। पूर्णाहुति के संबंध में ध्यान रखने योग्य प्रमुख बात यह है कि पूर्णाहुति सदैव खड़े होकर संपन्न करनी चाहिए, कभी भी बैठकर नहीं।

## मध्यम पर्व–द्वितीय भाग

21 अध्यायों के इस द्वितीय भाग में मुख्य रूप से यज्ञादि कर्मों से संबंधित विषयों का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। मलमास, तिथि निर्णय, वास्तु मंडल निर्माण व पूजन, प्रतिष्ठा, मुहूर्त आदि के संबंध में भी उपयोगी विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस भाग के प्रारंभ में विभिन्न पक्षियों के दर्शन का फल भी बताया गया है, जो शकुन शास्त्र की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्रौञ्च पक्षी के दर्शन मात्र से सैकड़ों जन्मों के पापों का क्षय हो जाता है। मोर, बैल, सिंह, कपि कहीं भी देखने पर श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने से अनेक अमंगलों का नाश व पापों का शमन होता है।

कलश स्थापना के बारे में विस्तार से बताते हुए सूतजी कहते हैं कि कलश में केवल जल भर देने मात्र से वह मंगल कलश नहीं हो जाता और सिद्धि भी नहीं देता। इसमें अक्षत (बिना टूटे चावल) और पुष्पों से देवताओं का आवाहन करके पूजन करना चाहिए। वट, अश्वत्थ, धव-वृक्ष और बिल्व-वृक्ष के पल्लवों को कलश के ऊपर रखें। कलश सदैव स्वस्तिक बनाकर उसके ऊपर निर्दिष्ट विधि से स्थापित करना चाहिए। इसके पश्चात् चार प्रकार के मासों का वर्णन प्रस्तुत है :

1. **चान्द्र मास** : शुक्ल पक्षीय प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक का मास चांद्र मास कहलाता है।
2. **सौर मास** : सूर्य की एक राशि में सक्रांति से दूसरी संक्रांति में प्रवेश करने का समय सौर मास कहलाता है।

**3. नक्षत्र मास** : अश्विनी नक्षत्र से लेकर रेवती पर्यंत नक्षत्र मास होता है।

**4. सावन मास** : पूरे तीस दिन का या किसी तिथि को लेकर तीस दिन बाद आने वाली तिथि तक का समय सावन मास होता है।

प्रायश्चित्त, अन्नप्राशन, मंत्रोपासना, राजा को कर देना, यज्ञ में व दिनों की गणना में सावन मास ग्रहण किया जाता है।

विवाह संस्कार, यज्ञ, व्रत, स्नान आदि सत्कर्मों में सौर मास ग्रहण किया जाता है। अष्टका श्राद्ध, साधारण श्राद्ध आदि पितृकर्मों के लिए चान्द्रमास ग्राह्य है, सोम या पितृ गणों के कार्य में नक्षत्र मास प्रशस्त माना गया है।

सूर्य व चंद्रमा दोनों मिलकर तिथियों का योग करते हैं और जिस मास में पूर्णिमा का योग न हो तथा तीस दिनों में संक्रमण न हो, वह मलमास अधिक मास या पुरुषोत्तम मास कहलाता है। इसमें सूर्य की संक्रांति नहीं होती। प्रायः यह ढाई वर्ष या बत्तीस मास के अंतराल के पश्चात् आता है। इस मास में यज्ञ व विवाह आदि शुभ कार्य नहीं होते, परंतु प्रेम-क्रियाएं व सपिंडन क्रिया, तीर्थ स्नान, देव दर्शन, व्रत-उपवास, पुंसवन और पुत्र आदि का मुख दर्शन किया जा सकता है। व्रतारंभ, चूड़ाकर्म, उपनयन, मंत्रोपासना, विवाह, नूतन गृह निर्माण, गृह प्रवेश, कन्या का द्विरागमन (गौना) आदि का निषेध है।

इसके पश्चात् तिथियों के वर्णन में सूतजी ने कई तिथियों में विशेष फल प्राप्ति की सिद्धि का रहस्य बताया है। यथा : शुक्ल पक्ष में द्वितीया तिथि को यदि बृहस्पतिवार हो, तो उस दिन अग्निदेव का पूजन तथा नक्त व्रत करने से ऐश्वर्य, इच्छापूर्ति व धन लाभ होता है। **आषाढ़ व श्रावण मास में मिथुन व कर्क राशि के सूर्य में द्वितीया तिथि को उपवास करके विष्णु पूजन करने से स्त्री जल्दी विधवा नहीं होती।** इसी प्रकार वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया में गंगा स्नान से पाप का पूर्णतः क्षय हो जाता है। वैशाख मास की तृतीया दो और स्वाति नक्षत्र का योग हो या माघ मास की तृतीया हो और रोहिणी नक्षत्र का योग हो, तो ऐसे दिन गुड़ व कर्पूर से युक्त दान करने से सभी अमंगलों व अशुभों का शमन हो जाता है। चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी यदि शनिवार की तथा शतभिषा नक्षत्र के योग के साथ पड़े, तो गंगा स्नान करने से सैकड़ों सूर्यग्रहणों में किए स्नान का फल प्राप्त होता है।

इसके पश्चात् किस मास की पूर्णिमा तिथि किस तीर्थ स्थल पर विशेष फल देने वाली होती है, इसका विवरण प्रस्तुत किया गया है। **(प्रत्येक मास की पूर्णिमा तिथि उस मास के नाम के नक्षत्र पर ही रखी गई थी, परंतु कालांतर में यह नक्षत्र विशेष पूर्णिमा से एक या दो दिन के अंतर के पश्चात् आने लगा है, परंतु**

महापूर्णिमा तभी होती है, जब मास के अनुसार नक्षत्र हों, जैसे चैत्र मास की पूर्णिमा चित्रा नक्षत्र से युक्त हो, ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा ज्येष्ठ नक्षत्र से युक्त हो) आदि।

| महापूर्णिमा | क्षेत्र |
|---|---|
| 1. महाचैत्री | शालग्राम |
| 2. महावैशाखी | हरिद्वार |
| 3. महाज्येष्ठी | पुरुषोत्तम क्षेत्र (उड़ीसा में भगवान जगन्नाथ का क्षेत्र) |
| 4. महाषाढ़ी | शृंखल क्षेत्र |
| 5. महाश्रावणी | केदारनाथ (उत्तराखंड) |
| 6. महाभाद्री | बदरिका क्षेत्र (बदरीनाथ) |
| 7. महाकार्तिकी | पुष्कर |
| 8. महामार्गशीर्षी | अयोध्या जी |
| 9. महापौषी | अयोध्या जी |
| 10. महामाघी | प्रयाग |
| 11. महाफाल्गुनी | नैमिषारण्य। |

आश्विन मास की पूर्णिमा को कौमुदी पूर्णिमा भी कहते हैं और इस दिन चंद्रोदय काल में किया गया लक्ष्मीपूजन विशेष फलदायक होता है। इसके पश्चात् 19 से 21वें अध्याय में प्रतिष्ठा मुहूर्त का वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं कि देवमूर्ति की प्रतिष्ठा तभी करनी चाहिए, जब तक भगवान विष्णु शयन नहीं करते। (भगवान विष्णु देवशयन एकादशी से देवोत्थान एकादशी तक शयन करते हैं।)

## मध्यम पर्व–तृतीय भाग

20 अध्यायों के इस विभाग में भी विभिन्न प्रकार के उद्यानों, गोचर भूमियों, अश्वत्थ, पुष्करिणी, जलाशय, तुलसी जी, मण्डप आदि की प्रतिष्ठा की शास्त्रीय विधि दी गई है। तुलसी जी की प्रतिष्ठा के बारे में सूतजी का कथन विशेष स्मरणीय है कि इनकी स्थापना ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में विधिपूर्वक एकादशी को अवश्य करनी चाहिए।

## प्रतिसर्ग पर्व

पुराणों के पंच लक्षणों में से एक प्रतिसर्ग की सार्थकता वास्तव में भविष्य पुराण के भविष्य नाम की सार्थकता को चरितार्थ करती है। भविष्य पुराण का प्रतिसर्ग पर्व आधुनिक इतिहास का मूलाधार है। इस पर्व में घटनाओं का वर्णन क्रमपूर्वक किया गया है, जहां कालमान कल्प व मन्वन्तर हैं, वर्ष व तिथियां या तारीख

नहीं, क्योंकि भारतीय दृष्टि में काल का प्रवाह अनंत है। अरबी भाषा में इतिहास को तवारीख कहते हैं, क्योंकि वहां घटनाओं का उल्लेख तिथि व वर्ष के क्रम पूर्वक हुआ है। अतः वहां तारीख का आधार होने के कारण इतिहास तवारीख कहलाता है और अंग्रेज़ी व अन्य पाश्चात्य भाषाओं में क्रम पर अधिक ध्यान होने के कारण इतिहास को क्रानिकल्स भी कहा जाता है। पुराण का काल खंडित काल की अवधि विशेष को न लेकर समय की अनंत गति में प्रवाहित है, जहां एक सृष्टि के बाद दूसरी सृष्टि में कल्प, महाकल्प लगे हैं :

**इहां बसत मोहि सुनु खग ईसा**
**बीते कलप सात अरु बीसा**

भविष्य पुराण के इस पर्व की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यहां पर ईसा मसीह के जन्म, मुहम्मद साहब के अवतरण, महारानी विक्टोरिया के राज्यारोहण आदि सभी घटनाओं को स्वयं में समेटे है। इस पर्व की एक अन्य प्रमुख विशिष्टता सत्यनारायण व्रत की कथा है, जो अत्यंत लोकप्रिय, पुण्यप्रदायिनी व कलिकाल में सर्वसुलभ है। (वैसे यह कथा स्कन्द पुराण के रेवा खंड में भी प्राप्त होती है।)

प्रतिसर्ग पर्व के **प्रथम खंड** में सर्वप्रथम सतयुग के राजवंश का वर्णन है और उसके पश्चात् त्रेतायुग के सूर्य व चंद्र राजवंशों का वर्णन है। इसके पश्चात् क्रमानुसार द्वापर युग के चंद्रवंशीय राजाओं का वृतांत प्राप्त होता है। फिर कलिकाल में होने वाले म्लेच्छ राजाओं व उनकी भाषाओं का विवरण है। इस अध्याय में 'नूह' की प्रलय गाथा का भी वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् मगध के राजवंश राजा नंद, बौद्ध राजाओं तथा चौहान व परमार राजवंशों का वर्णन है।

इस पर्व के **द्वितीय खंड** में विभिन्न कथाओं के माध्यम से मानव जीवन के आदर्श मूल्यों को स्थापित करने की प्रेरणा दी गई है। वस्तुतः ये कथाएं बैताल व राजा के मध्य संवाद के रूप में वर्णित हैं, जो जन-सामान्य में विक्रम-बैताल या बैताल-पच्चीसी के नाम से प्रसिद्ध है। यथा, राजा रूपसेन तथा वीरवर की कथा के माध्यम से स्वामी और सेवक की परस्पर भक्ति का आदर्श स्थापित किया गया है। त्रिलोक सुंदरी की कथा के माध्यम से समान वर्ण में विवाह संबंध का औचित्य सिद्ध किया गया है। राजा धर्म वल्लभ और मंत्री सत्य प्रकाश की कथा के माध्यम से विषयी राजा को राज्य के विनाश का कारण बताया गया है। हरिस्वामी की कथा के माध्यम से इस नियम को प्रतिपादित किया गया है कि किए गए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। जीमूतवाहन व शंखचूड़ की कथा के माध्यम से दान

की महत्ता को स्थापित किया गया है। गुणाकर की कथा के माध्यम से साधना में मनोयोग की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। मंझले पुत्र की कथा द्वारा बैताल संतान में सम-भाव रखने की शिक्षा देता है। चार मूर्खों की कथा किसी भी विषय को पढ़ने के साथ समझने की भी प्रेरणा देने का संदेश देती है। (इन कथाओं में से कुछ विशिष्ट व अत्यंत महत्त्वपूर्ण कथाएं 'पुराणों की कथाएं' अध्याय में अवश्य देखें।)

प्रतिसर्ग पर्व के द्वितीय खंड का एक महत्त्वपूर्ण भाग है 'श्री सत्यनारायण व्रत कथा'। 23वें अध्याय से प्रारंभ होकर 29वें अध्याय तक चलने वाली यह कथा अत्यंत लोकप्रिय, पुण्यदायक व मंगलकारी है। श्रीमद्भावगत में इस कथा के बारे में बड़े ही सुंदर शब्दों में परमेश्वर रूपी त्रिकालबाधित सत्य को ही ज्ञेय, ध्येय एवं उपास्य रूप में साक्षात्कार करने की प्रेरणा दी गई है।

**सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।**
**सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।**

(10/2/26)

कथा का प्रारंभ 'एकदा नैमिषारण्ये' की प्रसिद्ध उक्ति द्वारा होता है, जिसमें व्यास जी कहते हैं कि एक बार शौनिक आदि ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि इस संसार में चारों युगों में कौन पूजनीय और सेवनीय है तथा कौन सबके अभीष्ट मनोरथों को पूर्ण करने वाला है ? कलिकाल में दैहिक, दैविक व भौतिक पीड़ाओं से दुःखी मानव किसकी आराधना से अनायास ही अपनी मंगलमयी कामना को प्राप्त कर सकता है ? इस पर सूतजी ने बड़ी ही श्रद्धा व भाव के साथ भगवान सत्यनारायण की प्रार्थना की–

**नवाम्बोजनेत्रं रमाकेलिपात्रं**
**चतुर्बाहुचामीकरं चारुगात्राम्।**
**जगत्त्राणहेतु रिपौ धूम्रकेतुं**
**सदा सत्यनारायणं स्तौनि देवम्।**

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्ग पर्व 2/24/4)

अर्थात् पूर्ण प्रस्फुटित व प्रफुल्लित नवीन कमल के समान नेत्रवाले, भगवती लक्ष्मी के साथ क्रीड़ा करने वाले, चतुर्भुज रूप, स्वर्ण की क्रांति के सदृश चारु शरीर वाले, जगत की रक्षा करने वाले तथा शत्रुओं के लिए धूमकेतु स्वरूप भगवान श्री सत्यनारायण की मैं स्तुति करता हूं। इसके पश्चात् प्रातःकाल शुद्ध व पवित्र होकर हाथ में तुलसी मंजरी लेकर इस अध्याय के 26वें एवं 27वें श्लोक के द्वारा भगवान विष्णु का ध्यान करें। इसके पश्चात् सायंकाल में विधिपूर्वक पांच कलश

रखकर भगवान का पूजन करना चाहिए। भगवान शालग्राम को पुरुषसूक्त द्वारा पंचामृत से स्नान कराना चाहिए और निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए जाप करना चाहिए। इसके पश्चात् इस मंत्र का यथाशक्ति जाप करके 108 बार हवन तथा उसके दशांश से तर्पण और उसके दशांश से मार्जन करने के पश्चात् छः अध्यायों की कथा सुननी चाहिए—

**नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि**
**चतुःपदार्थदात्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः।** (2/24/30)

इसके पश्चात् **द्वितीय अध्याय** में शतानंद ब्राह्मण की कथा है तथा तृतीय अध्याय में राजा चंद्रचूड़ का आख्यान है। चौथे अध्याय में लकड़हारे की प्रसिद्ध कथा है और पंचम अध्याय में साधु वणिक और उसकी जामाता की कथा है। लीलावती और कलावती की कथा के साथ छठे अध्याय में कथा विश्राम लेती है।

भविष्य पुराण को भारतीय धर्म व संस्कृति का विश्वकोश कहना वस्तुतः किसी प्रकार की भी अतिशयोक्ति नहीं है, क्योंकि मार्कण्डेय पुराण के अतिरिक्त यही एकमात्र पुराण है, जिसमें दुर्गा सप्तशती के तीनों चरित्रों के माहात्म्य का वर्णन है। आदिचरित्र में व्याधकर्मों की कथा है, जबकि मध्यमचरित्र में कात्यायन तथा मगध के राजा महानंद की कथा है तथा उत्तरचरित्र के प्रसंग में योगाचार्य महर्षि पतंजलि द्वारा विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर सरस्वती आराधना व कात्यायन को शास्त्रार्थ में पराजित करने की कथा है।

प्रतिसर्ग पर्व का **तीसरा खंड** भारत के लगभग 1000 ई. के पश्चात् के इतिहास पर प्रकाश डालता है। इसमें ईसामसीह के प्रादुर्भाव की गाथा का भी वर्णन मिलता है, जिसमें कहा गया है कि शकाधीश शालिवाहन से ईसामसीह का हिमालय पर वार्त्तालाप हुआ था। धर्म विषयक विषयों पर चर्चा हुई थी (हाल ही में एक पुस्तक Jesus lived in India प्रकाशित हुई है, जिसमें प्रभु यीशु के भारत भ्रमण को ऐतिहासिक व पुरातत्वीय साक्ष्यों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया गया है)। इस खंड में आल्हा-ऊदल के प्रसिद्ध कथानक का वर्णन है, जिसमें भगवान शिव, भगवान कृष्ण से कहते हैं कि राजा धृतराष्ट्र के अंश से अजयमेरु (अजमेर) में पृथ्वीराज चौहान जन्म लेगा तथा पृथ्वीराज की कन्या बेला में द्रौपदी का अंश होगी। इसके पश्चात् शालिवाहन वंश के ही एक अन्य राजा भोजराज द्वारा मरुस्थल में विद्यमान महादेव जी (मक्केश्वर लिंग=मक्का) के दर्शन का वर्णन है, जहां महामय (मुहम्मद) नामक व्यक्ति से भी उनकी भेंट हुई। इसके पश्चात् पृथ्वीराज चौहान ने वीरगति प्राप्ति की तथा कुतुकोद्दीन (कुतुबुद्दीन ऐबक) के राज्यारोहण का प्रसंग भी आता है।

## उत्तर पर्व

136 अध्यायों के इस अंतिम पर्व के प्रथम दो अध्यायों में भुवनकोश का वर्णन है तथा तृतीय अध्याय में नारद जी को विष्णु माया द्वारा मोहित होते हुए दिखाया गया है। अष्टम अध्याय में चित्रलेखा के चरित्र के माध्यम से संवत्सर प्रतिपदा के तिलक व्रत का माहात्म्य वर्णित है, जिसको मस्तक पर धारण करने से भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह, डाकिनी व शत्रुओं का प्रकोप समाप्त हो जाता है। इस तिलक व्रत की विधि बताते हुए भगवान कृष्ण कहते हैं कि चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को पवित्र नदी में स्नान करके देवता तथा पितरों को तर्पण करें और घर आकर आटे की पुरुषाकार संवत्सर की मूर्ति बनाकर चंदन, पुष्प, धूप, दीप व नैवेद्य से उसकी पूजा करें। यजुर्वेद के निम्नलिखित मंत्र से संवत्सर की प्रार्थना करें और सुखपूर्वक वर्ष व्यतीत होने का अनुग्रह करें। उसी दिन से आरम्भ कर ललाट को नित्य चंदन से अलंकृत करें तथा इसका पालन करें।

**'संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषस्ते कल्पन्ता महोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पनतामृतवस्ते कल्पन्तां संवत्सरस्ते कल्पताम्। प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवः सीद।**

**(यजुर्वेद 26/45)**

नवम् एवं दशम् अध्याय में अशोक व्रत और करवीर व्रत के माहात्म्य का वर्णन है। अशोक व्रत आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को किया जाता है और करवीर (कनेर) वृक्ष का पूजन ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को किया जाता है। इसके पश्चात् ग्यारहवें अध्याय में बहुत ही जनोपयोगी परंतु गुह्य व गोपनीय कोकिला (कोयल) व्रत का विधान है, जिससे पत्नी का पति के साथ विशुद्ध प्रेम बना रहता है। यह व्रत आषाढ़ मास की पूर्णिमा को सायंकाल से प्रारम्भ होकर श्रावण मास भर चलता है और तिल से बनी कोयल के पूजन से इसका समापन होता है। इसी प्रकार स्त्रियों को सौभाग्य प्रदान करने वाले अन्य व्रतों में से फाल्गुन शुक्ल पक्ष की तृतीया को किया जाने वाला प्रसिद्ध मधूक तृतीया व्रत है, जिसे करने वाली स्त्री वैधव्य को प्राप्त नहीं होती। इसके पश्चात् विभिन्न व्रत यथा हरकाली व्रत, ललिता तृतीया, रम्या तृतीया, अवियोग तृतीया, रमा तृतीया आदि कल्याणकारी व्रतों का वर्णन है। इस पर्व में विभिन्न व्रतों की इतनी विस्तृत सूची उपलब्ध होती है कि यदि इस पर्व को व्रत कोष कहा जाए, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अध्याय 24 से 107 तक लगभग 70 प्रकार के विभिन्न व्रतों के प्रसंग व माहात्म्य यहां प्राप्त होते हैं। इस पर्व का 114वां अध्याय शनि व्रत व शनि

शमन तथा शनि ग्रह की पीड़ा से निवारण के लिए अत्यंत प्रभावी व फलदायक माना गया है। इस अध्याय में नारद जी व पिप्पलाद की कथा के माध्यम से यह बताया गया है कि शनिवार को जो भी 'पिप्पलाद' इस नाम का स्मरण करेंगे या भक्तिभाव से इस नाम का पूजन करेंगे, उन्हें शनि पीड़ित नहीं करेगा।

इसके अतिरिक्त शनि ग्रहजन्य पीड़ा के लिए शनिवार को स्वयं शरीर में तेल लगाना चाहिए तथा शनि की लौह प्रतिमा बनाकर तेलयुक्त लौह पात्र में रखकर एक वर्ष तक प्रतिदिन शनिवार को उसका पूजन करके कृष्ण पुष्प, दो कृष्ण वस्त्र, काली गाय, काला कम्बल, तिल का तेल आदि का दान करना चाहिए। शनि भगवान के पूजन में इस मंत्र का प्रयोग करना चाहिए :

**शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।**
**शं योरभि स्त्रवन्तु नः**

(यजुर्वेद 36/12)

इसके पश्चात् राजा नल को शनिदेव द्वारा स्वप्न में प्रदत्त प्रार्थना का उल्लेख है, जो सर्वकामप्रद व शनि पीड़ा निवारक है।

**क्रोउं नीलञ्जप्रख्यं नीलवर्णसमस्त्रजम्।**
**छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम्।।**
**नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय**
**नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय।**
**श्रुत्वा रहस्यं भवकामदश्च।**
**फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र।।**
**नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्देहाय वै नमः।**
**शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने।।**
**यः राभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवाम्यहम्।**
**मदीयं तु मयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति।।**

**(उत्तर पर्व 114/39-42)**

ब्रह्मा जी का कहना है कि जो भी व्यक्ति शनिवार को एक वर्ष तक इस व्रत को करता है और विधिपूर्वक उद्यापन करता है, उसे किसी भी प्रकार की शनि पीड़ा या साढ़ेसाती अथवा ढैया का कष्ट नहीं होता। इसके पश्चात् भद्रा का पौराणिक व ज्योतिषीय महत्त्व रेखांकित किया गया है और भद्रा के 12 नामों का उल्लेख है, जो रोगमुक्ति, ऋणमुक्ति और कार्यसिद्धि प्रदायक है। अंत में प्रकीर्ण व्रत, रुद्र स्नान, ग्रहण स्नान व माघस्नान के माहात्म्य के पश्चात् फाल्गुन पूर्णिमोत्सव के वर्णन के साथ यह पुराण विश्राम लेता है।

## 10. ब्रह्मवैवर्त पुराण

ब्रह्मवैवर्त मुख्यतः एक वैष्णव पुराण है, जिसके प्रमुख प्रतिपाद्य देवता विष्णु अवतार भगवान श्रीकृष्ण हैं। ब्रह्मवैवर्त शब्द का अर्थ है : ब्रह्मणो विवर्तः (परिणामः) अर्थात् ब्रह्म का विवर्त या परिणाम। ब्रह्म का आद्य विवर्त तो प्रकृति ही है, अतः प्रकृति के भिन्न-भिन्न परिणामों का जहां प्रतिपादन हो, वही पुराण ब्रह्मवैवर्त कहलाता है। इस पुराण में 218 अध्याय व चार खंड हैं। 1. ब्रह्म खंड, 2. प्रकृति खंड, 3. गणेश खंड और 4. कृष्ण जन्म खंड।

ब्रह्म खंड में भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र की विविधि लीलाओं का वर्णन है। आयुर्वेद से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएं भी इस खंड में संकलित हैं। प्रकृति खंड में देवियों के विभिन्न चरित्रों की चर्चा है, जिसमें प्रमुखतः सरस्वती जी की पूजा का विधान, उनका कवच, गंगाजी का उत्पत्ति प्रसंग, तुलसी जी का नामाष्टक व स्तवन तथा भगवती स्वाहा व स्वधा का उपाख्यान तथा विभिन्न व विशिष्ट सद्यः फलदायक स्तोत्र हैं। कृष्ण भगवान के तत्त्व का निरूपण हो और रासरासेश्वरी राधा जी की चर्चा न हो, ऐसा भला कैसे संभव हो सकता है, अतः इस खंड में राधा जी के प्रादुर्भाव की गाथा और उनकी पूजा-परंपरा का परिचय है। इस स्वप्न की प्रसिद्धि का एक अन्य प्रमुख कारण दुर्गाजी के सोलह नामों की विशद, गंभीर, गूढ़ व रहस्यात्मक व्याख्या है।

गणपति खंड में गणेश जी के जन्म की चर्चा तथा पुण्यक व्रत की महिमा, विष्णुकृत गणेश जी का स्तवन, दशाक्षरी विद्या व दुर्गा कवच का वर्णन है। श्रीकृष्ण जन्म खंड भगवान के जन्म व उनकी लीलाओं का जैसा चित्रण यहां मिलता है, वैसा श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

### ब्रह्म खंड

29 अध्यायों के इस खंड में अन्य पुराणों से थोड़ा भिन्न सृष्टिक्रम का संदर्भ प्राप्त होता है। इस खंड में श्रीकृष्ण भगवान द्वारा सृष्टि का प्रारंभ माना गया है और उन्हीं के शरीर के विभिन्न भागों से क्रमशः नारायण, महादेव, ब्रह्मा, धर्म, सरस्वती, महालक्ष्मी और दुर्गा के प्रादुर्भाव की कथा का वर्णन है।

पंचम अध्याय में श्रीकृष्ण के वाम भाग से श्री राधा जी के प्रादुर्भाव की अद्भुत कथा मिलती है। राधा जी के प्राकट्य के पश्चात् राधा के रोमकूपों से गोपांगनाओं के प्राकट्य व श्रीकृष्ण के रोमकूपों से गौओं के प्राकट्य का मनोहारी वर्णन है। इसके पश्चात् उपबृंहण गन्धर्व व उसकी पत्नी मालावती की कथा के संदर्भ में ब्राह्मण रूप विष्णु जी द्वारा आयुर्वेद के विविध रहस्यों का विस्तार से वर्णन है। यद्यपि

काल के प्रवाह में आयुर्वेद का स्वर्णिम काल तो अब समाप्त हो गया है, परंतु जब यह ज्ञान अपनी पूर्ण पल्लवित अवस्था में था, उस काल की चर्चा की एक झलक इस अध्याय में मिलती है। आयुर्वेद के ज्ञान की परम्परा का प्रारंभ भगवान सूर्य देव से माना गया है। भगवान सूर्य द्वारा संकलित आयुर्वेद की स्वतंत्र संहिता **'आयुर्वेद संहिता'** के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके पश्चात् धन्वन्तरि ने **'चिकित्सा तत्वविज्ञान'** नामक ग्रंथ का निर्माण किया। फिर दिवोसान ने **'चिकित्सा दर्पण'** तथा काशिराज ने **'दिव्य चिकित्सा कौमुदी'** तथा अश्विनीकुमार ने **'चिकित्सा सारतत्व'** नामक ग्रंथ की रचना की। इसके पश्चात् इसी परंपरा को नकुल ने **'वैद्यक सर्वस्व'** तथा सहदेव ने **'व्याधि सिंधुविमर्दन'** तथा यमराज ने **'ज्ञानार्णव'** के द्वारा प्रवाहित रखा। इसके पश्चात् भगवान च्यवन ने 'जीवदान' तथा योगी जनक ने **'वैद्य संदेहभंजन'** तथा चंद्र कुमार बुध ने **'सर्वसार'** तथा जाबाल ने **तंत्रसार** ग्रंथ की रचना की। इसके पश्चात् जाजलि मुनि **'वेदांग सार'** तथा पैल ने **'निदान तंत्र'**, करथ ने **उत्तम सर्वधर तंत्र** तथा अगस्त्य ने **द्वैत निर्णय** नामक ग्रंथ का निर्माण किया। सोलह आचार्य व सोलह ग्रंथ आयुर्वेद चिकित्सा के आधारभूत ग्रंथ माने गए हैं। भगवान विष्णु ने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है कि आयुर्वेद समस्त रोगों का परिज्ञान करके उनकी वेदना को रोक सकता है।

इसके पश्चात् पुनः स्वयं भगवान विष्णु कहते हैं कि जो नेत्रों को जल से धोता है, प्रतिदिन व्यायाम करता है तथा पैरों के तलवों में तेल मलवाता है, वह जरा तथा अनेक व्याधियों से स्वयं को मुक्त रखता है। इसी प्रकार जो तुरंत बने ताजे अन्न का, खीर का, घृत तथा समयानुसार तरुण स्त्री का उचित सेवन करता है, उसमें शीघ्र वृद्धावस्था के लक्षण नहीं होते। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रतिदिन, दही, ताजा मक्खन और गुड़ खाता है, उसके समीप भी जरावस्था नहीं जाती, परंतु ध्यान रहे कि रात को कभी भी दही का सेवन भूलकर न करें।

पतिव्रता मालावती को पुनः संबोधित करते हुए श्री भगवान कहते हैं कि जिस मनुष्य के पेट में भूख की अग्नि प्रज्वलित हो रही हो, उसे यदि उस समय समुचित आहार न मिले, तो मणिपूर चक्र में पित्त का भयंकर प्रकोप हो जाता है। ऐसे में यदि पित्त कुपित हो जाए या पित्त जनित रोग हो जाए, तो धनिया पीसकर उसे शक्कर के साथ ठंडे घोल में मिलाकर पी लेना चाहिए। इसी प्रकार चना, पका हुआ बिल्व फल, गन्ने का रस, अदरक व मूंग की दाल तथा तिल का चूर्ण पित्त नाशक तथा तत्काल बल और पुष्टि प्रदायक है। इसी प्रकार भोजन के तुरंत बाद स्नान करना, बिना प्यास के जल पीना, बासी अन्न का भोजन करना तथा ककड़ी के अधिक पके फल का सेवन करना 'कफ़' में अत्यधिक वृद्धि करा देता है। कफ़

को नाश करने वाले व तत्काल बल और पुष्टि प्रदान करने वाले द्रव्य इस प्रकार हैं :

1. आग तापकर शरीर से पसीना निकालना,
2. भुनी भांग का सेवन करना,
3. कच्चा केला,
4. निर्गुंडी, काली मिर्च व मधु।

अब पित्त व कफ़ के पश्चात् वात प्रकोप की चर्चा करते हुए कहा गया है कि भोजन के पश्चात् दौड़ना, मैथुन करना या मन में निरंतर संताप रखने से तथा कलह करने से आज्ञा चक्र में वायु कुपित होती है। इसका शमन नीबू के साथ बनाए गए चीनी के शर्बत (शिकंजी), नारियल जल, जौ की कांजी, ठंडा पानी पीने आदि से होती है। इसके पश्चात् ब्रह्मांडपावन नामक कृष्ण कवच, संसारपातन नामक कृष्ण कवच तथा शिवस्तवराज की महिमा का वर्णन है। पुनः ब्रह्माजी के पुत्रों के नामों की व्युत्पत्ति तथा ब्रह्माजी द्वारा नारद जी को गृहस्थ धर्म का महत्त्व बताने का प्रसंग प्राप्त होता है। भगवान श्रीकृष्ण तथा प्रकृति देवी की महिमा के प्रतिपादन के साथ यह खंड समाप्त हो जाता है।

## प्रकृति खंड

47 अध्यायों के इस खंड का प्रारंभ 'पंचदेवीरूपा प्रकृति' के वर्णन से होता है। यही भगवती प्रकृति सृष्टि की रचना व पालन में सहयोग के लिए तथा भक्तों की कृपा के लिए पांच विभिन्न स्वरूप धारण करती है। ये पांच रूप क्रमशः यश दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री या सावित्री तथा रासेश्वरी सुरसिका 'राधा' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं प्रमुख देवियों के प्रधान अंश से अन्य देवियों का प्रादुर्भाव हुआ है, जो इस प्रकार है :

इसी प्रकार देवी 'स्वाहा' अग्नि की पत्नी हैं तथा देवी 'स्वधा' पितरों की पत्नी हैं। इसके पश्चात् सभी प्रमुख देवताओं की पत्नियों का परिचय दिया गया है तथा यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पृथ्वी लोक में जितनी भी स्त्रियां हैं, वह सभी इसी प्रकृति की कला का अंश हैं और जो भी इनकी पत्नी रूप में भगवती के समान पूजा करता है, उसे सर्वत्र विजय व मंगल की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् सरस्वती जी के पूजन की विधि का विस्तार से वर्णन है।

**सरस्वती पूजन :** कण्व शाखा की कही हुई पद्धति का वर्णन करते हुए नारद जी कहते हैं कि माघ शुक्ल पंचमी, जिसे श्री पंचमी या वसंत पंचमी भी कहते हैं, उस दिन इनके पूजा का विशेष प्रावधान है, उस दिन पूर्वाह्नकाल में भक्तिपूर्वक कलश का स्थापन करके नैवेद्य आदि के सहित 6 देवताओं का पूजन करें (गणेश,

| | | |
|---|---|---|
| **1. श्री गंगा** | – विष्णुपादाब्ज सम्भुता | – स्पर्श, स्नान व पान से पापों का शमन करने वाली। |
| **2. श्री तुलसी जी** | – प्रकृति देवी की प्रधान कला | – दर्शन व स्पर्श से पापों का शमन व मनोरथों को पूर्ण करने वाली। |
| **3. देवी जरत्कारन** | – कश्यप जी की मानस पुत्री | – नागमाता के नाम से प्रसिद्ध सभी प्रकार के विषों को शांत करने वाली, आस्तीक ऋषि की माता। |
| **4. देवी देवसेना या भगवती षष्ठी** | – प्रकृति देवी की प्रधान कला | – शिशुओं का पालन व संरक्षण, संतानोत्पत्ति पर छठे दिन सूतिकागृह में इनके पूजन का विधान है। |
| **5. मंगलचंडी** | – प्रकृति देवी के मुख से प्रकट | – स्त्रियों को सदैव सौभाग्य प्रदान करने वाली, परंतु कभी कुपित भी होने वाली। |
| **6. काली** | – प्रकृति देवी की प्रधान स्रष्टा देवी का रंग भी कृष्ण होने के कारण कृष्ण के प्रति विशेष श्रद्धा रखती हैं। (इनका और कृष्ण जी का बीज मंत्र भी एक ही है) | – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करने वाली। |
| **7. वसुंधरा** | – प्रकृति का प्रधान सृजन शक्ति संपन्न रूप पृथ्वी का आकार | – शस्य प्रसूतिका (खेती उत्पन्न करने वाली तथा रत्नगर्भा)। |

सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव आदि)। इसके पश्चात् देवी को नैवेद्य में ताजा मक्खन, दही, दूध, धान का लावा, तिल के लड्डू, नारियल जल, कसेरू, मूली, अदरक, बेल, बेर आदि अवश्य अर्पित करने चाहिए। देवी को श्वेत रंग अत्यंत प्रिय है, अतः श्वेत पुष्प, श्वेत चंदन, श्वेत वस्त्र व शंख आदि अर्पण करने चाहिए। इसके पश्चात् देवी का ध्यान करें।

**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा** इस अष्टाक्षर मूल मंत्र का जाप करें। यह विद्या, बुद्धि प्रदायक, अत्यंत सौभाग्य प्रदायक मंत्र है। इसके पश्चात् सरस्वती कवच का पाठ करें। इसके पश्चात् याज्ञवल्क्य मुनि कृत भगवती सरस्वती की स्तुति है, जिसका एक वर्ष नियमपूर्वक पाठ करने से महान् मूर्ख या दुर्बुद्धि भी पंडित व बुद्धिमान हो जाता है। गंगाजी की उत्पत्ति का विस्तृत प्रसंग है तथा तुलसी व शंखचूड़ विवाह तथा हरि द्वारा उनके पातिव्रत्य भंग तथा तुलसी व श्री हरि का वृक्ष व शालग्राम के रूप में भारतवर्ष में रहने के प्रसंग का विस्तार से वर्णन है। तुलसी पूजन, ध्यान, नामाष्टक व तुलसी स्तवन का वर्णन है।

**सावित्री देवी की पूजा का विधान :** 23वें अध्याय से सावित्री अर्थात् गायत्री देवी की पूजा स्तुति का विधान है। इस अध्याय में वर्णित है कि मद्र नरेश महाराज अश्वपति भारतवर्ष के पहले राजा थे, जिन्होंने सावित्री या गायत्री देवी के पूजन को प्रारंभ किया। उनकी पत्नी मालती द्वारा गायत्री पूजन व पराशर मुनि द्वारा इस संबंध में किया गया वार्त्तालाप बहुत ही महत्त्वपूर्ण व सूचनाप्रदायक है। पराशर मुनि कहते हैं कि राजन् ! गायत्री का एक बार का जप दिन भर के पाप को नष्ट कर देता है। दस बार जप करने से दिन व रात के संपूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ बार जप करने से महीने भर का उपार्जित पाप नष्ट हो जाता है। एक हजार जाप से वर्षों के पाप भस्म हो जाते हैं। द्विज को चाहिए कि करमाला पर गायत्री का जाप करने के लिए पूर्वाभिमुख होकर हाथ को सर्प के फण के समान कर ले। हाथ ऊर्ध्वमुख हो तथा कुछ मुंदा-सा हो और थोड़ा-सा झुका हो। अनामिका के बीच वाले पर्व से प्रारंभ करके नीची ओर बाएं होते हुए तर्जनी के मूल भाग को अंगूठे से स्पर्श करते हुए जाप करें। (किसी अन्य प्रकार से जप करने से वह निष्फल हो जाता है)। यदि मणिमाला से जाप करना हो, तो श्वेत कमल के बीजों या स्फटिक मणि माला का संस्कार करके जाप करना चाहिए (जाप में कभी भी मेरु का उल्लंघन न हो, इसका विशेष ध्यान रखें।)।

सावित्री का चौदह वर्ष का एक अनुष्ठान है, जो ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन संयम पूर्वक रहकर चतुर्दशी के दिन व्रत करके पूजन प्रारंभ करना चाहिए। इसमें चौदह फल और चौदह नैवेद्य अर्पित किए जाते हैं। एक मंगल

कलश स्थापित करके उस पर फल और पल्लव रखने चाहिए और भगवती का ध्यान करना चाहिए व षोडश उपचार से पूजन करना चाहिए, जो निम्नलिखित हैं :

देवी का मूल अष्टाक्षर मंत्र **'श्री' ह्लीं' क्लीं सावित्र्यै स्वाहा'** है, जिसका जाप असीम पुण्यदायक, पाप विमोचक और सद्यः फल प्रदायक है तथा सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करता है।

इसके पश्चात् कथा आती है कि राजा अश्वपति के इस 14 वर्षीय अनुष्ठान के पश्चात् सावित्री नामक कन्या हुई। यही सावित्री कालांतर में सत्यवान की भार्या हुई, जो यमराज के पाश से अपने पति को मुक्त कराकर भारतीय इतिहास में अमर हो गई।

महालक्ष्मी की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है और समुद्र संभवा की इंद्र द्वारा की गई प्रसिद्ध स्तुति है। इसके पश्चात् स्वधा, स्वाहा, षष्ठी आदि देवियों के उपाख्यान हैं और 49वें अध्याय में राधा-कृष्ण के चरित्र व श्रीराधा जी की पूजा-परंपरा का संक्षिप्त परिचय है, परंतु 55 वें अध्याय में श्रीराधा जी के ध्यान, षोडशोपचार पूजन, परिचारिका पूजन, परिहारस्तव पूजन महिमा व माहात्म्य का विस्तार से वर्णन है और जग-मंगल राधा कवच का विवरण है।

इस खंड का 57वां अध्याय बहुत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें दुर्गाजी के 16 नामों की व्याख्या व उनके पूजन की परंपरा का वर्णन है।

नारद जी कहते हैं कि वेद की कौथुमी शाखा में दुर्गा जी के 16 नाम इस प्रकार हैं :

1. दुर्गा, 2. नारायणी, 3. ईशाना, 4. विष्णुमाया, 5. शिवा, 6. सती, 7. नित्या, 8. सत्या, 9. भगवती, 10. सर्वाणी, 11. सर्वमंगला, 12. अम्बिका, 13. वैष्णवी, 14. गौरी, 15. पार्वती, 16. सनातनी।

दुर्गाजी के 16 ही नामों की व्याख्या यहां क्यों प्रस्तुत की गई है, इसका भी एक विशेष और विशिष्ट कारण है। अंक संख्या या अंकों द्वारा पुराण काल में प्रतीक को प्रस्तुत किया जाता था। किसी वस्तु, काल, विचार या भाव को संख्या द्वारा अभिव्यक्त करते रहने पर धीरे-धीरे वह संख्या ही प्रसिद्ध हो जाती थी। 16 की संख्या नारी की सृजनात्मक शक्ति के चरम बिंदु की अभिव्यक्ति का प्रतीक है। नारी का सौंदर्य, लावण्य और मुखमंडल का तेज तथा आभा सभी उसमें निहित सृजनात्मक शक्ति की बाह्य रूप में अभिव्यक्ति मात्र है। नारी का यह चरम सौंदर्य, प्रथम बार 16 वर्ष की अवस्था में ही व्यक्त होता है। नारी का चंद्रमा से बड़ा ही घनिष्ठ संबंध है। जिस प्रकार चंद्रमा 27 नक्षत्रों की परिक्रमा करके क्षय व वृद्धि के पश्चात् पुनः नवीन चक्र यात्रा प्रारंभ करता है,

वैसे ही नारी शरीर भी 27 चंद्र दिनों के पश्चात् पुनः सृजन आधार को ग्रहण करके नवीनचक्र को प्रारंभ कर देता है। चंद्रमा की भी 16 कलाएं होती हैं। 15 कलाओं के ऊपर जो अमृत कला सिनीवाली है, वह षोडशी रूप का प्रतीक है। यह सिनीवाली गहन अंधकार में अमावस्या के हृदय में रहती है तथा चंद्रकला की अमर्त्यता का प्रतीक है। इसी प्रकार शुक्ल पक्ष की 15 तिथियों के पश्चात् पूर्णिमा के पूर्ण चंद्रमा के हृदय में अनुमती नामक अमा की कला का शाश्वत निवास है। इसी प्रकार नारी में मृत्यु बीज भी है और सृजन बीज भी। यही रूप कलांतर में कालिका त्रिपुरसुंदरी षोडशी के रूप में पूजा ज़ाने लगा। इस कारण त्रिपुरसुंदरी का मंत्र 16 अक्षरों का होता है और महाषोडशी का 28 अक्षरों का, क्योंकि 16 वर्ष के यौवन के पश्चात् दूसरी बार महाषोडश (16+12) अर्थात् 28 वर्ष में एक बार सृजन प्रक्रिया को पूर्ण पल्लवित करता है, जिससे उसके सारे अंगों के कोण-कोण भरे-पूरे हो जाते हैं। यही कारण है कि कृष्ण जी की सोलह हजार रानियों की चर्चा आती है। प्राचीन काल में प्रमुख पूज्यनीय विभूतियों के सहस्रनाम का प्रचलन था जैसे विष्णुसहस्रनाम, राधासहस्रनाम आदि। सहस्र सम्मान का प्रतीक था। श्रीकृष्ण सोलह या षोडश कला पूर्ण अवतार थे और प्रत्येक कला के साथ एक नित्या शक्ति थी, जो सम्मान पूर्वक षोडश सहस्र या 16 हजार कही जाती थी, जिन्हें आज के जन साधारण 16 हजार पत्नियां समझते हैं। 16 संस्कार, ॐकार की 16 मात्राएं, 16 मातृका, 16 दान, षोडश संस्कार, षोडशोपचार आदि 16 की इसी विशिष्टता के प्रतीक हैं। यही कारण है कि देवी दुर्गा के 16 नामों की यहां व्याख्या प्रस्तुत की गई है :

**1. दुर्गा = दुर्ग+आ :** दुर्ग अर्थात् दैत्य, महाविघ्न, भवबंधन, कर्म, शोक, जन्म-मरण भय आदि (यहां दुर्ग का अर्थ आध्यात्मिक संदर्भ में है, न कि भौतिक कला आदि के संदर्भ में)।

आ अर्थात् हन्ता, जो देवी इन दैत्य रूपी महाविघ्नों के हनन में समर्थ हो, वही दुर्गा है। यह शरीर भी तो नवद्वार मय दुर्ग है, जिसमें आत्मा रूपी ब्रह्म का अंश कर्मबंधन के कारण बंद है, जो कुंडलिनी में आबद्ध है। जिसकी कृपा से कुंडलिनी मुक्त होकर कर्मबंधन को काटकर आत्मा को इस नवद्वारमय दुर्ग में आवागमन हेतु स्वतंत्र कर देती है, वही दुर्गा है।

**2. नारायणी :** जल का एक पर्यायवाची है 'नार'। यही नार-नारायण की शैया है। नारी भी नारायण की शैया है, क्योंकि पुरुष रूपी

अपूर्ण नारायण को नारी शैया रूपी सुख देती है, जिससे नारायण का सृजन कर्म निरंतरता में चलता रहता है। संसार में नारी और त्रिलोकी में नारायण, यह दोनों ही अष्टकमल युक्त पूर्ण हैं। शेष पुरुष तो सप्तकमल युक्त अपूर्ण हैं। पुरुष में सात कमल क्रमशः एक मुखकमल, दो नेत्र कमल, दो हस्त कमल और दो चरण कमल हैं। अष्टम कमल, नारायण की नाभि का सृजन पद्म तथा नारी की नाभि के नीचे स्थित सृजन पद्म यही पूर्ण है, सृष्टिसंभवा है। अतः दुर्गा का एक अन्य पर्याय नारायणी है ('इ' शब्द शक्ति वाचक है, अतः नारायण+ई =नारायणी)।

**3. ईशाना :** ईशान+आ। ईश आदि अष्टसिद्धियां मानी गई हैं। 'ई' शब्द सदा से शक्ति वाचक रहा है। 'आ' अर्थात् प्रथम स्वर या दाता। तात्पर्य यह है कि जो अपनी शक्ति से अष्टसिद्धियों को प्रथम साधना स्तर में ही प्रदान कर देती है, वही देवी ईशान के नाम से पूजी जाती है। ईशान उत्तर-पूर्व की दिशा है और भगवान शिव के पंचमुखी स्वरूप का एक नाम भी ईशान है (अतः देवपूजन का ईशान में विधान है और यह सर्वाधिक शुभ विद्या मानी जाती है)।

**4. विष्णु माया :** यह सृष्टि क्या है ? मन का संकल्प ? मन की माया ? सृष्टि की लीला के लिए भगवान विष्णु ने जिस माया की रचना की और समस्त विश्व को मोहित किया, उसी माया के चक्र में निरंतरता बनाए रखने वाला दुर्गाजी का रूप माया है। माया से ही ममत्व की इच्छा का जन्म होता है और सांसारिक जीव भवबंधन में बंध जाता है। यही मदनमोहन की मोहिनी प्रतिकृति विष्णु माया है।

**5. शिवा :** शिव शब्द भारतीय संस्कृति के महावाक्य सत्यम् शिवम् सुंदरम् की स्वा अनुभूत भावना को अभिव्यक्त करता है। शिव अर्थात् कल्याणमय, सृजनात्मक व मंगलमय। 'आ' शब्द प्रिय और दाता के संदर्भ में प्रयुक्त होता है। सत्य तो निरंतर व नित्य है, सुंदरम् केवल एक सृष्टि है, किन्तु शिवम् सृष्टि होने के साथ-साथ सृजनात्मक भी है। शिवम् की सृष्टि स्रष्टाओं का सृजन है। इस सृजन में सौंदर्य भी समाहित

है। इस प्रकार सृजन ही जीवन का सत्य है, वही सुंदर और शिव है। शिव की अभिन्न सहचरी शक्ति ही शिवा, दुर्गा, कल्याण स्वरूपा, शिवदामिनी और शिवप्रिया है (इसलिए दुर्गा जी शिवा के नाम से प्रसिद्ध हैं। तंत्र शास्त्र में शृगाली या गीदड़ी को भी शिवा कहा जाता है और तांत्रिक अनुष्ठान के पश्चात् यदि शिवा अपना भाग ग्रहण कर ले अर्थात् गीदड़ी आकर खा ले, तो अनुष्ठान पूर्णतः सफल हो जाता है)।

इसी प्रकार अन्य नामों की भी व्याख्याएं हैं।

इसके पश्चात् राजा सुरथ व समाधि नामक वैश्य पर देवी की कृपा का तथा देवी की पूजा का विधान तथा देवी के षोडशोपचार पूजन का क्रम है। इसके पश्चात् नारायण द्वारा नारदजी को देवी को जगाने व पूजा करने के लिए बताए गए विशिष्ट नक्षत्रों का वर्णन मिलता है। आर्द्रा नक्षत्र में देवी को जगाना चाहिए तथा मूल नक्षत्र में देवी की प्रतिमा में आवाहन करना चाहिए। उत्तराषाढ़ नक्षत्र में पूजा करके श्रवण नक्षत्र में देवी की प्रतिमा का विसर्जन करना चाहिए। **आर्द्रा नक्षत्र युक्त नवमी** को जीवन में यदि कोई एक बार भी देवी का पूजन कर लेता है, तो वह एक बार की पूजा से सौ वर्षों तक किए गए पूजन का फल प्राप्त हो जाता है। इसके पश्चात् 65वें अध्याय में दुर्गा जी का दुर्ग नाशन नामक अर्थात् संपूर्ण विघ्नों का नाश करने वाला, समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला स्तोत्र, प्रकृति कवच या ब्रह्मांड मोहन कवच और उसका माहात्म्य है। इस स्तोत्र का एक वर्ष पाठ करने से नारी बन्ध्या, मृतवत्सा या दुर्भगा हो, तो भी उसे संतान की प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई कारागार में हो, तो एक मास तक इसका पाठ करने से मुक्त हो सकता है। पत्नी से कलह हो तथा विवाह विच्छेद आदि की संभावना हो, तो केवल एक मास पाठ करने से दांपत्य जीवन मधुर हो जाता है।

## गणपति खंड

40 अध्यायों के इस खंड में गणेश जी के चरित और विभिन्न लीलाओं का वर्णन है। खंड का प्रारंभ पुण्यक व्रत से होता है, जो भगवान शिव के अनुसार माघ मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के दिन प्रारंभ होता है। मुख्यतः कृष्ण भगवान की लीलाओं पर केंद्रित होने के कारण यहां यह प्रसंग भी आता है कि पार्वती जी की स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान कृष्ण उन्हें दर्शन देते हैं और बालक रूप धारण करके उनकी शय्या पर खेलते हैं। इसके पश्चात् गणेश जी को देखने के लिए शनैश्चर के आगे का प्रसंग है, जिसमें कथा आती है कि भगवान शनैश्चर के दृष्टिपात

से गणेश जी का सिर कट गया और श्रीहरि ने हाथी का सिर जोड़कर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया। इसके पश्चात् विष्णु जी द्वारा स्वयं गणेश जी की अग्रपूजा का विधान है तथा गणेश जी के 8 पवित्र व विघ्न नाशक नामों की सूची है : 1. विघ्नेश, 2. गणेश, 3. हेरम्ब, 4. गजानन, 5. लंबोदर, 6. एकदंत, 7. शूर्पकर्ण एवं 8. विनायक। इसके पश्चात् माता पार्वती ने स्वयं अपने पुत्र गणेश का विशेष उपचार से पूजन किया और निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण किया :

**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।**
**सर्वसिद्धि प्रदेशाय विघ्नेश्वराय नमो नमः।।**

बत्तीस अक्षरों के इस मंत्र का 5 लाख जाप करने से मंत्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके पश्चात् संसार मोहन कवच का वर्णन है। 28वें अध्याय में यह कथा आती है कि भगवान गणेश जो स्वयं विघ्न विनाशक हैं, के बचपन में ही शनि ग्रह द्वारा मस्तक विच्छेद जैसा विघ्न कैसे उपस्थित हो गया ? श्री नारायण कहते हैं कि हे नारद ! इसका भी एक प्राचीन इतिहास है। एक समय की बात है कि भगवान शंकर के भक्त गणों, माली व सुमाली दोनों को कष्ट देने वाले भगवान सूर्य पर भगवान शंकर ने त्रिशूल से प्रहार किया, जिससे सूर्य भगवान चेतना शून्य होकर गिर पड़े। संसार में अंधकार छा गया और भगवान सूर्य के पिता कश्यप जी ने क्रोधित होकर भगवान शिव को श्राप दे दिया कि जिस प्रकार आज तुमने त्रिशूल से मेरे पुत्र का वक्षस्थल विदीर्ण किया है, वैसे ही तुम्हारे भी पुत्र का मस्तक कट जाएगा। इसी श्राप के कारण गणेश का मस्तक विच्छेदित हो गया।

इसके पश्चात् सूर्यकवच व सूर्य स्तोत्र का वर्णन है, जिसके पाठ से मनुष्य को त्वचा व हृदय के रोग नहीं होते और वह निरोग रहता है। 120वें अध्याय में इंद्र के श्रीभ्रष्ट होने व लक्ष्मी कवच व स्तोत्र द्वारा लक्ष्मी की पुनर्प्राप्ति का प्रसंग है। इसके पश्चात् महालक्ष्मी जी द्वारा अपने निवास योग्य स्थानों का वर्णन है, जिसमें मुख्य रूप से कहा गया है कि जो झूठी गवाही देता है, जिसके दांत और वस्त्र मलिन रहते हैं तथा जो गीले पैरों सोता है और संध्याकाल एवं दिन में शयन करता है, उन व्यक्तियों को मेरी प्राप्ति नहीं होती। इसके पश्चात् जमदग्नि तथा परशुराम का प्रसंग है। परशुराम तथा राजा सुचंद्र के वध के प्रसंग में दशाक्षरी विद्या, काली कवच व दुर्गा कवच का वर्णन है। **अंत में यह विशेष रूप से कहा गया है कि गणेश जी के पूजन में तुलसी का प्रयोग पूर्णतः निषिद्ध है और कभी भी तुलसी दल गणेश जी को अर्पित नहीं करने चाहिए।**

## श्रीकृष्ण जन्म खंड

101 अध्यायों के इस खंड में विस्तार से भगवान कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है जैसा विशद व विस्तृत विवेचन यहां मिलता है, वैसा केवल श्रीमद्भागवत में ही प्राप्त होता है, अतः पुनरावृत्ति के कारण प्रभु की लीलाओं का यहां पुनः वर्णन नहीं किया जा रहा है। कुछ विशिष्ट बातें जो इतने विस्तार से श्रीमद्भागवत में नहीं मिलतीं, उनका विवेचन यहां विशेष रूप से किया जा रहा है। इस खंड का सर्वप्रथम प्रमुख विषय अध्याय 12 में योगनिद्रा जी द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण कवच है, जिसके पाठ से प्रत्येक प्रकार के दैहिक, दैविक व भौतिक भय का समल नाश हो जाता है। इस उत्तम कवच को सोने के यंत्र में मढ़ाकर कंठ या दाहिनी भुजा में धारण करने से बुद्धि सदैव दैव कृपा से शुद्ध व अनुकूल रहती है तथा विष, अग्नि, सर्प और शत्रुओं से किसी भी प्रकार का कोई भय नहीं रहता और जल, थल और अंतरिक्ष में जागते अथवा सोते समय भगवान उसकी रक्षा करते हैं।

13वें अध्याय में गर्गजी द्वारा भगवान के नामकरण के प्रसंग में भगवान के 33 नामों की सूची दी गई है (जो 33 करोड़ देवताओं का प्रयोग है)। ये नाम इस प्रकार हैं : 1. कृष्ण, 2. पीताम्बर, 3. कंसध्वंसी, 4. विष्टरश्रवा, 5. देवकीनंदन, 6. श्रीश, 7. यशोदानंदन, 8. हरि, 9. सनातन, 10. अच्युत, 11. विष्णु, 12. सर्वेश, 13. सर्वरूपद्दक, 14. सर्वाधार, 15. सर्वगति, 16. सर्वकारणकारण, 17. राधाबन्धु, 18. राधिकात्मा, 19. राधिका सहचारी, 20. राधामानसपूरक, 21. राधाधन, 22. राधिकांग, 23. राधिकासक्तमानस, 24. राधाप्राण, 25. राधिकेश, 26. राधिकारमण, 27. राधिकाचित्तचोर, 28. राधाप्राणाधिक, 29. प्रभु, 30. परिपूर्णतम ब्रह्म, 31. ब्रह्म, 32. गोविन्द, 33. गरुड़ध्वज।

इसके पश्चात् भगवान के अग्रज व नन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र बलराम जी के 9 नामों का वर्णन प्राप्त होता है :

1. हलधर, 2. संकर्षण, 3. अनंत, 4. बलदेव, 5. हली, 6. शितिवासा (शिति=नीला अर्थात् नीले रंग का वस्त्र धारण करने वाले), 7. मुसली, (मूसल नामक आयुध को धारण करने वाले), 8. रेवती रमण एवं 9. रौहिणेय।

इसी प्रकार 17वें अध्याय में श्री नारायण नारद जी को राधा जी के सोलह नामों का भी उपदेश देते हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. राधा, 2. रासेश्वरी, 3. रासवासिनी, 4. रसिकेश्वरी, 5. कृष्ण प्राणाधिका, 6. कृष्णप्रिया, 7. कृष्णस्वरूपिणी, 8. कृष्णवामांगसंभूता, 9. परमानंदरूपिणी 10. कृष्णा, 11. वृन्दावनी, 12. वृन्दा 13. वृन्दावनविनोदिनी, 14. चंद्रावली

15. चंद्रकांता एवं 16. शरच्चन्द्र प्रभानना।

श्री कृष्ण जन्म खंड का 76वां अध्याय जनसाधारण की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है, जिसमें उन वस्तुओं और द्रव्यों व अनुष्ठानों की सूची दी है, जिनके दर्शन मात्र से मंगल व सौभाग्य की प्राप्ति होती है तथा पुण्यलाभ होता है। सर्वप्रथम 100 मंगलमय वस्तुओं व द्रव्यों की सूची है, जो इस प्रकार है :

1. उत्तम ब्राह्मण, 2. तीर्थ, 3. वैष्णव, 4. देवप्रतिमा, 5. सूर्यदेव, 6. सती स्त्री, 7. संन्यासी, 8. यति, 9. ब्रह्मचारी, 10. गौ, 11. अग्नि, 12. गुरु, 13. गजराज, 14. सिंह, 15. श्वेत अश्व, 16. तोता, 17. कोयल, 18. खंजरीट, 19. हंस, 20. मोर, 21. नीलकंठ, 22. शंखपक्षी, 23. बछड़े सहित गाय, 24. पीपल वृक्ष 25. पति-पुत्र वाली नारी, 26. तीर्थयात्री, 27. प्रदीप, 28. सुवर्ण, 29. मणि, 30. मोती, 31. हीरा, 32. माणिक्य, 33. तुलसी, 34. श्वेतपुष्प, 35. फल, 36. श्वेत धान्य, 37. घी, 38. दही, 39. मधु, 40. भरा हुआ घड़ा, 41. लावा, 42. दर्पण, 43. जल, 44. श्वेत पुष्पों की माला, 45. गोरोचन, 46. कपूर, 47. चांदी, 48. तालाब, 49. फूलों से भरी हुई वाटिका, 50. शुक्ल पक्ष के चंद्रमा, 51. अमृत, 52. चंदन, 53. कस्तूरी, 54. कुंकुम, 55. पताका, 56. अक्षयवट, 57. देव वृक्ष, 58. देवालय, 59. पुष्करिणी, 60. देवभक्त, 61. सुगंधित वायु, 62. शंख, 63. दुंदुभि, 64. सीपी, 65. मूंगा, 66. रजत, 67. स्फटिक मणि, 68. कुश की जड़, 69. गंगोट (गंगा जी की मिट्टी) 70. कुशा, 71. तांबा, 72. पुराण, 73. शुद्ध और बीजमंत्र सहित विष्णु यंत्र, 74. चिकनी दूब, 75. अक्षत, 76. रत्न, 77. तपस्वी, 78. सिद्धयंत्र, 79. समुद्र, 80. कालामृग, 81. यज्ञ, 82. उत्सव, 83. गोमूत्र, 84. गोबर, 85. गोदुग्ध, 86. गोधूलि, 87. गोशाला, 88. गोखुर, 89. लहलहाते खेत, 90. पद्मिनी स्त्री, 91. श्यामा, 92. सुंदर वेष, 93. सौभाग्यवती स्त्री, 94. क्षेमकरी (चील), 95. गन्ध, 96. दूर्वा, 97. तण्डुल, 98. सिद्धांत, 99. अन्न एवं 100. नेवला।

इसके पश्चात् विभिन्न तीर्थों में तिथि विशेष को होने वाले स्नान के विशिष्ट फलों की चर्चा प्राप्त होती है। यथा, कार्तिक पूर्णिमा को राधा जी का पूजन विशेष फलदायी है। इसी प्रकार आश्विन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी को देवी दुर्गाजी के हिंगुला या हिंगलाज रूप का पूजन (यह स्थान वर्तमान में पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में है और आज भी श्री हिंगलाज के नाम से प्रसिद्ध है) अतिशीघ्र फलदायक होता है। इसी प्रकार जन्माष्टमी के दिन विदुमाधव के, पौषमास के शुक्लपक्ष में देवी पद्मा के, काशी में एकादशी को उपवास व द्वादशी को अन्नपूर्णा जी के दर्शन करने का, चैत्रमास की चतुर्दशी को कामरूप देश में भद्रकाली जी के, रामनवमी

को अयोध्या में भगवान श्री राम के तथा प्रयाग में मुंडन के व नैमिषारण्य में उपवास का बहुत ही अधिक माहात्म्य माना गया है।

इसी संदर्भ में स्वयं श्री भगवान के मुख से यह कहा गया है कि संसार में अन्नदान से बढ़कर कोई भी दूसरा दान नहीं है, न ही होगा, इसमें पात्र की परीक्षा नहीं ली जाती। तथा, काल का भी कोई बंधन नहीं है। अतः भूखा व्यक्ति किसी भी जाति या वर्ण का कोई भी एवं कहीं भी हो, उसे अवश्य अन्न दान दें। अन्न दान पृथ्वी पर सबसे बड़ा पुण्य है, इससे जितना भी हो सके, उतना पुण्य फल प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

इसके पश्चात् 77वें से 79 वें अध्याय में सुस्वप्नों, अदर्शनीय वस्तुओं व दुःस्वप्नों का तथा उनकी शांति का विधान है। इसी अध्याय में यह निर्देश प्राप्त होता है कि भाद्रपद के शुक्ल व कृष्ण पक्ष की चतुर्थी तिथि को उदित होता चंद्र नष्ट चंद्र माना गया है और उसका दर्शन करने पर कलंक लगता है तथा पुण्यों का क्षय व पाप लगता है। यदि भूल या असावधानी से ऐसे चंद्र को कोई देख ले, तो निम्नलिखित मन्त्र से अभिमंत्रित जल पीना चाहिए, इससे यह दोष दूर हो जाता है :

**सिंहः प्रसनेभवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।**
**सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः।।**

सुंदर सलोने कुमार ! इस मणि के लिए सिंह ने प्रसेन को मारा था और जाम्बवान् ने उस सिंह का संहार किया है, अतः तुम रोओ मत। अब इस पर तुम्हारा ही अधिकार है।

इसके पश्चात् भक्ष्याभक्ष्य अर्थात् क्या खाना चाहिए तथा क्या नहीं खाना चाहिए, इसका वर्णन करते हुए भगवान नंद बाबा से कहते हैं कि जला हुआ अन्न, कांसे के बर्तन में नारियल जल, ताम्रपात्र में दूध-दही सभी अभक्ष्य व वर्जित है, परंतु ताम्रपात्र में मधु या घृत रखा जा सकता है। इसी प्रकार नमक के साथ कभी भी दूध नहीं ग्रहण करना चाहिए तथा माघ मास में मूली तथा रविवार को अदरक पूर्णतः निषिद्ध है। यदि परोसने वाला व्यक्ति भोजन करने वाले को छू दे या स्पर्श कर दे, तो वह अन्न अभक्ष्य हो जाता है। ब्राह्मणों को भैंस का दूध, दही व घृत नहीं ग्रहण करना चाहिए। जिस शहद (मधु), गुड़, दही या घी में चीटियां पड़ जाएं, तो उसे कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। आम जनता में यह धारणा अत्यधिक प्रचलित है कि तोते का काटा फल अधिक मधुर व मीठा होता है, परंतु यहां भगवान ने स्पष्ट किया है कि यदि पके हुए शुद्ध फल को पक्षी ने काट दिया हो, तो उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए, वह अभक्ष्य होता है। उसके पश्चात् 111वें अध्याय में राधिका जी द्वारा राम आदि भगवन्नामों की व्युत्पति का वर्णन है तथा भगवान के

निम्नलिखित ग्यारह नामों को अतीव पुण्यदायक व सहस्र कोटि जन्मों के पापों का शमन करने वाला बताया गया है।

1. राम, 2. नारायण, 3. अनंत, 4. मुकुंद, 5. मधुसूदन, 6. कृष्ण, 7. केशव, 8. कंसारे, 9. हरे, 10. वैकुंठ, 11. वामन।

इसके पश्चात् पुराणों के पंचलक्षण, उनकी श्लोक संख्या निरूपण, ब्रह्मवैवर्त पुराण के पठन-श्रवण के माहात्म्य के वर्णन के साथ इस पवित्र ग्रंथ व पुराण का समापन हो जाता है।

## 11. लिंग पुराण

लिंग पुराण मुख्यतः एक शैवमत प्रधान पुराण है, जिसका अधिकांश कथा भाग शिव पुराण (वायु पुराण) सदृश्य है। शैव सिद्धांतों का जैसा सरल, सहज, व्यापक व विस्तृत विवेचन इस पुराण में उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसमें कुल 163 अध्याय हैं, जिनमें से 108 पूर्वार्ध में तथा 55 उत्तरार्ध में हैं। पुराण के प्रारंभ में रुद्र को ब्रह्म तथा अव्यक्त कहा गया है, परंतु आगे **अलिंग चैव लिंग च लिंगालिंगानि मूर्तयः** अर्थात् शिव को तीन रूपों में प्रकट होने वाला कहा गया है। शिव कभी तो अव्यक्त और निराकार होते हैं, कभी व्यक्त और अव्यक्त, दोनों रूप में तथा कभी पूर्ण व्यक्त अर्थात् मूर्ति रूप में दिखाई देते हैं। लिंग के बारे में हिंदू समाज में विभिन्न प्रकार की भ्रांतियां प्रचलित हैं। मसलन शिवलिंग का अर्थ शिव की जननेंद्रिय से है तथा सामान्यतः लिंग का अर्थ जननेन्द्रिय है। लिंग वस्तुतः संस्कृत का विशुद्ध शब्द है, जिसका अर्थ चिह्न या प्रतीक है। **लयं गच्छतीति लिङ्गम्** की व्युत्पत्ति से इसका नाम लिंग रखा गया है। इसे भली-भांति समझने के लिए हमें कर्म, पुनर्जन्म व संस्कारों के अंतर्संबंध को समझना पड़ेगा। मनुष्य जैसा भी अच्छा या बुरा कार्य करता है, उसके कुछ संस्कार बनते हैं, जिन्हें भाव, प्रवृत्ति या प्रकृति कहते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि कर्म या संस्कार तो शरीर से होते हैं और शरीर तो मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है, फिर कर्म फल व संस्कारी कैसे दूसरे जन्म में प्राप्त होते हैं, यहीं पर लिंग शरीर का महत्त्व प्रकट होता है। आत्मा तो कर्म व संस्कारों से निर्लिप्त है, परंतु आत्मा के शरीर त्यागने पर यह आत्मा पर एक आवरण की भांति लिपट जाता है। इसकी रचना में 18 तत्त्व होते हैं और मन, दसों इंद्रियों व पांचों तमन्नाओं का भी बीज रूप में अंश विद्यमान रहता है। एक जन्म की साधना, देखे गए दृश्य, सुनी गई ध्वनियां कभी भी व किसी भी जन्म में प्रकट हो सकती हैं, क्योंकि यह लिंग शरीर प्रत्येक जन्म में एक आवरण से आत्मा को ढंक देता है और वास्तविक मोक्ष इस आत्मा

की लिंग शरीर से निवृत्ति है या फिर प्रलय आने पर ही इसका नाश होता है, जब संपूर्ण आत्मा तत्त्व हिरण्यगर्भ में विलीन हो जाता है। पुरुष जननेंद्रिय को लिंग कहने का तात्पर्य यही है कि वह पिता के संस्कारों व भावों को पुत्र में स्थानांतरित करता है, इसीलिए पुत्र को आत्मज यानी आत्मा से उत्पन्न कहा जाता है, न कि शरीर या शरीर से उत्पन्न। आज विज्ञान भी स्वीकार करता है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी शीत कक्षों में संरक्षित वीर्य से संतान जन्म ले सकती है। यही लिंग का रहस्य है। इस पुराण में लिंग का अर्थ ॐकार भी बताया गया है।

पुराण के प्रारंभ में पहले प्रश्न है, फिर संक्षेप में सृष्टि का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् योगाख्यान और कल्पाख्यान का वर्णन है। इसके बाद लिंग के प्रादुर्भाव और उसके पूजन की विधि है। तत् पश्चात् सनत्कुमार व शैल का पवित्र संवाद है। तदनंतर दाधीचि-चरित्र, युगधर्म निरूपण, भुवन कोश वर्णन व सूर्यवंश तथा चंद्रवंश का वर्णन है। इसके पश्चात् पुराणों के पंचलक्षणों के अनुरूप सृष्टि वर्णन, त्रिपुर की कथा, लिंग प्रतिष्ठा व पशुपतिनाथ द्वारा पशु पाश-विमोचन का प्रसंग है।

लिंग पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति पंचमहाभूतों से ही बताई गई है, जिसके अनुसार अहंकार से शब्द तन्मात्रा और उसके आकाश तत्त्व की उत्पत्ति हुई, आकाश तत्त्व से स्पर्श तन्मात्रा और उससे वायु तत्त्व की उत्पत्ति हुई। वायु से रूप तन्मात्रा और उससे अग्नि तत्त्व का जन्म हुआ। अग्नि से रस तन्मात्रा और उससे जल तत्त्व तथा जल तत्त्व से गंध तन्मात्रा और उससे पृथ्वी तत्त्व की उत्पत्ति हुई। यह पंच तत्त्व विषयक सृजन, क्रम व सिद्धांत भारतीय दर्शन का पारंपरिक आधार लिए है (तन्मात्रा वस्तुतः तत्त्व विशेष के गुण को कहते हैं)।

सृष्टि का विचार ब्रह्म के मन में आने पर उसने अविद्या अथवा अहंकार को जन्म दिया। अहं से पांच सूक्ष्म तत्त्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध उत्पन्न हुए, जिन्हें तन्मात्रा कहा गया। इन तन्मात्राओं से ही पांच महाभूत आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी प्रकट हुए। इन तत्वों का क्रमिक विकास आकाश तत्त्व से हुआ है, ऐसी दार्शनिक मान्यता है।

इसके अतिरिक्त पूर्व भाग में भगवान शिव के विभिन्न व्रत, सदाचार निरूपण, प्रायश्चित्त, अरिष्ट, काशी व श्री शैल का वर्णन है। इसके पश्चात् अन्धकासुर की कथा, वराह चरित्र व जलंधर वध आदि की कथाएं हैं। तदनंतर पवित्र शिव सहस्त्र नाम स्तोत्र, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, कामदेव दहन व पार्वती विवाह के प्रसंग हैं। इसके पश्चात् भगवान गणेश की जन्म कथा, शिवजी का ताण्डव नृत्य प्रसंग व उपमन्यु की कथाएं हैं।

इसके पश्चात् उत्तर भाग में विष्णु जी की भक्ति के माहात्म्य, एकादशी के

संदर्भ में राजा अम्बरीष की कथा तथा सनत्कुमार व नंदीश्वर का संवाद है। इसके पश्चात् यज्ञ, विभिन्न दान व सूर्यपूजा के प्रसंग हैं। भगवान शिव के 28 अवतारों का वर्णन इस पुराण की अपनी एक विशिष्टता है। इसके अतिरिक्त अघोरकीर्तन, व्रजेश्वरी महाविद्या, गायत्री महिमा, त्र्यम्बक माहात्म्य तथा पुराण श्रवण के फल की चर्चा है। इस पुराण को लिखकर या मुद्रित करवा कर फाल्गुन की पूर्णिमा को तिलधेनु के साथ ब्राह्मण को विधिपूर्वक दान करने से असीम पुण्य की प्राप्ति कही गई है।

## 12. वराह पुराण

श्री विष्णु द्वारा वराह रूप धारण करके पृथ्वी का उद्धार करके उसे समुद्र से निकालकर पुनः स्थापित करने के कारण वराह अवतार नाम पड़ा है। उनके इस अवतार रूप की व्याख्या करने वाला यह पुराण वराह नाम से प्रसिद्ध है। पृथ्वी देवी ने नारायण की स्तुति की और उनसे जीवों के कल्याण के साधनों के विषय में अनेक प्रश्न किए। भगवान वराह के धर्मोपदेश की वे ही कथाएं वराह पुराण के नाम से विख्यात हुईं। इस पुराण में 217 अध्याय तथा लगभग दस हजार श्लोक हैं। यह योजनाबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि इस पुराण के 115 से 125 तक के अध्यायों में विष्णु-पूजा की सात्त्विक विधि विस्तार से निरूपित है, तथापि इसके 21-22 एवं 90-96 के अध्यायों में त्रिशक्ति-माहात्म्य एवं शक्ति-महिमा, 23वें अध्याय में गणपतिचरित्र, 25वें और 71वें अध्याय में कार्तिकेय-चरित्र तथा 213 से 216 अध्याय तक अनेक रुद्रक्षेत्रों का वर्णन है और बीच-बीच में सूर्य, शिव एवं ब्रह्माजी के चरित्र तथा पूजा-उपासना का निरूपण हुआ है। इसके 20 से 50 तक के अध्यायों में विविध व्रतों का उल्लेख है। व्रत माहात्म्य में अनेक सुंदर कथाएं आई हैं। तिथिव्रतों में प्रतिपदा से पूर्णिमा अमावस्या तक तिथियों के अधिष्ठातृ-देवों की उत्पत्ति-कथा तथा चरित्र वर्णित हैं। यथा—प्रतिपदा तिथि में अग्निदेव, द्वितीया में अश्विनीकुमार, तृतीया में गौरी, चतुर्थी में गणेश, पंचमी में नाग (सर्प), षष्ठी में कार्तिकेय, सप्तमी में आदित्य (सूर्य), अष्टमी में मातृका, नवमी में दुर्गा, दशमी में दिशा, एकादशी में कुबेर, द्वादशी में श्रीविष्णु, त्रयोदशी में धर्म, चतुर्दशी में रुद्र, अमावस्या में पितृगण तथा पूर्णिमा तिथि के माहात्म्य में चंद्रमा की उत्पत्ति कथा है। द्वादशी व्रतों में भगवान् के अवतारों की द्वादशीव्रत की कथाएं हैं। यथा, मत्स्य द्वादशी, कूर्मद्वादशी आदि। इन व्रतों का माहात्म्य तथा पूजाविधान भी दिया गया है। साथ ही अनेक नैमित्तिक और काम्यव्रतों यथा—शुभव्रत, धन्यव्रत, सौभाग्यव्रत, आरोग्यव्रत, पुत्र-प्राप्ति व्रत आदि की कथाओं का पृथक्-पृथक् अध्यायों में मनोरम शैली में विवरण है। 99 से

112वें अध्याय में विविध दानों का वर्णन है। गोदान या धेनुदान के प्रसंग में अनेक प्रकार की धेनुओं—तेलधेनु, जलधेनु, रसधेनु, शर्कराधेनु इत्यादि की दान विधि और उनके फलों का उल्लेख है। 73 से 91 अध्यायों में भुवनकोष का विस्तार से वर्णन हुआ है। इस पुराण का भौगोलिक वर्णन अन्य पुराणों के भौगोलिक वर्णन से अधिक प्रामाणिक एवं सुस्पष्ट माना जाता है। इसमें अनेक तीर्थ स्थलों—कोकामुख, हरिद्वार, ऋषिकेश, वराह-क्षेत्र, मुक्तिनाथ, लोहार्गल, द्वारका और बदरीनाथ तथा मथुरा आदि की महिमा का गान है। मथुरा माहात्म्य में विविध तीर्थों का जितना विस्तृत और सुस्पष्ट विवेचन 152-188 अध्यायों में हुआ है, उतना किसी अन्य पुराण में नहीं मिलता। मथुरा के भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वर्णन के लिए यह विवरण बड़े महत्त्व का है। इस वराह पुराण में मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि मासों का माहात्म्य भी बताया गया है। वेदोक्त देवशुनी-शरमा तथा कठोपनिषद् के नचिकेतोपाख्यान का भी इसमें विस्तार से वर्णन हुआ है। अध्याय 16-17 तथा 180-181 में वर्णित श्राद्ध-तर्पण की विधि अत्यंत रोचक है। इस पुराण में विभिन्न देवताओं की विभिन्न धातुओं (पदार्थों) से बनने वाली प्रतिमाओं की निर्माण विधि तथा उनकी प्रतिष्ठा-विधियों पर भी विवरण मिलता है। इसके साथ ही इसमें कर्मविपाक, पतिव्रता-माहात्म्य, गोकर्णेश्वर तथा शुकेश्वर-महिमा, पंचरात्र-चर्या, वर्णाश्रम-धर्म, भगवद्भक्ति और आत्मज्ञान की प्रशंसा आदि अनेक विषय प्रतिपादित हैं। तीर्थ, श्राद्ध, दान, व्रत, क्षमा, दया, सदाचार आदि की सर्वत्र प्रशंसा की गई है। 207वें अध्याय में कहा गया है कि तपस्या द्वारा स्वर्ग, यश, आयु, भोग, ज्ञान, विज्ञान, रूप, सौभाग्य सब कुछ मिलता है। अहिंसा से सौंदर्य एवं दीक्षा से श्रेष्ठ कुल में जन्म, गुरुसेवा से विद्या और श्राद्ध से संतति की प्राप्ति होती है—

**अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च।**
**गुरुशुश्रूषया विद्या श्राद्धदानेन संततिः।।** (207/40-41)

इस पुराण के उपदेश अन्य पुराणों की अपेक्षा कहीं-कहीं मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं विशेष महत्त्व के हैं।

अब यहां यह बता देना अत्यावश्यक है कि भगवान विष्णु का वराह रूप गुप्त काल में बहुत व्यापक रूप से पूजनीय था और संपूर्ण विश्व में इतनी भव्य-सुंदर व विशाल वराह प्रतिमा अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती, जैसी उदयगिरि (म. प्र.) में प्राप्त होती है। इसमें भगवान के वराह रूप का ऋषि-मुनिगण जिस भावपूर्ण ढंग से स्तुति करते चित्रांकित किए गए हैं, वह अपने आप में अद्वितीय है।

## 13. स्कंद पुराण

अठारह पुराणों में सबसे बड़ा व वृहत्काय स्कंद पुराण मुख्यतः शैव पुराण है, परंतु इसमें विष्णु, ब्रह्मा व अन्य देवताओं का भी वर्णन है। इसमें 81,000 श्लोक हैं और यह सात खंडों में विभाजित हैं। ये खंड हैं :

1. माहेश्वर खंड, 2. वैष्णव खंड, 3. ब्रह्म खंड, 4. काशी खंड, 5. रेवा खंड या आवंत्य खंड, 6. ताप्ती खंड या नागर खंड एवं 7. प्रभास खंड।

(एक अन्य विभाजन क्रम सूत संहिता के अनुसार मिलता है, जिसके अनुसार इस पुराण में 6 संहिताएं हैं, जिनके नाम और श्लोकों की संख्या इस प्रकार है :

| संहिता | श्लोक |
|---|---|
| 1. सनत्कुमार संहिता | 36,000 श्लोक |
| 2. सूत संहिता | 6,000 श्लोक |
| 3. शंकर संहिता | 30,000 श्लोक |
| 4. वैष्णव संहिता | 5,000 श्लोक |
| 5. ब्राह्म संहिता | 3,000 श्लोक |
| 6. सौर संहिता | 1,000 श्लोक |
| | 81,000 श्लोक |

कुछ लोगों के मतानुसार यह विभाजन स्कंद पुराण नाम से उपपुराण का है। हम प्रथम विभाजन के अनुरूप ही स्कंद पुराण की चर्चा करेंगे :

### माहेश्वर खंड

पूर्णतः भगवान शिव की लीलाओं व जीवन प्रसंगों का वर्णन करने वाला यह खंड तीन उपखंडों में विभाजित है : क. केदार खंड, ख. कुमारिका खंड और ग. अरुणाचल माहात्म्य खंड। (कुछ विद्वान केवल दो खंडों, केदार व कुमारिका खंड के विभाजन को ही स्वीकार करते हैं।)

### केदार खंड

भगवान शिव की महिमा का बखान करते हुए दक्ष प्रजापति के कथानक से प्रारंभ होता है, जिसमें प्रजापति दक्ष का अपने जामाता शिव से द्वेष तथा पार्वती द्वारा अपने पति के अपमान व तिरस्कार से क्रोधित होकर अग्नि में प्रवेश करने का वर्णन है। इसके पश्चात् यज्ञ-विध्वंस तथा दक्ष पर पुनः शिव कृपा का प्रसंग है। शिवपूजन की महिमा में भगवान शिव की आक या मदार से पूजन को सामान्य

पुष्प से दस गुना श्रेष्ठ बताया गया है। धतूरे के पुष्प से किए गए पूजन को आक से भी दसगुना और नीलकमल को एक हजार गुना माना गया है। शिवलिंग के पूजन की महत्ता को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि ब्रह्मा जी मणिमय शिवलिंग की, इंद्र रत्नमय शिवलिंग की, चंद्रमा मोतियों से बने शिवलिंग की, सूर्य तांबे से बने शिवलिंग की, कुबेर चांदी के शिवलिंग की, वरुण लाल रंग के शिवलिंग की, यमराज नीले रंगे के शिवलिंग की और वायुदेव केसरिया शिवलिंग की निरंतर आराधना करते हैं। इसके पश्चात् रावण के उत्कर्ष व पतन के वृत्तांत की चर्चा है। इसके पश्चात् समुद्र मंथन की गाथा, हलाहल विष की उत्पत्ति व भगवान शिव द्वारा उसका पान करके सबरी रक्षा व अन्य रत्नों सहित लक्ष्मी के प्रादुर्भाव की गाथा है। अमृत प्राप्ति के पश्चात् राहु व चंद्रमा के वैमनस्य की कथा का अंत यहां थोड़ा-सा भिन्न है। कथा का अंत इस प्रकार होता है कि राहु द्वारा ग्रास से भयभीत चंद्रमा भगवान शंकर की शरण में गया और उनके मस्तक पर स्थापित हो गया। राहु भी भगवान शिव को प्रसन्न करके उनके मस्तक पर ही स्थित हो गया। चंद्र ने भय के मारे अमृत का स्राव किया और अमृत के प्रभाव से राहु के अनेक सिर हो गए। उन्हीं सिरों की भगवान शंकर ने मुण्डमाला बना ली, जो उनके कंठ को सुशोभित करती है।

इसी कथा के पश्चात् बताया गया है कि कार्तिक मास की रात्रि में शिवजी की मूर्ति या ज्योतिर्लिंगों के सम्मुख दीपदान का बहुत अधिक पुण्य होता है तथा वह चिरकाल तक फलदायक होता है। यदि यह दीपक कुसुम्भ के तेल से युक्त हो या कपूर, अगर और धूप से युक्त हो, तो व्यक्ति को सदैव शिवजी की अनुकंपा प्राप्त होती है। इसके पश्चात् इंद्र की विजय, इंद्र द्वारा विश्वरूप का वध, नहुष का स्वर्ग से पतन। ब्रह्म हत्या से इंद्र की मुक्ति व पुनः राज्य प्राप्ति का प्रसंग है। दधीचि के देवकार्य हेतु अस्थिदान व दधीचि की पत्नी सुवर्चा द्वारा देवताओं को संतानहीन रहने का श्राप देने का वर्णन है। इसी प्रसंग में प्रदोष व्रत की विधि का भी विस्तार से वर्णन मिलता है। गुरु बृहस्पति इंद्र को बताते हैं कि यदि कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को शनिवार हो, तो वैसा योग बहुत ही दुर्लभ है और भाग्यवानों को प्राप्त होता है। उस दिन प्रदोष काल में अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए लिंगरूपधारी भगवान सदाशिव का पूजन करना चाहिए। दोपहर में स्नान करके तिल और आंवले के साथ गंध, पुष्प और फल के साथ शिवपूजन करना चाहिए। प्रदोष काल में स्थावर लिंग का पूजन करना चाहिए। यदि संभव हो, तो घर से दूर किसी तीर्थ स्थल पर शिवलिंग का पूजन करना चाहिए। यथा, पर्वत व वन के संदर्भ में अमरकंटक पर स्थित शिवलिंग का सर्वाधिक महत्त्व

माना गया है। किसी बावड़ी या तालाब में स्नान से पूर्व मिट्टी के पांच पिण्ड अवश्य निकाल देने चाहिए। ये पंच तत्वों के प्रतीक हैं। नदी में स्नान सर्वोत्तम है और उसमें भी यदि नदी गंगा हो, तो पुण्य व सौभाग्य का क्या कहना ? प्रदोष काल में मौन रहना चाहिए और भगवान के सम्मुख 1000 दीपक जलाने चाहिए। यदि इतने संभव न हों, तो 100 दीपक जलाने चाहिए। यदि इतने भी संभव न हों, तो कम-से-कम 32 दीए तो अवश्य जलाने चाहिए। यदि जलहरी का जल उलांघना पड़े, तो 108 परिक्रमा करनी चाहिए अन्यथा मात्र 108 बार नमस्कार करना चाहिए। इसके पश्चात् भगवान शिव की 100 रुद्र नामों से स्तुति करनी चाहिए। इसी व्रत के बारे में आगे गुरु बृहस्पति का कथन है कि यदि साधन हों, तो चांदी का वृषभ बनवाकर उस पर भगवान शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की स्थापना करनी चाहिए। इस व्रत का अनुष्ठान करते समय इंद्र से कुछ असावधानियां हो गईं, जिस कारण वृत्रासुर ने इंद्र को निगल लिया। इस पर देवताओं ने पुनः ब्रह्मा जी के नेतृत्व में भगवान शिव का पूजन किया। इस पर भगवान शिव ने प्रकट होकर बताया कि इंद्र ने परिक्रमा करते समय शिवलिंग व नन्दी के बीच में से होकर अर्थात् परिक्रमा की है, जोकि संपूर्ण पुण्य को नष्ट करने वाली है, इसीलिए उसकी पराजय हुई है। **(तात्पर्य यह है कि शिव मंदिर में कभी भी परिक्रमा शिवलिंग व नंदी के बीच में से होकर न करें)**। इसी संदर्भ में आगे भगवान शिव ने देवताओं से कहा कि शिवलिंग की छाया, अर्घा तथा शिव-निर्माल्य को जो भी लांघता है, उसे भी शिवपूजन का फल प्राप्त नहीं होता।

पूजा योग्य फूलों के विषय में भगवान शिव स्वयं देवताओं से कहते हैं कि कनेर, मदार, भटकटइया, धतूर, शतपत्र, अमलतास, पुन्नाग (संदेसरा), मौलसिरी, नागकेसर, नीलकमल, कदंब, आक तथा नाना प्रकार के कमल पुष्पों से तीनों कालों में कभी-कभी शिव पूजन किया जा सकता है। सायंकाल या प्रदोष काल में चमेली, बेला, सेवती, श्यामपुष्प, कुटज, कर्णिकार, कुसुंभ व लाल कमल के पुष्प पूजन के लिए श्रेष्ठ माने गए हैं। रात्रि में केवल कुमुद पुष्प से ही शिवपूजन का प्रावधान है। इस प्रकार काल व समय अनुसार पुष्प भेद से पूजा करने से शीघ्र फल की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् राजा बलि द्वारा देवताओं की पराजय, अदिति की तपस्या के फलस्वरूप भगवान का वामन रूप में अवतार और बलि-वामन कथा का प्रसंग विस्तार से मिलता है। तारकासुर को ब्रह्माजी का वरदान, सती का हिमालय के घर पार्वती रूप में अवतार, शंकर जी के कोप से कामदेव का भस्म होना व पार्वती की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान शिव का पार्वती की परीक्षा लेकर उन्हें मनोवांछित फल देने का वर्णन है। तत्पश्चात् हिमवान द्वारा पार्वती का शिव

के साथ विवाह का वर्णन करते हुए पुराण कुमार स्कंद (जिनके नाम पर पुराण स्कंद पुराण कहलाता है) के जन्म का वर्णन करता है तथा उसके द्वारा तारकासुर के वध की गाथा कहता है।

इसके पश्चात् शिवरात्रि व्रत की महिमा पर प्रकाश डालते हुए पुराणों के पंचलक्षण में से एक मन्वंतर के अनुरूप संक्षेप में काल-गणना दी गई है। व्यतीपात योग, श्रवण नक्षत्र, अमावस्या व पूर्णिमा तिथि तथा संक्रांति काल में दान की महत्ता का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया गया है कि भगवान शंकर की प्रिय तिथि अष्टमी है, गणेश जी की चतुर्थी, नागराज की पंचमी, कुमार स्कंद या कार्तिकेय की षष्ठी, सूर्यदेव की सप्तमी, दुर्गाजी की नवमी, ब्रह्माजी की दशमी, रुद्रदेव की एकादशी, विष्णु भगवान की द्वादशी, कामदेव की त्रयोदशी है। इनके अतिरिक्त चतुर्दशी भगवान शंकर की आराधना के लिए सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि इस तिथि पर उनकी कृपा सहज ही प्राप्त हो जाती है। कृष्णपक्ष में जो चतुर्दशी अर्धरात्रि तक व्याप्त रहने वाली है, इसमें सबको उपवास करना चाहिए, क्योंकि उस रात्रि में भगवान शंकर के पूजन से मनोवांछित कामना पूर्ण होती है। यही व्रत व तिथि शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है (पाठक गण कृपया भ्रमित न हों, प्रत्येक कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को मासशिवरात्रि व्रत कहा जाता है और फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की तिथि, जो जनसामान्य में शिवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध है, वह वस्तुतः महाशिवरात्रि व्रत है)।

## कुमारिका खंड

कुमारिका खंड का प्रारंभ पंचाप्सरस तीर्थ में अर्जुन द्वारा अप्सराओं के उद्धार से होता है। उग्रश्रवा मुनि इन पांच तीर्थों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कुमारेश, स्तम्भेश, वकरेखा, महाकालेश्वर और सिद्धेश इन पांच तीर्थों में बड़े-बड़े ग्राह या मगर निवास करते हैं, जो स्नान करने वालों को पकड़ कर अपना ग्रास बना लेते हैं। अतः लोगों ने ये तीर्थ त्याग दिए। महाभारत काल में अर्जुन ने यह वृत्तांत जानने के पश्चात् इन तीर्थों में जाकर उन मगरों को मारकर तीर्थों का पुनरुद्धार करने का विचार किया। अर्जुन ने जैसे ही पहले तीर्थ के जल में प्रवेश किया, तुरंत एक ग्राह ने उनका पैर पकड़ लिया। अर्जुन ने काफी देर तक संघर्ष करने के पश्चात् मगर को जल से बाहर खींच लिया, परंतु आश्चर्य ! बाहर आते ही वह ग्राह एक बहुत ही सुंदर अप्सरा में परिवर्तित हो गया और उसने अर्जुन को कहा कि हे कुंती पुत्र, हम पांच मकर पांच शापग्रस्त अप्सराएं वर्चा, सौरमेयी, सामेयी, बुदबुदा और लता हैं, जो आज आपके स्पर्श से शापमुक्त हो गई हैं।

वस्तुतः यह प्रसंग भारतीय वाङ्मय का बहुत ही प्रसिद्ध रूपक है, जिसकी

चर्चा वाल्मीकि रामायण के अरण्य कांड के सर्ग 11, श्लोक 11-20 में भी मिलती है। वहां भगवान राम को मुनि बताते हैं कि यहां पंचाप्सर नामक तड़ाग के मांडकर्णो ऋषि पांच अप्सराओं के साथ एकांत में भोग करता है। इस रूपक के एक-एक शब्द व घटनाक्रम में भारतीय ज्ञान मेधा व दर्शन का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। सर्वप्रथम एकांत शब्द से ही लें। एकांत अर्थात् अकेले में जीव मात्र। यह प्रकृति का नियम है कि एकांत कभी भी सहज और सामान्य नहीं होता। यह या तो दिव्य होता है अन्यथा पैशाचिक। अतः इसमें या तो योगी प्रवेश कर सकता है या भोगी। साधारणजन नहीं। अब दूसरा प्रमुख प्रश्न आता है कि एकांत में पांच अप्सराओं के साथ जल में ही विहार क्यों ? वस्तुतः इसे ऐसे कहा गया है कि पांच अप्सराओं या नारियों के साथ नार में विहार। ध्यान दीजिए, 'नार' जल का ही पर्यायवाची है। जल भगवान विष्णु या नारायण की शैय्या है, जो संसार या सृष्टि का पालन करते हैं। नारी भी नार तत्त्व है, क्योंकि विष्णु की नाभि की भांति नारी की भी नाभि के नीचे से सृजन पद्म का प्रस्फुटन होता है। पांच नारियां पंच तत्वमय मायावी सृष्टि हैं, जो जल से जन्म लेती हैं। जलसंभवा हैं। जब तक नारी नार व नारायण के सृजन धर्म से जुड़ी है, तभी तक सृष्टि की स्थिति है। जैसे ही पंच तत्वमय नारी नार की प्रकृति को त्याग देती है, उसी क्षण पर मानुषी न होकर परम दिव्य शक्ति है, चिर कुमारिका है। यही कारण है कि कुमारिका खंड का प्रारंभ इस रूपक से होता है।

इसके पश्चात् सारस्वत-कात्यायन संवाद के द्वारा दान व त्याग की महिमा पर प्रकाश डाला गया है। इसी संदर्भ में भृगु जी द्वारा दान के संबंध में एक बहुत ही जटिल पहेली के माध्यम से उसके महत्त्व को जनसाधारण तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है। पहेलिका या पहेली श्लोक रूप में इस प्रकार है :

**द्विहेतु षडधिष्ठानं षड्गं च द्विपाकयुक।**
**चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनांश दानमुच्यते।।**

अर्थात् दान के दो हेतु, 6 अधिष्ठान, 6 अंग, 2 फल, 4 प्रकार, 3 भेद और 3 विनाश साधन कौन-से हैं ?

इसका उत्तर सौराष्ट्रपति राजा धर्मवर्मा को देते हुए भृगु जी कहते हैं कि दान के दो हेतु इस प्रकार हैं—दान थोड़ा होना या बहुत होना यह इतने महत्त्व का नहीं है, जितना कि इसके हेतुओं **श्रद्धा** व **शक्ति** में है। यदि कोई धनकुबेर बिना श्रद्धा के अपना सर्वस्व ही दान कर दे, तो वह निष्फल और व्यर्थ है। दान के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिंदु है श्रद्धा। इसी से ही दान के धर्म का फल मिलता है। गरीब, अकिंचन व्यक्ति थोड़े-से श्रद्धा पूर्वक दान से भी पुण्य का अधिकारी

हो जाता है। श्रद्धा के साथ-साथ दान उसी धन का होना चाहिए, जिसमें मनुष्य समर्थ है अर्थात् उसकी शक्ति है। शक्ति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि कुटुंब के भलीभांति पोषण के पश्चात् जो अधिक बचता है या शेष रहता है, वही धन दान के योग्य है अन्यथा नहीं। यदि परिवारीजन दुःख से निर्वाह कर रहे हैं और परिवार का मुखिया या प्रमुख उस अवस्था में किसी समर्थ को दान देता है, तो वह दान विष तुल्य हो जाता है। परिवार के भरण-पोषण के व्यय में से काटकर किया गया श्राद्ध तक निष्फल हो जाता है अर्थात् चाहे कम-से-कम दान करें, परंतु अपनी सामर्थ्य शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक करें।

अब दान के 6 अधिष्ठानों को स्पष्ट करते हुए नारद जी कहते हैं कि धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय, दान के ये 6 आधार हैं। बिना किसी इच्छा के धर्मार्थ सुपात्र को दिया दान **धर्मदान** कहलाता है। मन में किसी इच्छा या संकल्प को धारण करके उसके निमित्त किया गया दान **अर्थ दान** कहलाता है। योग व कामसुख, सुरापान व जुए में जो धन व्यय किया जाता है, वह काम दान है, जो निरर्थक है। भरी सभा में या संबंधियों के सम्मुख याचना करने पर या मांगने पर जो कुछ लज्जावश दिया जाता है या देने का वचन दिया जाता है, वह **लज्जा दान** कहलाता है। किसी खुशी या हर्ष के अवसर पर यथा पुत्र जन्म, विवाह आदि के समय जो कुछ दिया जाता है, वह **हर्ष दान** के नाम से प्रसिद्ध है। निन्दा के भय से, अपने किसी सदस्य को छिपाने के लिए, हिंसा के निवारण के लिए भय दोहन (ब्लेकमेलिंग) के कारण जो कुछ दिया जाता है, वह **भय दान** कहलाता है।

दान के 6 अंग अर्थात् दान किसे, किस समय व किस प्रकार दिया जाना चाहिए। दाता अर्थात् देने वाला, प्रतिदाता अर्थात् दान लेने वाला, शुद्धि अर्थात् शुद्ध मन से, धर्मयुक्त अर्थात् धर्म से अर्जित, देश अर्थात् स्थान यथा गंगा तट अथवा अन्य कोई पवित्र स्थान व काल यथा ग्रहण, संक्रांति, अमावस्या आदि दान के 6 अंग हैं।

दान के दो फल इस प्रकार हैं : एक तो **परलौकिक** और दूसरा **इहलौकिक**। दान के चार प्रकार क्रमशः ध्रुव, त्रिक, काम्य व नैमितिक माने गए हैं। कुआं खोदवाना, वृक्ष लगवाना, नदी पर घाट बनवाना आदि कार्य जो सर्वोपयोगी कर्म हैं, उनके लिए दिया गया धन **ध्रुव** दान कहलाता है। प्रतिदिन घर आए याचक को जो वस्त्र दान में दिया जाता है, वह **त्रिक** कहलाता है। संतान, विजय, ऐश्वर्य आदि इच्छाओं की पूर्ति के लिए जो दान दिए जाते हैं, वह **काम्य** कहलाता है। **नैमेत्तिक** दान वह है, जो ग्रहण, संक्रांति, श्राद्ध, विद्या अध्ययन आदि के समय दिया जाता है। दान के तीन भेदों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि गृह, भूमि, विद्या, गौ, कूप, सुवर्ण व प्राण का दान **उत्तम** कोटि का माना गया है। अन्न, वस्त्र, अश्व, वाहन

आदि वस्तुओं का दान **मध्यम** कोटि का माना गया है। जूता, छाता, बर्तन, दीपक आदि **कनिष्ठ** श्रेणी के दान माने गए हैं। अब अंत में दान से प्राप्त होने वाले पुण्य का नाश करने वाले तीन हेतुओं को मुनिवर बताते हैं : 1. यदि दान देने के पश्चात् पश्चात्ताप है या दुःख हो, तो ऐसा दान **असुर-दान** कहलाता है और निष्फल हो जाता है। अश्रद्धापूर्वक दिया हुआ दान **राक्षस दान** है और वह भी कोई फल नहीं देता। दान देते समय ब्राह्मण, याचक या प्रतिदाता को यदि कुवचन बोले जाएं या फटकारा जाए, तो ऐसा दान **पैशाच दान** माना जाता है, जो व्यर्थ है।

इस दान के सप्तपदों की पहेलिका के पश्चात् कलाप ग्रामवासी सुत द्वारा नारद जी के जटिल प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से भारतीय दर्शन के गहन व गूढ़ रहस्यों को उद्‌घाटित किया गया है। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कलाप ग्राम (जो आज हिमाचल प्रदेश में सतलुज या शुतुद्रि नदी के तट पर किन्नोर जिले में आज भी काल्या के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे अमरकोष में यक्ष, गंधर्व, विद्याधर, सिद्धो, गुह्यो व किन्नरों युक्त देवभूमि माना गया है) में नारद जी के प्रश्नों का उत्तर देने वाला सुतनु ग्राम का सबसे छोटा ब्राह्मण बालक था। नारद जी ने उससे जो 12 प्रश्न पूछे, वह इस प्रकार हैं :

1. मातृका को कौन जानता है और वह कितने प्रकार की व कैसे अक्षरों से बनी होती है ?
2. 25 वस्तुओं से बने घर को कौन-सा ब्राह्मण जानता है ?
3. अनेक रूपों वाली स्त्री को एक रूप वाली बनाने की कला कौन जानता है ?
4. संसार में रहने वाला कौन पुरुष विचित्र कथा वाली वाक्य रचना को जानता है ?
5. कौन समुद्र में रहने वाले महान् ग्राह के बारे में जानता है ?
6. कौन आठ प्रकार के ब्राह्मणों को जानता है ?
7. चारों युगों के मूल दिवस कौन-से हैं ? अर्थात् चारों युग किस तिथि को प्रारंभ हुए हैं ? (ये तिथियां युगादि तिथियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनमें किया गया दान, जप, तप अक्षय माना जाता है।)
8. चारों युगों की भांति 14 मनुष्यों के मूल दिवस कौन-से हैं ?
9. भगवान सूर्य की आदि तिथि कौन-सी है ?
10. कौन उस भयंकर काले सर्प को जानता है, जो समस्त प्राणियों को उद्वेग में डाले रखता है ?
11. इस संसार में कौन दक्ष मनुष्यों में से भी दक्षतम अर्थात् चतुर व बुद्धिमान् है ?

12. इसे अच्छी तरह से समझना होगा। कौन ब्राह्मण दोनों मार्गों को जानता है और उनके बारे में बता सकता है ?

इन प्रश्नों का उत्तर सुतनु ने इस प्रकार दिया :

**प्रथम प्रश्न का उत्तर :** मातृका में 52 अक्षर हैं। उसमें सर्वप्रथम (अ+क्षर = अर्थात् जिसका क्षरण नहीं होता, कभी विनाश नहीं होता) ॐकार है। इसके अतिरिक्त उसमें 14 स्वर, 33 व्यंजन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—यह सब मिलाकर 52 मातृका वर्ण माने गए हैं (**सामान्यतः वर्णों को पृथक-पृथक तथा वर्णमाला को समुदित रूप में मातृका कहा गया है। संस्कृत वर्णमाला का प्रारंभ अ से होता है व समापन क्ष। अतः इसे अक्षमाला भी कहते हैं। ललितासहस्रनाम से इसे ही स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मातृका वर्णरूपिणी (श्लोक 167)। मंत्रशास्त्र में विलोममातृका, बहिर्मातृका व अंतर्मातृका का भी विवरण मिलता है। प्रचलित वर्णक्रम अ से क्ष तक के क्रम का यदि क्ष से अ तक उलटा या विलोम रूप हो, वही विलोम मातृका कहलाता है। लिपिबद्ध रूप में जब वर्णों को प्रकट किया जाता है, तो वहिर्मातृका कहलाती है। शरीर के विभिन्न चक्रों में जहां से यह वर्ण उदित होते हैं, या प्रकट होते हैं, वहां इनका जब न्यास किया जाता है, तो यह अंतर्मातृका कहलाती है। अ को मातृकाद्य, क्ष को मातृकान्त व ॐ को मातृकासूः भी कहते हैं।**)

इस मातृका को शिव ही पूर्णतः जानते हैं और उन्हीं के द्वारा सदैव जपी जाती है। सुतचु के मातृकाओं की व्याख्या के अंतर्गत मिथिला के कौयुम नामक ब्राह्मण के पुत्र के माध्यम से मातृकाओं का विशद विवेचन करते हुए कहा है कि अ से औ तक जो 14 स्वर हैं, वे मनुस्वरूप हैं। श्वेत, पाण्डु, लोहित, ताम्र, पीत, कपिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, अधिक पिंगल, थोड़ा पिंगल, तिरंगा व बहुरंगा और कबरा ये 14 वर्णों के रंग हैं। वर्तमान वैवस्वत मनु का वर्ण ऋकार स्वरूप है। इसका रंग काला बतलाया गया है। 'क' से 'ह' तक 33 देवता हैं। 'क' से 'ह' तक बारह आदित्य माने गए हैं। 'उ' से 'ब' तक 11 रुद्र माने जाते हैं। 'भ' से 'ष' तक अष्टवसु माने गए हैं। 'स' व 'ह' ये दोनों अश्विनीकुमार बताए गए हैं। अनुस्वार से जरायुज, विसर्ग से अण्डज, जिह्वामूलीय से स्वेदज और उपध्मानीय से उद्भिज जीवों की उत्पत्ति मानी गई है।

**दूसरे प्रश्न का उत्तर :** पंचमहाभूत, पंचकर्मेन्द्रियां (वाक, हाथ, पैर, गुदा, लिंग), पांच ज्ञानेंद्रियां (कान, नेत्र, रसना, नासिका, त्वचा), पांच विषय (रस, रूप, गंध, शब्द व स्पर्श), मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति व 25वें तत्त्व पुरुष से संपन्न यह शरीर ही वह घर है।

**तीसरे प्रश्न का उत्तर :** अनेक रूपों वाली स्त्री स्वयं जीव की बुद्धि है, जो नाना प्रकार के विषयों अथवा पदार्थों का सेवन करके अनेक रूप ग्रहण कर लेती है, परंतु विद्वान् व तत्वज्ञानी के तप व इंद्रियनिग्रह के द्वारा यह एकमात्र धर्म के प्रति उन्मुख होकर अनेकरूपा से एकरूपा हो जाती है।

**चौथे प्रश्न का उत्तर :** मुनियों ने जिन्हें नहीं कहा है, जो वचन ऋषियों व देवों को भी मान्य नहीं है अर्थात् शास्त्रानुकूल नहीं है, जिसमें विकृत काम प्रवृत्तियां हैं तथा जिस पर चिंतन व मनन नहीं किया जा सकता, वही विचित्र कथा वाली वाक्य रचना है।

**पांचवें प्रश्न का उत्तर :** लोभ ही इस संसार रूपी समुद्र में सबसे बड़ा ग्राह है। लोभ से ही पाप में प्रवृत्ति होती है, लोभ से ही क्रोध प्रकट होता है, लोभ से ही मन में कामनाएं व तृष्णाएं जागृत होती हैं। माया, अभिमान, जड़ता, स्पृहा, अविद्या और मूर्खता यह सब लोभ से उत्पन्न होती हैं। राजा जनक, युवनाश्व, बृषादर्भि, प्रसेनजित जैसे अनेक राजा लोभ पर विजय पाकर ही मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, अतः लोभ ही संसार में सबसे बड़ा ग्राह है।

**छठे प्रश्न का उत्तर :** विद्वता व ज्ञान के आधार पर ब्राह्मणों के आठ प्रकार के भेद इस प्रकार हैं :

1. याम, 2. ब्राह्मण, 3. श्रोत्रिय, 4. अनूचान, 5. भ्रूण, 6. ऋषिकल्प, 7. मुनि, 8. ऋषि।

**सातवें प्रश्न का उत्तर :** युगादि तिथियां इस प्रकार हैं :

| | | |
|---|---|---|
| **1. कार्तिक शुक्ल पक्ष नवमी** | – | सत्य युग की आदि तिथि |
| **2. वैशाख शुक्ल पक्ष तृतीया** | – | त्रेतायुग का प्रारंभ |
| **3. माघ कृष्ण पक्ष अमावस्या** | – | द्वापर की आदि तिथि |
| **4. भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी** | – | कलियुग की प्रारंभ तिथि |

इन तिथियों को किया गया दान, जप, तप, होम अक्षय होता है। सौ वर्षों तक दान करने का जो फल होता है, वह इस एक दिन में प्राप्त हो जाता है।

**आठवें प्रश्न का उत्तर :** चौदह मन्वन्तरों की प्रारंभिक तिथियां इस प्रकार हैं :

| आदि तिथि | मनु |
|---|---|
| 1. आश्विन शुक्ल नवमी | स्वायम्भुव मनु |
| 2. कार्तिक शुक्ल-द्वादशी | स्वारोचिष मनु |
| 3. चैत्र तृतीया | औत्तम |
| 4. भाद्रपद तृतीया | रैवत |
| 5. फाल्गुन अमावस्या | तामस |

| | |
|---|---|
| 6. पौष एकादशी | चाक्षुण |
| 7. आषाढ़ दशमी | वैवस्वत (यह मन्वन्तर इस समय वर्तमान है) |
| 8. माघ सप्तमी | सावर्णि |
| 9. श्रावण कृष्ण अष्टमी | ब्रह्म सावर्णि |
| 10. आषाढ़ पूर्णिमा | रुद्र सावर्णि |
| 11. कार्तिक पूर्णिमा | दक्ष सावर्णि |
| 12. फाल्गुन पूर्णिमा | धर्म सावर्णि |
| 13. चैत्र पूर्णिमा | रौच्य |
| 14. ज्येष्ठ पूर्णिमा | भौत्य |

**नवें प्रश्न का उत्तर :** भगवान सूर्य सर्वप्रथम माघ मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को रथारूढ़ हुए थे, अतः इस तिथि को किया गया सूर्य संबंधी दान सूर्य ग्रह के सभी कष्टों का नाश करता है, दरिद्रता से मुक्ति दिलाता है और वह दान व यज्ञ अक्षय होता है।

**दसवें प्रश्न का उत्तर :** काले सर्प की भांति सभी प्राणियों को उद्वेग में डालने वाली वस्तु **याचना** (किसी से कुछ मांगना) है, अतः कभी भी किसी से कुछ मांगने से जितना हो सके, उतना संकोच करना चाहिए।

**ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर :** सर्वाधिक दक्ष, चतुर व बुद्धिमान् मनुष्य वह है, जो अपने लक्ष्य, उद्देश्य या कर्म की इस लोक में सिद्धि का प्रयास करता है तथा साथ-ही-साथ मृत्यु के पश्चात् परलोक की भी प्राप्ति हेतु समुचित प्रयास करता है।

**बारहवें प्रश्न का उत्तर :** दोनों मार्ग अर्चि और धूम हैं, जिन्हें क्रमशः देवयान व पितृयान मार्ग भी कहते हैं। अर्चि मार्ग के द्वारा गया हुआ जीव पुनः आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता, उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है। धूम मार्ग से गए जीव का पुण्य क्षय होने पर पुनः मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ता है (विशेष विस्तार के लिए लेखक की पुस्तक 'उपनिषदों में क्या है' पुस्तक के छांदोग्य उपनिषद् खंड में पृष्ठ 82-83 देखें)।

इन प्रश्नों के समुचित उत्तर से प्रसन्न होकर नारद जी कलाप ग्राम के ब्राह्मणों को महीसागर संगम ले आए। यही नारद जी द्वारा ब्राह्मणों को भूमि दान करके पुण्य स्थान स्थापित करने का वर्णन है। इन्हीं प्रसंगों के बीच चिरकारी का वृतांत है तथा लोमश ऋषि द्वारा राजा इंद्रद्युम्न को अपने पूर्व जन्म का वृतांत सुनाकर शिवपूजन के महत्त्व का वर्णन है। इसके पश्चात् संवर्तमुनि द्वारा मालवा देश में उत्पन्न मही नामक नदी के समुद्र संगम या महीसागर संगम का वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रावण मास में यदि शनिवार को अमावस्या तिथि, सूर्य की संक्रांति

और व्यतीपात योग हो, तो **'पुष्कर'** नामक विशेष योग होता है। इस योग में यदि कोई शनिदेव की लौह की प्रतिमा को मंत्रों द्वारा पूजन करके स्थापित कर दे, तो उसका साढ़े साती का व अन्य सभी प्रकार के शनि कष्टों का पूर्णतः निवारण हो जाता है। साथ-ही-साथ यह भी वर्णित है कि जिन्हें सूर्य ग्रहण के कष्ट या दोष हो, वह सूर्य की स्वर्णमूर्ति बनाकर उसका मंत्रोक्त विधि से पूजन करें, तो सूर्य के अनिष्ट का पूर्णतः निवारण हो जाता है। महाराजा पृथु द्वारा कहे गए 18 नदियों के नाम की माला से मंगल, असीम पुण्य, सुख, सौभाग्य व समृद्धि की प्राप्ति होती है। यह माला इस प्रकार है—1. ताम्रा, 2. रस्या, 3. पयोवाहा, 4. पितृप्रीतिप्रदा, 5. शुभा, 6. शस्यमाला, 7. महासिंधु, 8. दातृदात्री, 9. पृथुस्तुता, 10. इंद्रद्युम्न कन्या, 11. क्षितिजन्मा, 12. इरावती, 13. महीपर्णा, 14. महीश्रृंगा, 15. गंगा, 16. पश्चिमवाहिनी, 17. नदी एवं 18. राजनदी।

इसके पश्चात् शुक्ल यजुर्वेद के शतरुद्रिय प्रकरण की भांति भर्तृयज्ञ मुनि द्वारा शतरुद्रिय का माहात्म्य वर्णित किया गया है। इसमें भगवान शिव के विभिन्न देवताओं, राजाओं, राक्षसों, नागों, ऋषियों व मुनियों द्वारा विभिन्न प्रकार के द्रव्यों द्वारा निर्मित सौ शिवलिंगों के जाप का वर्णन है :

| देवता/राजा या ऋषि आदि का नाम | शिवलिंग किस द्रव्य द्वारा निर्मित है | शिवलिंग या शिव का पर्याय या नाम, जिसका पूजन किया जाता है |
|---|---|---|
| 1. ब्रह्मा जी (देवता) | सुवर्ण | जगत प्रधान |
| 2. श्रीकृष्ण (देवता) | काला पत्थर | उर्जित |
| 3. सनकादि (महर्षि) | हृदय लिंग (अनाहत चक्र में स्थित) | जगद्बीज |
| 4. सप्तऋषि (महर्षि) | दर्भांकुर | विश्वयोनि |
| 5. नारद (देवर्षि) | आकाश तत्व | |
| 6. इन्द्र (देवता) | वज्र | विश्वात्मा |
| 7. सूर्य (देवता/ग्रह) | ताम्र | विश्वसृग |
| 8. चंद्रमा (देवता/ग्रह) | मुक्ता/मोती | जगत्पति |
| 9. अग्निदेव | नीलम | विश्वेश्वर |
| 10. बृहस्पति (देवता/ग्रह) | पुखराज | विश्वयोनि |
| 11. शुक्राचार्य (देवता/ग्रह) | हीरा | विश्वकर्मा |

| | | |
|---|---|---|
| 12. कुबेर (देवता) | सुवर्ण | ईश्वर |
| 13. विश्वदेव (देवता) | चांदी/रजत | जगद्गति |
| 14. यमराज (देवता) | पीतल | शम्भु |
| 15. वसुगण (देवता) | कांसा | स्वयम्भू |
| 16. मरुद्गण | त्रिलौह | उमेश/भूतेश |
| 17. राक्षस | लौह | भूतभव्यभवोद्भव |
| 18. गुह्यकगण | सीसा | योग |
| 19. जैगीष्य (मुनि) | ब्रह्मरंध (मस्तक में) | योगेश्वर |
| 20. निमि (राजा) | नेत्रों में | शर्व |
| 21. धन्वंतरि (देवता) | गोमय | सर्वलोकेश्वर |
| 22. गन्धर्वगण | लकड़ी | सर्वश्रेष्ठ |
| 23. श्रीरामचंद्र जी (अवतार) | वैदूर्यमणि | ज्येष्ठ |
| 24. बाणासुर | मरकतमणि | वशिष्ठ |
| 25. वरुण | स्फटिक | परमेश्वर |
| 26. नागगण | मूंगा | लोक भयंकर |
| 27. सरस्वती देवी | शुद्ध मुक्ता मोती | लोकभयाश्रित |
| 28. शनि देव | मही नदी के जल के भंवर से निर्मित शिवलिंग की | जगन्नाथ नाम से (शनिवार की अमावस्या की अर्द्धरात्रि में) |
| 29. रावण | चमेली के पुष्प | सुदुर्जय |
| 30. सिद्धगण | मानस लिंग | काममृत्युजरातिग |
| 31. राजा वलि | यज्ञमय लिंग | ज्ञानात्मा |
| 32. मरीचि (महर्षि) | पुष्प | ज्ञानगम्य |
| 33. सत्कर्म करने वाले देव | शुभकर्म | ज्ञानज्ञेय |
| 34. महर्षि फेनज | फेन (साग) | सुदुर्विद |
| 35. कपिल (ऋषि) | बालु | वरद |
| 36. सारस्वत (मुनि) | वाणीमय लिंग | वागीश्वर |
| 37. शिवगण | मूर्तिमय | रुद्र |
| 38. देवता | जाम्बूनद (सुवर्ण) | शितिकण्ठ |
| 39. बुध | शंख | कनिष्ठ |
| 40. अश्विनीकुमार | मिट्टी | सुवेधा |
| 41. गणेश जी | आटे का | कपर्दी |

| | | |
|---|---|---|
| 42. मंगल (ग्रह/देव) | मक्खन | कराल |
| 43. गरुड़ | ओदन | हर्यक्ष |
| 44. कामदेव | गुड़ | रतिय |
| 45. शची देवी (इंद्र की पत्नी) | लवण या नमक | बभ्रुकेश |
| 46. विश्वकर्मा | महलाकार | याम्य |
| 47. विभीषण | धूल | सुहृतम |
| 48. राजा सगर | वंशाकुरमय | संगत |
| 49. राहु (ग्रह/राक्षस) | हींग | गम्य |
| 50. लक्ष्मी | लेप्य | हरिनेत्र |
| 51. योगी जन | सर्वभूतों से | स्थाणु |
| 52. मनुष्य | नाना प्रकार के पदार्थों से | पुरुष |
| 53. नक्षत्र | तेजोमय | भग और भास्वर |
| 54. किन्नर | धातु | सुदीप्त |
| 55. ब्रह्मराक्षस | अस्थि (हड्डियों) | देवदेव |
| 56. चारण | दंत (दांतों का) | रंहस |
| 57. साध्यगण | सप्तलोकमय लिंग | बहुरूप |
| 58. ऋतुएं | दूर्वांकुरमय | सर्व |
| 59. अप्सराएं | कुंकुम | आभूषण |
| 60. उर्वशी (अप्सरा) | सिन्दूर | प्रियवासन |
| 61. गुरु ब्रह्मचारी | लिंग (चिह्न) | उष्णीवी |
| 62. योगिनियां | अलक्तक | सुवभ्रुंक् |
| 63. सिद्ध योगनियां | श्रीखंड | सहस्त्राक्ष |
| 64. डाकिनियां | मांस | सुमीढुष् |
| 65. मनुगण | अन्न | गिरीश |
| 66. अगस्त्य मुनि | ब्रीहि | सुशांत |
| 67. देवल मुनि | यव (जौ) | पति |
| 68. वाल्मीकि | वाल्मीक (दीमक की बांबी की मिट्टी) | चीरवासा |
| 69. प्रतर्दन/देवता | वाणलिंग (नर्मदा से प्राप्त होने वाले) | हिरण्यभुज |
| 70. दैत्य | राई | उग्र |

| | | |
|---|---|---|
| 71. दानव | निष्पावज | दिक्पति |
| 72. बादल | जल | पर्जन्य |
| 73. यक्ष | माष (उड़द) | भूतपति |
| 74. पितृगण | तिल | वृषपति |
| 75. गौतम | गोधूलि | गोपति |
| 76. वानप्रस्थ गण (आश्रम) | फल | वृक्षावृत |
| 77. स्वामी कार्तिकेय | पाषाण | सेनान्य |
| 78. अश्वतर (नाग) | धान्य | मध्यभू |
| 79. यज्ञकर्ता | पुरोड़ाश | स्त्रबहस्त |
| 80. यम | काल या समय | धन्वी |
| 81. परशुराम | यवांकुर | भार्गव |
| 82. पुरुरवा | घृत | बहुरूप |
| 83. श्रीमान्धता | शर्करा | बाहुयुग |
| 84. गाएं | दुग्ध | नेत्रसहस्त्रक |
| 85. पतिव्रता स्त्रियां | पति रूपी | विश्वपति |
| 86. नर-नारायण | मौक्रंजीमय | सहस्त्रशीर्ष |
| 87. पृथु | तार्क्ष्य | सहस्त्रचरण |
| 88. पक्षी | व्योम | सर्वात्मक् |
| 89. पृथ्वी | गंध | द्वितनु |
| 90. पाशुपतगण | भस्म | महेश्वर |
| 91. ऋषि | ज्ञानमय | चिरस्थान |
| 92. ब्राह्मण | ब्रह्मलिंग | ज्येष्ठ |
| 93. शेषनाग | गोरोचन | पशुपति |
| 94. वासुकि नाग | विष | शंकर |
| 95. तक्षक नाग | कालकूट | बहुरूप |
| 96. कार्कोटक नाग | हलाहल | पिंगाक्ष |
| 97. श्रृंगी | विष | धूर्जटि |
| 98. पुत्र | पितारूपी | विश्वरूप |
| 99. शिवादेवी | पारद (पारा) | त्रयम्बक |
| 100. मत्स्य आदि जलचर | शस्त्रमय | वृषाकपि |

भर्तृयज्ञ मुनि कहते हैं कि जो भी कोई प्रातःकाल उठकर इस शतरुद्रिय का

नियमपूर्वक पाठ करता है, उसकी मनोकामना पूर्ण होती है। पापी को पापों से मुक्ति मिल जाती है। रोगी के रोगों का शमन हो जाता है। दारिद्रय दूर हो जाता है। आयु, विद्या, यश, बल, कीर्ति व मंगल की प्राप्ति होती है। (यदि अधिक संभव न हो, तो शिवरात्रि को इस शतरुद्रिय का पाठ अवश्य करना चाहिए)।

इसके पश्चात् कुमार स्कंद द्वारा तीन शिवलिंगों की स्थापना व शिवलिंग की पूजा के विभिन्न रहस्यों का वर्णन है, यथा जो कष्टसाध्य दीर्घकालीन रोगों से ग्रस्त है, वह यदि दूध व दही से शिवलिंग को स्नान कराए, तो रोगमुक्त हो जाता है। इसके पश्चात् कुमार स्कंद द्वारा की गई स्तुति है, जो भी मनुष्य वैशाख मास की पूर्णिमा को इस स्तुति द्वारा शिवपूजन करेगा, भगवान शिव के स्वयं कथनानुसार उसका पूजन अक्षय होगा, उसे प्रियजनों से कभी वियोग नहीं होगा, उसके ग्रहों के कष्टों की शांति, दुख-दारिद्रय का नाश व निरोगी काया प्राप्त होगी। इसके पश्चात् शिवपूजन के विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों का विवरण है। जीवन भर सौभाग्यवती रहने के लिए पार्वती जी ने स्त्रियों को विशेष रूप से एक अनुष्ठान बताया है, जिसके अनुसार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को अर्थात् चैत्रीय नवरात्र या वासंतिय नवरात्र के तीसरे दिन, जो भी स्त्री आठ सौभाग्यसूचक वस्तुएं मुझे अर्पित करेगी (कुंकुम, पुष्प, चंदन, ताम्बूल, काजल, ईख, लवण, जीरा), अर्पित करने की एक विशिष्ट विधि है, इन सभी वस्तुओं को पैर सहित संपूर्ण अंगों से तोलकर अपने भार के बराबर दान कर दे। उस दिन भोजन में नमक का सेवन न करे। ऐसा करने पर वह कभी भी विधवा नहीं होगी। इसके पश्चात् भगवान कार्तिकेय के अष्टोत्तर (108) नामों का वर्णन है, जिन्हें कार्तिक पूर्णिमा पर जाप करने का विशेष प्रावधान है। इसके पश्चात् भूगोल का वर्णन, नवग्रहों की स्थिति, सात लोकों, इक्कीस नरकों व कालमान का विस्तृत विवरण है। राजा शतश्रृंग की बकरी जैसे मुख वाली पुत्री कुमारिका का वृत्तांत व भारतवर्ष के नौ खंडों की चर्चा है। महाकाल व करंधम के संवाद में श्राद्ध व्यवस्था से संबंधित विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाओं का समुचित उत्तर दिया गया है, जो आज के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है :

**करंधम :** भगवन, मेरे मन में संशय व संदेह रहता है कि मनुष्य जो कुछ भी पितरों को अर्पण या तर्पण करते हैं, जल तो जल में चला जाता है, पिंडदान में पिंड तो यहीं पृथ्वी पर पड़ा रहता है। भोजन तो ब्राह्मण खाता है, फिर यह सब पितरों को कैसे प्राप्त हो जाता है ? हम इसे कैसे मान लें ?

**महाकाल :** देवता व पितृ केवल गंध व रस से तृप्त हो जाते हैं। अन्न या जल का केवल सार तत्त्व वह ग्रहण करते हैं, स्थूल तत्त्व नहीं। जिस प्रकार मानव अन्न खाता है और उसका सूक्ष्म भाग यानी सार तत्त्व ही शरीर ग्रहण करता

है, शेष तो स्थूल रूप मल मार्ग से त्याग दिया जाता है। यही सूक्ष्म तत्त्व अन्नमय, प्राणमय व मनोमय आदि कोषों को पुष्ट करता है। इसी सूक्ष्म तत्व की शक्ति से प्राणमय व मनोमय शरीर से उत्सर्जित आभामंडल की शक्ति को पितर स्पर्श मात्र से अवशोषित कर लेते हैं (चांदी में किसी भी प्रकार की ऊष्मा को बहुत शीघ्रता से अवशोषित व उत्सर्जित करने की क्षमता होती है। यही कारण है कि स्पर्श ग्राहक पितरों के लिए श्राद्ध के समय चांदी के बर्तनों का प्रावधान है)। केश काले होने के कारण इस तेज के संप्रेषण में बाधक होते हैं और आभामंडल की उत्सर्जक क्षमता को प्रभावित करते हैं, यही कारण है कि माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् मुंडन करा दिया जाता है, जिससे कि सूक्ष्म, अदृश्य, ऊर्जा शक्ति का अधिकाधिक उत्सर्जन हो और पितृ ग्रहण कर सकें। इसी कारण तीर्थों में भी केश त्यागने का है, जिसे पौराणिक शब्दावली में कहा जाता है कि पाप या अवरोधक क्षमता बालों में स्थित हो जाते हैं, अतः उन्हें त्याग देना चाहिए।)

**करन्धम :** पितर भी तो कर्मों के अधीन होते हैं। संभव है कि उनका किसी योनि में कहीं और पुनर्जन्म हो गया हो या वह स्वर्ग या नरक में हों, ऐसे में वह कैसे आकर स्पर्श द्वारा सार तत्त्व ग्रहण करेंगे और वरदान देंगे ?

**महाकाल :** राजन, यह सत्य है कि पितर कर्मों के अधीन हैं, परंतु पितर भी दो प्रकार के हैं—नित्य व अनित्य। अनित्य पितर या स्वर्गवासी माता-पिता, दादा-दादी आदि अन्य सगे-संबंधी तो निश्चित रूप से कर्मानुसार विभिन्न लोकों और योनियों में होते हैं, परंतु नित्य पितर 7 हैं, जो क्रमशः चारों वर्णों में मूर्त रूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और तीन अमूर्त देवता, असुर और यक्ष रूप में होते हैं। यही सातों पितर संकल्प के समय अनित्य पितरों के भाग का श्राद्ध ग्रहण करके वह पितर जिस योनि में व जिस स्थिति में एवं जहां कहीं भी स्थित होता है, उसे उसी रूप में पहुंचा देते हैं और वरदान भी यह नित्य पितर देते हैं। अतः पितरों को मंत्रों के द्वारा शास्त्र सम्मत विधि से प्रतिग्रह प्रदान करना चाहिए। इसी संदर्भ में महाकाल राजा करन्धम को यह भी बताते हैं कि पितरों को तिल के साथ दान व देवताओं को अक्षत के साथ दान दिया जाना चाहिए। जल व कुश संबंध भी दोनों के लिए अनिवार्य है, अन्यथा दान को दैत्य शक्तियां नष्ट कर देती हैं। इसके पश्चात् कलियुग का वर्णन व राजवंशों का संक्षिप्त इतिहास है। इसी संदर्भ में सदाचार का निरूपण करते हुए कहा गया है कि दिन में उत्तर की ओर मुख करके व रात्रि में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके मल-मूत्र त्यागने से व्यक्ति की आयु क्षीण नहीं होती। नारदजी द्वारा महादित्य नाम से आदित्य की स्थापना व 108 नाम से की गई भगवान सूर्य की स्तुति सूर्य ग्रह से जनित सभी

पीड़ाओं का शमन करती है। यह पूजन विशिष्ट फलदायक होता है, यदि यह पूजन रविवार को षष्ठी या सप्तमी को लाल कमल, केसर, कनेर आदि के साथ किया जाए। इसके पश्चात् कमठ द्वारा शरीर के लक्षणों का वर्णन योग की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कमठ बतलाते हैं कि वायु, अग्नि और चंद्रमा इनकी ही शक्ति व तेज पांच-पांच भागों में विभक्त होकर शरीर में स्थित हैं। प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान ये पांच भेद वायु के हैं। उच्छवास (अंदर की ओर श्वास खींचना), निःश्वास (श्वास का बाहर निकालना) तथा अन्न व जल को शरीर के भीतर कंठ से नीचे पहुंचाने का कार्य प्राणवायु का है। इसकी स्थिति कंठ से लेकर मस्तक तक है। मल, मूत्र व वीर्य का त्याग तथा गर्भ को गर्भाशय से बाहर निकालना यह अपान वायु के कर्म हैं। इस वायु की स्थिति गुदा के ऊपर है। संपूर्ण शरीर के रक्त परिसंचरण व खाए हुए अन्न से संपूर्ण शरीर को पोषित करने का कार्य समान वायु का है। इसकी स्थिति संपूर्ण शरीर में है। बोलना व विचारों को अभिव्यक्त करने की शक्ति उदान वायु का कार्य है। इसकी स्थिति कंठ से लेकर मुख तक है। व्यान हृदय क्षेत्र में स्थित रहती है और आंखों को खोलने व बंद करने अर्थात् पलक झपकने व धातुओं को बढ़ाने का कार्य करती है।

**पाचक, रंजक, साधक, आलोचक व भ्राजक** इन पांच रूपों में अग्नि इस शरीर में स्थित होती है। पाचक अग्नि अमाशय में खाए अन्न को पकाती है अर्थात् पाचन में सहायता करती है। रंजक अग्नि यकृत में स्थिति रहती है और अन्न के सार को रक्त में परिवर्तित करने में सहायक होती है। साधक अग्नि हृदय में स्थित होकर बुद्धि व उत्साह में वृद्धि करती है। आलोचक अग्नि के तेज से ही मनुष्य में देखने की क्षमता होती है। भ्राजक अग्नि के तेज से ही अग्नि में क्रांति व तेज रहता है व इसके मंद होने से त्वचा में झुर्रियां पड़ जाती हैं।

**क्लेदक, बोधक, तर्पण, श्लेषण तथा आलंबक** इन पांच रूपों में चंद्रमा का तेज शरीर में स्थित होता है। क्लेदक आमाशय में स्थित होता है तथा पाचक अग्नि के तेज को नियंत्रित करता है। बोधक जिह्वा में स्थित होकर विभिन्न रसों का अनुभव व आस्वादन कराता है। तर्पण मस्तक में स्थित होकर पीयूष ग्रंथि से अमृत स्राव व नेत्रों को गीला रखने का कार्य करता है। अश्रु भी इसी के प्रभाव से आते हैं। श्लेषण शरीर की सभी संधियों में स्नेहक के रूप में स्थित होकर उन्हें परस्पर मिलाए रखता है। आलंबक हृदय में स्थित होकर संपूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।

इंद्रियों में छिद्र, रोमकूप तथा उदर का खाली भाग सब आकाश तत्त्व द्वारा जनित है। नासिका, केशाग्र, नख, अस्थि, त्वचा, मांस, हृदय, नाभि, स्नायु आदि

पृथ्वी तत्त्व के अंश माने गए हैं। नेत्रों का श्वेत भाग कफ़ से उत्पन्न होता है और काला भाग वायु द्वारा सृजित होता है। श्वेत भाग पिता प्रदत्त व काला भाग माता प्रदत्त होता है। इसी प्रकार शरीर के अंग-अंग के वर्णन के पश्चात् कमठ द्वारा मृत्यु व मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसका वर्णन किया गया है। मृत्यु होते ही जीवात्मा इस भौतिक शरीर के प्राणों से अंगूठे के पोर के बराबर अतिवाहिक शरीर धारण कर लेता है। यमपुरी तक पहुंचने में दस मुहूर्त या चार घंटे का समय लगता है, जहां कर्मानुसार उसका भविष्य निर्धारित होता है। केवल मनुष्य ही मरने के बाद प्रेत बनता है व यमलोक की यात्रा करता है, अन्य कोई जीव नहीं। शेष सभी मृत्यु के पश्चात् क्रमानुसार अन्य योनि में जन्म ले लेते हैं। इसके पश्चात् घटोत्कच का विवाह व वर्णरीक के जन्म की कथा का प्रसंग आता है। इसी प्रसंग के साथ माहेश्वर खंड के कुमारिका खंड का समापन हो जाता है।

## अरुणाचल माहात्म्य खंड

इस खंड में भगवान शंकर का ब्रह्मा व विष्णु के सम्मुख प्रकट होकर अरुणाचल नामक स्थावर लिंग के रूप में स्थित हो जाने के प्रसंग का वर्णन है तथा विभिन्न शिव तीर्थों की महिमा का वर्णन है। विभिन्न तीर्थ क्षेत्रों में भगवान शिव का कौन-सा विशिष्ट रूप स्थित है और उनके साथ किस विशिष्ट नाम रूप से पार्वती जी स्थित हैं, इसका विवरण भी यहां प्राप्त होता है। यथा **वाराणसी** क्षेत्र में महादेव जी **अविमुक्त** नाम से मां **विशालाक्षी** द्वारा पूजित हैं। **नैमिषारण्य** तीर्थ में भगवान शंकर **त्रिपुरासुरनाशक** के रूप में स्थित हैं। **कुरुक्षेत्र** में भगवान शिव **स्थाणु** नाम से तथा मां पार्वती **स्थाणुप्रिया** नाम से स्थित हैं। **कनखल** (हरिद्वार क्षेत्र में) भगवान शिव **उग्र** नाम से और गिरिजानंदिनी मां **उमा** नाम से निवास करती हैं। श्री शैल पर प्रभु **मल्लिकार्जुन** नाम से **भ्रमराम्बिका** देवी के साथ स्थित हैं। **कांचीपुरी** (कांची) में एक आम के वृक्ष के नीचे **कामाक्षी** देवी के साथ भगवान शिव **कामशासन** नाम से स्थित हैं। इसी खंड में शिव-पार्वती के सुखमय व मंगलकारी दांपत्य जीवन के विविध पक्षों का वर्णन किया गया है, जो बहुत ही रोचक व प्रेरणाप्रद है। मां दुर्गा द्वारा शुंभ-निशुंभ व महिषासुर के वध की कथा का भी यहां विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इसके पश्चात् विंध्यवासिनी द्वारा खड्गतीर्थ की उत्पत्ति के प्रसंग की गाथा तथा कलाधर के उद्धार की गाथा व पांड्य नरेश वज्रांगद द्वारा अरुणाचलेश्वर की आराधना का वर्णन है। इसके साथ ही माहेश्वर खंड का समापन हो जाता है।

## वैष्णव खंड

शिव व विष्णु की एकता के भाव को परिलक्षित करते हुए इस महापुराण में माहेश्वर खंड के तुरंत पश्चात् वैष्णव खंड प्रारंभ होता है, जो बहुत ही उपयोगी, ज्ञानवर्धक, पुण्यदायक व मोक्ष प्रदायक है। इस खंड में कार्तिक मास, मार्ग शीर्ष मास व वैशाख मास माहात्म्य में जिस प्रकार विभिन्न गूढ़ व रहस्यमय तथ्यों को प्रकट किया गया है, वैसा अन्यत्र सुलभ नहीं है। वैष्णवों के लिए यह तीन खंड गंगा, यमुना और सरस्वती (त्रिवेणी) की भांति पवित्र व पापों का शमन करने वाले हैं। वस्तुतः यह खंड 8 उपखंडों में विभाजित है, जिनमें से प्रथम तीन खंड, भूमिवाराह खंड या वेंकटाचल माहात्म्य, उत्कल खंड या पुरुषोत्तम क्षेत्र माहात्म्य एवं बदरिकाश्रम माहात्म्य तो स्थान विशेष का प्रादुर्भाव व उसकी महत्ता का वर्णन करते हैं, जबकि उसके पश्चात् के चार खंड क्रमशः कार्तिक मास माहात्म्य, मार्गशीर्ष माहात्म्य, श्रीमद्भागवत माहात्म्य व वैशाख मास माहात्म्य का वर्णन करते हैं। अंतिम व आठवां खंड श्री 'अयोध्या माहात्म्य' है, जिसमें अयोध्या क्षेत्र व भगवान राम के चरित का वर्णन है।

## भूमिवाराह खंड

भूमिवाराह खंड या वेकटांचल माहात्म्य वस्तुतः आजकल तिरुपति बालाजी के नाम से प्रसिद्ध व पावन तीर्थ के प्रादुर्भाव की गाथा कहता है। यह खंड विस्तार से इस तीर्थ के विभिन्न पुण्यदायक क्षेत्रों का वर्णन करता है। इस उपखंड का विशिष्ट माहात्म्य यह भी है कि नित्य प्रति असंख्य जनसाधारण भक्तिवश भगवान तिरुपति बालाजी के दर्शनार्थ यात्रा करते हैं, पर विरले लोग ही इस तथ्य से परिचित हैं कि इस तीर्थ में किस स्थान पर, किस तिथि विशेष व नक्षत्र विशेष, योग विशेष पर स्नान करने से करोड़ों गुना अधिक व वास्तविक फल प्राप्त होता है।

इस खंड का प्रारंभ मेरु पर्वत पर भगवान विष्णु के वाराह रूप की सेवा में भू देवी के उपस्थित होने से होता है तथा भगवान उसे श्रेष्ठ पर्वतों का माहात्म्य बताते-बताते श्रीवेंकटाचल पर्वत के वर्णन के साथ उस पर स्थित तीर्थों का माहात्म्य सुनाना प्रारंभ कर देते हैं। भगवान विष्णु स्वयं बताते हैं कि श्रीवेंकटाचल पर्वत पर चक्रतीर्थ, आकाश गंगा, दैवतीर्थ, कुमारधारिका तीर्थ, पापनाशनतीर्थ, पाण्डवतीर्थ तथा स्वामीपुष्करणीतीर्थ सात नारायणगिरि पर्वत (या तिरुपति बालाजी यात्रा) के सात प्रमुख, श्रेष्ठ व कल्याणकारी तीर्थ हैं। भगवान वाराह भू देवी या पृथ्वी को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे माधवि, कलियुग में मैं स्वयं वहां निवास करता हूं अर्थात् कलियुग में वेंकटाचल पर भगवान विष्णु निवास करते हैं। यदि कोई

सहस्रों योजन दूर से भी मन में शुद्ध भक्ति व श्रद्धा की भावना रखकर भगवान तिरुपति बालाजी को प्रणाम करता है, तो भगवान उसकी प्रार्थना सुनते हैं व स्वीकार करते हैं तथा उसे पापमुक्त कर देते हैं। अब इन प्रधान तीर्थों के स्नान व दर्शन का माहात्म्य बताते हुए स्वयं भगवान विष्णु कहते हैं कि माघ मास में जब सूर्य कुंभ राशि पर स्थित होता है, उस समय पूर्णिमा तिथि को यदि मघा नक्षत्र हो, तो कुमारधारिका पुष्करिणी में जो व्यक्ति मध्याह्न काल में स्नान करता है, उसे 12 वर्षों तक नियमपूर्वक गंगास्नान करने का फल प्राप्त हो जाता है अर्थात् असीम पुण्य की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् इस तीर्थ में अन्न दान भी अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार जब सूर्य मीन राशि में स्थित होते हैं, उस मास की पूर्णिमा यदि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र को पड़े, तो पर्वत गुहा में स्थित तुम्बतीर्थ में स्नान करने पर पुनर्जन्म नहीं होता है। इसी प्रकार तिरुपति तिरुमाला में प्रसिद्ध आकाशगंगा तीर्थ में यदि सूर्य के मेष राशि में स्थित होने पर पड़ने वाली पूर्णिमा तिथि को चित्रा नक्षत्र हो, तो आकाश गंगा में स्नान से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

इसी प्रकार वहां पर स्थित पांडव तीर्थ में सूर्य के वृष राशि में स्थित होने पर वैशाख मास में शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष की द्वादशी तिथि को रविवार या मंगलवार होने पर तथा रविवार होने पर पुष्य या हस्त नक्षत्र का योग होने पर, जो व्यक्ति स्नान करता है, वह इस लोक में फिर पूर्वजन्मों के दुष्कर्मों व इस जन्म के दुष्कर्मों के कारण कोई दुःख नहीं पाता है। इस पापनाशन तीर्थ में जो व्यक्ति शुक्ल या कृष्ण पक्ष के रविवार को सप्तमी तिथि तथा हस्त या पुष्य नक्षत्र का योग होने पर स्नान करता है, वह कई-कई जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है।

सूतजी इनके पश्चात् ऋषियों को आगे की कथा सुनाते हुए कहते हैं कि भगवान तिरुपति ब्रह्माजी या भगवान के श्वेत वाराह रूप का गुप्त मंत्र इस प्रकार है **ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा**। इस मंत्र का इस क्षेत्र में जाप करने से विशेष सिद्धि प्राप्त होती है। इसी संदर्भ में महाभारत की कथा का वह अंश भी आता है, जिसमें राजा परीक्षित को तक्षक द्वारा डसने पर उनकी मृत्यु होने और उनकी रक्षा न करने के पाप से कलंकित ब्राह्मण का **स्वामी पुष्करणी** में स्नान करने से शुद्ध होने की कथा है। तिरुपति बालाजी या श्रीवेंकटाचल पर स्थित कृष्ण तीर्थ का माहात्म्य बताते हुए सूतजी कहते हैं कि जब सूर्य मकर राशि पर स्थित हो और महातिथि पूर्णिमा पुष्य नक्षत्र से युक्त हो, तो वह इस तीर्थ में स्नान करने का सर्वोत्तम समय है। जो मनुष्य इस दिन सौभाग्य से या पूर्व जन्मों के प्रबल सत्कर्मों से कृष्णतीर्थ में स्नान करता है, उसके सब पापों का क्षय हो जाता है और उसकी सभी इच्छाएं पूर्ण होती हैं (अधिकांशतः सनातन हिंदू मतावलंबियों में ऐसी

मान्यता है कि यहां दर्शन से इच्छा पूर्ण होती है, परंतु इच्छा पूर्ण न होने पर उनमें नास्तिक विचारों का जन्म होता है। वस्तुतः लोकेषणा की प्राप्ति इन्हीं विशिष्ट तिथियों में संभव है, जो सौभाग्यवश कभी-कभी प्राप्त होती हैं, अतः इच्छुक भक्तगण कई-कई वर्ष पूर्व ऐसी शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करते हैं)।

इसके पश्चात् भद्रमति ब्राह्मण की कथा व पापनाशन तीर्थ की महिमा का वर्णन है। इसके पश्चात् आकाशगंगा तीर्थ का वर्णन है, जिसमें भगवान विष्णु स्वयं रामानुज से कहते हैं कि मेरे इस कथन को ध्यानपूर्वक सुनें कि जब सूर्य मेष राशि पर स्थित हो, उस समय यदि चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा हो, तो जो कोई भी इस आकाशगंगा तीर्थ में स्नान करेगा, उसे अनंत पुण्य की प्राप्ति होगी। इसके पश्चात् अर्जुन के श्री वेंकटाचल की तीर्थयात्रा व हनुमान जी की माता अंजना द्वारा आकाशगंगा तीर्थ में तपस्या व वायुदेव द्वारा उन्हें पुत्र देने के वर के साथ यह उपखंड समाप्त होता है (यहां यह बिंदु ध्यान देने योग्य है कि माता अंजना को भी वायुदेव का दर्शन व वर की प्राप्ति तभी हुई थी, जब उन्होंने सूर्य देव के मेष राशि में स्थित होने पर चित्रा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा को स्नान व तप किया था। इस विशिष्ट योग व तिथि पर आकाशगंगा में स्नान हो, तो मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है। परंतु ऐसा विशिष्ट योग बहुत दुर्लभ है।)

## उत्कलखंड पुरुषोत्तम माहात्म्य

इसके पश्चात् उत्कल खंड या पुरुषोत्तम क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन है, जिसमें महानदी के दक्षिण प्रदेश में समुद्र के तट पर स्थित भगवान जगन्नाथ के माहात्म्य का व राजा इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान जगन्नाथ, बलभद्र, सुदर्शन चक्र व सुभद्रा जी की स्थापना एवं रथ यात्रा का वर्णन है। पितरों की विशेष तृप्ति व उद्धार का उपाय बताते हुए जैमिनी ऋषि कहते हैं कि मघा नक्षत्र पितरों की है तथा इस नक्षत्र में पुरुषोत्तम क्षेत्र में सर्वतीर्थमय सरोवर के तट पर भगवान विष्णु के समीप नृसिंह व नीलकंठ के मध्यवर्ती अति पवित्र स्थान पर यदि कोई अपने पूर्वज या पितरों का श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, तो उसके समस्त पितरों का उद्धार हो जाता है। यदि यह मघा नक्षत्र पंचमी तिथि, शुक्ल पक्ष व आषाढ़ मास में हो, तो यह चतुष्पाद योग माना गया है, जो अत्यंत दुर्लभ व दिव्य है। इसके साथ ही जैमिनी ऋषि चातुर्मास्य की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सूर्य के कर्क राशि पर रहते हुए आषाढ़ शुक्ला एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक वर्षाकालिक चार मास जब भगवान विष्णु शयन करते हैं (लोक प्रचलित व्यवहार में ये तिथियां देवशयनी व देवोत्थान एकादशी के नाम से प्रसिद्ध हैं), उस समय जो व्यक्ति भगवान जगन्नाथ

के समीप रहता है, प्रतिदिन समुद्र में स्नान करके भगवान के दर्शन करता है, वह अश्वमेध यज्ञ के फल का भागी होता है और मोक्ष को प्राप्त होता है। द्वादश आदित्यों के पूजन की विधि व राजा इन्द्रद्युम्न के ब्रह्मलोक गमन के साथ इस उपखंड का उपसंहार हो जाता है।

## बदरिकाश्रम माहात्म्य

बदरिकाश्रम माहात्म्य का वर्णन करते हुए शंकर जी स्वयं कुमार स्कंद से कहते हैं कि बदरिकाश्रम या बद्रीनाथ तीर्थ में 5 शिलाएं हैं (ये शिलाएं आज भी वर्तमान हैं), जिनके नाम क्रमशः नारद शिला, मार्कण्डेय शिला, गरुड़ शिला, वाराही शिला और नारसिंही शिला हैं, जो संपूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाली हैं।

इसके पश्चात् भगवान शंकर ने अपने हाथ से जहां कपाल गिराया था, उस कपाल तीर्थ नामक पवित्र क्षेत्र का वर्णन करते हुए बताया है कि यहां किया हुआ स्नान, दान, तप व तर्पण अक्षय होता है। इस तीर्थ की एक प्रमुख विशिष्टता यह भी है कि जो भी मनुष्य एकाग्रचित्त होकर श्रद्धापूर्वक यहां केवल एक दिन और एक रात विष्णुसहस्रनाम या विष्णु गायत्री का जप करता है, उसका कोई भी मनोरथ हो, कोई भी इच्छा हो, कोई भी कठिन-से-कठिन कार्य हो, वह सिद्ध हो जाता है।

इसके पश्चात् बद्रीनाथ में प्रसिद्ध ब्रह्मतीर्थ है, जहां भगवान विष्णु ने ह्यग्रीव (घोड़े का मुख) अवतार धारण करके मधु कैटभ दैत्यों से वेदों को मुक्त कराया था। भगवान महादेव कुमार स्कंद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ब्रह्मकुंड में द्रव्य रूप में या गर्म जल के रूप में वेदों का तेज स्थित है तथा यहां किया हुआ स्नान, दान व तप अक्षय प्रभावी रहते हैं और जो भी व्यक्ति वैदिक ज्ञान की इच्छा रखकर तीन दिन उपवास रखता है, उसे स्वस्फूर्त वैदिक ऋचाओं का गुप्त रहस्य प्रकट हो जाता है।

इसी प्रकार पिता शंकर पुत्र स्कंद को पंचतीर्थ, सोमतीर्थ, द्वादशादित्यतीर्थ, चतुःस्त्रोततीर्थ, सत्यपदतीर्थ व नर-नारायण की महिमा बताते हैं। इसी प्रसंग में वह बताते हैं कि सोमकुंड तीर्थ में तीन रात तक भगवान विष्णु की पूजा करके जप करने वाले को मंत्र की सद्यः सिद्धि हो जाती है तथा द्वादशादित्य तीर्थ में रविवार को जब सप्तमी तिथि हो अथवा सूर्य संक्रांति हो, तो इस कुंड में स्नान से गहन त्वचा रोगों से मुक्ति हो जाती है। इसके पश्चात् ग्रंथ के श्रवण के माहात्म्य के साथ खंड का उपसंहार हो जाता है।

## कार्तिक मास माहात्म्य

इस उपखंड में सूतजी ऋषियों को कार्तिक मास के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इसी मास का माहात्म्य जानने के लिए एक बार नारद जी ने भी जगद्गुरु ब्रह्माजी से यही प्रश्न किया था, उन्होंने जो कुछ भी अपने श्री मुख से नारद जी को कहा, वही मैं यथावत् आपको सुनाता हूं। ब्रह्माजी ने कहा कि हे नारद ! मासों में कार्तिक, देवताओं में विष्णु और तीर्थों में बदरिकाश्रम श्रेष्ठ हैं व कलियुग में मनुष्यों को दुर्लभ हैं। कार्तिक मास में जो मनुष्य भूमि पर शयन करता है, वह युग-युग के पापों का नाश कर डालता है। जो मनुष्य कार्तिक मास में एक लाख तुलसी जल चढ़ाकर भगवान विष्णु की पूजा करता है, वह एक-एक दल पर तुलादान करने का फल पाता है। कार्तिक मास में विशेषरूप से इस भजन से श्री हरि विष्णु का स्मरण करना चाहिए–

**गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द मुकुंद कृष्ण।**
**गोविन्द गोविन्द रथांगपाणे गोविंद दामोदर माधवेति।।**

भागवत का पारायण व गीता का पाठ कार्तिक में पापों के हरने वाले व मोक्ष देने वाले हैं, जो कोई भी कार्तिक मास में तुलसी वृक्ष के नीचे श्री राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित करके उसका पूजन करता है, वह जीवन के सभी पापों से मुक्त हो जाता है। पलाश का वृक्ष ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न माना गया है, जो कोई कार्तिक मास में पलाश के पत्तल में भोजन करता है, उसको वर्ष भर कोई रोग नहीं होता और उस पर विष्णु भगवान की असीम कृपा होती है। कार्तिक मास में प्रातःकालीन स्नान का विशेष महत्त्व है, परंतु यह स्नान तभी फलदायक होता है, जब कुछ रात बाकी रहते ही स्नान कर लिया जाए। सूर्योदय काल में किया स्नान मध्यम श्रेणी का और सूर्योदय के पश्चात् किया स्नान विशेष पुण्यदायक व फलकारक नहीं होता। गरम जल की अपेक्षा ठंडे जल में स्नान का फल 10 गुना अधिक होता है। उससे भी 100 गुना अधिक पुण्य कुएं के जल के स्नान से प्राप्त होता है। किसी तीर्थ यथा नर्मदा, गंगा, यमुना, विन्ध्याचल आदि में किया स्नान कार्तिक में असीम पुण्यदायक व मंगलकारक होता है। कार्तिक में केले व आंवले के फल का दान व शीत से कष्ट पा रहे व्यक्तियों को दान बहुत ही पुण्यकारी कृत्य माना गया है। कार्तिक की एकादशी को निराहार रहकर व्रत करने से पूर्वजन्म के संचित पापों का क्षय होता है। कार्तिक मास में सनातन वैदिक मतावलंबियों अर्थात् हिंदुओं का पवित्र व पावन दीपावली पर्व होता है। इस पर्व को मनाने की वस्तुतः शास्त्रोक्त विधि क्या है, अब इसका वर्णन ब्रह्माजी प्रस्तुत करते हैं।

न केवल दीपावली के पर्व पर ही अपितु संपूर्ण कार्तिक मास में जो प्रातः स्नान से निवृत्त होकर आकाशदीप का दान करता है, उसे इस लोक में असीम संपत्ति, धन व पुत्र-पौत्र का लाभ होता है (आकाशदीप का अर्थ है छत या कंगूरे पर भगवान विष्णु के नाम का स्मरण करते हुए निम्नलिखित मंत्र द्वारा दीप जलाना)।

**दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधराय च।**
**नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्।।**

जो लोग कार्तिक मास में हरिबोधनी एकादशी को भगवान विष्णु के सम्मुख कपूर का दीपक जलाते हैं, उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती और दुर्घटना से उसकी रक्षा होती है।

त्रयोदशी से दीपावली तक के 3 तत्त्व का विवरण देते हुए पुनः ब्रह्माजी कहते हैं कि कार्तिक कृष्ण पक्ष में त्रयोदशी के प्रदोष काल में यमराज के लिए दीप और नैवेद्य अर्पित करने से अकालमृत्यु नहीं होती। यमराज को दीपदान निम्नलिखित मंत्र से करना चाहिए :

**मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह।**
**त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतामिति।।**

दीपावली से पहले की चतुर्दशी को लक्ष्मी जी तेल में निवास करती हैं। उस दिन शरीर में तेल लगाने से वर्ष भर धन की कमी नहीं रहती। चतुर्दशी को स्नान करके भीगे वस्त्रों से दो कुत्तों को दीपदान अवश्य करना चाहिए। यमराज के सेवक रूप कुत्तों को दीपदान निम्नलिखित मंत्र से करना चाहिए :

**शुनकौ श्यामशवलौ भ्रातरौ यमसेवकौ।**
**तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ।।**

इसके पश्चात् चौदह यमों का तर्पण भी करना चाहिए, जिनके नाम व मंत्र इस प्रकार हैं :

**यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।**
**वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च।।**
**औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।**
**वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः।।**

इन चौदह नामों में से प्रत्येक के अंत में नमः लगाकर एक-एक मंत्र को 3-3 बार कहकर तिल मिश्रित जल की 3-3 अंजलियां प्राचीनावीती होकर किया जाता है। (प्राचीनावीती में जनेऊ को दाहिने कंधे से होकर बाईं भुजा के नीचे से पहना जाता है।) ऐसा करने से वर्ष भर दुर्घटना, अपमृत्यु व अकाल मृत्यु नहीं होती। दीपावली वाले दिन लक्ष्मी पूजन के समय जो कमल के फूलों की शैय्या

बनाता है, उसके घर को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़तीं। लक्ष्मी जी को प्रसन्न करने के लिए जावित्री, लवंग, इलायची व कपूर के साथ गाय के दूध को पकाकर उसमें शक्कर मिलाकर लड्डू बनाए जाने चाहिए। ऐसे लड्डुओं के प्रसाद से लक्ष्मी विशेष रूप से प्रसन्न होती हैं। लक्ष्मी प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति आंवले से स्नान करें, तो उन्हें असीम धन-वैभव व सुख की प्राप्ति होती है। विशेष रूप से एकादशी को तो आंवले से ही स्नान करना चाहिए, परंतु नवमी, अमावस्या, सप्तमी, संक्रांति, रविवार, चंद्रग्रहण व सूर्यग्रहण के समय आंवले से स्नान नहीं करना चाहिए। जिस पुरुष या स्त्री की मृत्यु के पश्चात् उसकी अस्थियां गंगा जी में प्रवाहित करने से पूर्व आंवले के जल से धोई जाती हैं, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

इसके पश्चात् विष्णुदास और राजा चोल का भगवान के रूप में पुण्यस्वरूप स्थान पाने की कथा का प्रसंग है। तुलसी विवाह और भीमपंचक व्रत की विधि एवं महिमा तथा कार्तिक मास में **ॐ नमो नारायणाय** मंत्र से भगवान विष्णु की आराधना व विष्णु सहस्रनाम तथा गजेंद्रमोक्ष के नित्य पाठ का उपदेश देते हुए कार्तिक व्रत के उद्यापन के साथ माहात्म्य का उपसंहार हो जाता है।

## मार्गशीर्ष मास का माहात्म्य

भगवान ने गीता में स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है कि 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम' अर्थात् मासों में मार्गशीर्ष मास मैं स्वयं हूं। अतः मार्गशीर्ष में भी प्रातःकाल उठकर विधि पूर्वक स्नान करने का बड़ा महत्त्व है। द्वारका की मिट्टी को प्रतिदिन ललाट में लगाने से किए गए सत्कर्मों का फल कोटि गुना हो जाता है। इसी प्रकार इस मास में गोपीचंदन का तिलक लगाने से मनुष्य के पुण्य कर्मों का अक्षय फल उसे प्राप्त होता है, जो इस मास में भगवान विष्णु को तुलसी काष्ठमाला अर्पित करता है। उसके सभी पापों का नाश होता है और भगवान उससे विशेष प्रसन्न होते हैं। इसी संदर्भ में भगवान स्वयं कहते हैं कि जिसके घर में तुलसी का काष्ठ या पौधा होता है, उस घर में कलियुग का पाप नहीं फैलता।

भगवान विष्णु स्वयं कहते हैं कि मार्गशीर्ष मास में जो भी व्यक्ति मुझे मधु व शक्कर से स्नान कराता है, वह अगले जन्म में राजा होता है। जो द्वादशी या पूर्णिमा को मुझे गाय के दूध से स्नान कराता है, उसके बड़े-से-बड़े पापों को मैं तुरंत नष्ट कर देता हूं। जो कोई मुझे शंख में तीर्थ का जल लेकर उसकी एक बूंद से भी स्नान कराता है, उसके संपूर्ण कुल के योगक्षेम का मैं वहन करता हूं। जो वैष्णव भक्त मेरे मस्तक के ऊपर शंख का जल घुमाकर उससे अपने घर में छिड़काव करता है, वहां कभी अशुभ या अमंगल नहीं होता। केतकी का पत्ता और

पुष्प, भृंगराज, तुलसी का पत्ता और पुष्प मुझे बहुत प्रिय हैं और मैं इनको चढ़ाने से शीघ्र ही प्रसन्न होता हूं। लाल, नीला व सफेद कमल मुझे इस मास में विशेष प्रिय लगते हैं। गुग्गुल में भैंस का घी और शक्कर मिलाकर जो मुझे धूप देता है, उसकी इच्छा मैं अतिशीघ्र पूर्ण कर देता हूं। चमेली का फूल, इलायची, गुग्गुल, हरड़, कूट, राल, गुड़, छड़छरीला, वज्रनखी और इसके साथ धूप मिलाकर बनी दशांग धूप यदि कोई मार्गशीर्ष मास में मुझे देता है, तो मैं उसका अत्यंत दुर्लभ मनोरथ जैसे बल, स्त्री, पुत्र, धन व सौभाग्य आदि प्रदान करके पूर्ण करता हूं।

भगवान स्वयं कहते हैं कि कलिकाल में मार्गशीर्ष मास में यूं तो लोग अनेक नामों से मेरा पूजन करते हैं, परंतु मैं एक गूढ़ रहस्य की बात बताता हूं, जो मेरी दामोदर नाम से स्तुति करता है और प्रतिदिन सूर्योदय काल में 'ॐ दामोदराय नमः' इस मंत्र का तीन हजार बार जाप करता है और साढ़े तीन लाख जप पूर्ण हो जाने पर उसका उद्यापन करता है, उसकी मनोवांछित अभिलाषा मैं तुरंत पूर्ण कर देता हूं। विष्णुसहस्रनाम, भीष्मसतवराज, गजेंद्रमोक्ष, अनुस्मृति और गीता ये 5 स्तोत्र मुझे विशेष रूप से प्रिय हैं। मार्गशीर्ष मास में जो भक्त इनका पाठ करता है और शालिग्राम शिला का जल पी लेता है, उसको मृत्यु के समय कष्ट नहीं होता और वह उत्तम गति को प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष मास में मथुरा सेवन अर्थात् मथुरा जी में यमुना में स्नान के साथ इस उपखंड का उपसंहार हो जाता है।

(श्री मद्भागवत माहात्म्य में भागवत के माहात्म्य का वर्णन है, जो विस्तार से श्रीमद्भागवत पुराण में उपलब्ध है। कृपया उक्त ग्रंथ देखें)।

## वैशाख मास का माहात्म्य

इस खंड में राजा अम्बरीष के प्रश्न करने पर नारद जी वैशाख मास के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वैशाख मास में सब तीर्थ, तीर्थों के अतिरिक्त बाहर के जल में भी अर्थात् सर्वत्र जल में सूर्योदय से लेकर 6 दंड तक स्थित रहते हैं। इसी प्रकार इस मास में जल दान का विशेष महत्त्व है। नारद जी पुनः जल की महत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य इस मास में प्याऊ लगवाता है या किसी भी थके-मांदे व्यक्ति को जल देता है और गर्मी से व्याकुल किसी भी मनुष्य को छाता देता है या पंखे द्वारा हवा करता है, वह मानो साक्षात् भगवान विष्णु को संतुष्ट करता है और अपने सब पापों का नाश करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओं यथा तक्र अर्थात् लस्सी, खस, चंदन, अश्व, फल और शर्बत आदि का दान करता है, उसको विशेष पुण्य प्राप्त होता है। निषिद्ध वस्तुओं का वर्णन करते हुए नारद जी कहते हैं कि वैशाख माह

में उपरोक्त पुण्य तभी फलदाई होते हैं, जब तेल न लगाया जाए, दिन में सोया न जाए, खाट पर सोया न जाए, घर में नहाया न जाए, दो बार भोजन न किया जाए तथा रात को खाना न खाया जाए। जिस प्रकार कार्तिक में पलाश के दोने में भोजन करने पर व्यक्ति स्वस्थ रहता है व उसे मंगल व पुण्य की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार वैशाख मास में जो व्यक्ति पद्म अर्थात् कमल के पत्ते में भोजन करता है, वह स्वस्थ तो रहता ही है, अपने पापों का विमोचन करके विष्णुलोक में प्रतिष्ठित भी होता है। स्कंद पुराण में सात प्रकार की नदियां (गंगाएं) कही गई हैं : 1. गंगा, 2. वृद्ध गंगा, (गोदावरी), 3. यमुना, 4. सरस्वती, 5. कावेरी, 6. नर्मदा, 7. वेणी। यदि कोई व्यक्ति सौभाग्यवश वैशाख मास में इनमें से किसी एक गंगा में उषाकाल में स्नान करके निम्नलिखित मंत्र से भगवान विष्णु का पूजन करता है, उसका मनुष्य जीवन सफल हो जाता है।

**मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे खौ।**
**प्रातः स्नान करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव।।**

हे मधुसूदन ! हे देवेश्वर माधव ! मैं मेष राशि में सूर्य के स्थित होने पर वैशाख मास में प्रातःकाल स्नान करूंगा। आप इसे निर्विघ्न पूर्ण करें। इसके पश्चात् निम्नलिखित मंत्र से अर्घ्य दें :

**वैशाखे मेषरो भानौ प्रातःस्नानपरायणः।**
**अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन।।**

सूर्य के मेषराशि पर स्थित रहते हुए वैशाख मास में प्रातः स्नान के नियमानुसार मैं आपको अर्घ्य देता हूं। कृपया इसे ग्रहण करें।

इसके पश्चात् छत्रदान द्वारा हेमकांत का उद्धार राजा कीर्तिमान का अपने राज्य में वैशाख धर्म का पालन कराना व विष्णु जी का यमराज को वैशाख मास में से भाग दिलाने की कथाओं का वर्णन है। इस उपखंड में भगवान विष्णु के स्वरूप का विवेचन करते हुए उन्हें प्राण की संज्ञा दी गई है और यह भी बताया गया है कि कैसे शंख मुनि के श्राप के कारण प्राणों को भू लोक में महत्ता व प्रतिष्ठा से हीन रहना पड़ा। वैशाख मास के व्रत का पालन करने से ही राम-नाम जप करते-करते व्याध वाल्मीकि के रूप में प्रतिष्ठित हो सके तथा रामायण जैसे महाग्रंथ की रचना का महापुण्यदायक कर्म सफलतापूर्वक कर सके। इसके पश्चात् वैशाख मास की अमावस्या, अक्षय तृतीया (आखी तीज), द्वादशी के महत्त्व का वर्णन है तथा यह बताया गया है कि वैशाख मास की एकादशी को ही अमृत प्रकट हुआ तथा द्वादशी को ही भगवान विष्णु ने उसकी रक्षा की थी और त्रयोदशी को देवताओं ने उसका पान किया था। अतः इन तीन तिथियों को देवताओं ने वरदान दिया

था कि जो भी मनुष्य इन तिथियों में स्नान, दान, पुण्य, गीता पाठ व विष्णु सहस्रनाम का पाठ करेगा, उसका पुण्य अक्षय रहेगा तथा वह अपने सभी पाप व दुष्कर्मों से मुक्ति पा लेगा।

## श्री अयोध्या माहात्म्य

वैष्णव खंड के इस अंतिम उपखंड में भगवान राम की पवित्र व पावन जन्मस्थली अयोध्या जी का वर्णन है। अयोध्या जी के विभिन्न तीर्थों, उनकी भौगोलिक स्थिति तथा किस तिथि विशेष में वहां स्नान का विशेष फल होता है, इन सबका विशद व विस्तृत विवरण इस माहात्म्य में प्राप्त होता है। चंद्र सहस्रव्रत के वर्णन के साथ रघु के सर्वस्व दान व कौत्स की याचना के वर्णन के साथ यह बताया गया है कि यहां वैशाख युक्त द्वादशी को यात्रा करने से अभीष्ट की प्राप्ति होती है। सूतजी कहते हैं कि भगवान श्रीराम स्वयं अपने मुखारबिंद से माता-पिताजी को कहते हैं कि जो भी व्यक्ति मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी को अयोध्या के सीताकुंड तीर्थ में स्नान करेगा, उसके सभी अभीष्ट पूर्ण होंगे व उसके जन्म-जन्मांतरों के पापों का क्षय होगा। इसी पवित्र सीताकुंड के वायव्य कोण में स्थित क्षीरोदक तीर्थ में जहां राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था और अभिदेव क्षीर लेकर प्रकट हुए थे, वहां आश्विन शुक्ल एकादशी को व्रत करके स्नान करने वाला अपने मनोरथ को प्राप्त कर लेता है। इसी क्षीरोदक तीर्थ के नैऋत्यकोण में बृहस्पति का कुंड है, जहां भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि में (यदि बृहस्पतिवार हो तो अति उत्तम) किया स्नान व दान बृहस्पति ग्रह की पीड़ा से पूर्णतः मुक्त कर देता है तथा विभिन्न पापों का शमन कर परम पुण्य प्रदान करता है। यहीं पर स्थित उर्वशी कुंड में स्नान करने से पुरुष स्वर्ग में उर्वशी को प्राप्त करता है तथा उसको इस लोक में सुंदर स्त्री व सभी इच्छित अभिलाषाओं व वस्तुओं की प्राप्ति होती है। उर्वशी कुंड के निकट स्थित घोषार्क कुंड में रविवार को यदि सप्तमी तिथि हो, तो यहां स्नान करने से सूर्य ग्रह के सभी दोषों का निवारण हो जाता है तथा कुष्ट व अन्य त्वचा रोग का जड़ से निर्मूलन हो जाता है। अयोध्या के एक अन्य पवित्र स्थल सिंहपीठ की आश्विन शुक्ल के नवरात्र में यात्रा करने व वहां श्री हनुमान जी व रामजी के पूजन में भगवान हनुमान जी का दर्शन लाभ होता है। इसके पश्चात् अयोध्या की महिमा, सरयू जी का भगवान विष्णु के बाएं चरण के अंगूठे से निकलने के कारण परम पवित्र व पावन होने तथा गया कूप आदि तीर्थों के वर्णन के साथ अयोध्या माहात्म्य उपखंड व वैष्णव खंड का उपसंहार हो जाता है।

## ब्राह्म खंड

वैष्णव खंड के उपसंहार के पश्चात् स्कंदपुराण का यह तृतीय ब्राह्म नामक खंड प्रारंभ होता है, जिसमें सेतु-माहात्म्य, धर्मारण्य माहात्म्य, चातुर्मास्य माहात्म्य व ब्रह्मोत्तर खंड नामक 4 उपखंड हैं।

## सेतु माहात्म्य

सेतु माहात्म्य में रामेश्वर क्षेत्र की महिमा का वर्णन है, जहां भगवान राम द्वारा स्थापित बालुकामय शिवलिंग व परम भक्त श्री हनुमान जी द्वारा कैलाश से लाए गए शिवलिंग स्थापित हैं और विभिन्न प्रकार के 24 प्रधान तीर्थ हैं, जिनमें स्नान से विभिन्न प्रकार के पापों का विनाश होता है व विविध मनोरथों की पूर्ति होती है। इस पवित्र तीर्थ की एक विशिष्टता यह भी है कि जिस मनुष्य का स्मरण करके कोई इस पुनीत तीर्थ में स्नान करता है, उसको भी यह तीर्थ तुरंत निष्पाप कर देता है। इस तीर्थ संकुल में 24 प्रधान तीर्थ हैं, जिनके नाम क्रमशः चक्र तीर्थ, वेतालवरद तीर्थ, पापविनाशन तीर्थ, सीतासरोवर तीर्थ, मंगल तीर्थ, अमृतवापिका, ब्रह्मकुंड, हनुमत्कुंड, अगस्त्य तीर्थ, राम तीर्थ, लक्ष्मण तीर्थ, जय तीर्थ, लक्ष्मी तीर्थ, अग्नि तीर्थ, चक्र तीर्थ, शिव तीर्थ, शंख तीर्थ, यमुना तीर्थ, गंगा तीर्थ, गया तीर्थ, कोटि तीर्थ, साध्यामृत तीर्थ, मानस तीर्थ तथा धनुष कोटि तीर्थ हैं। इन विभिन्न तीर्थों का वर्णन करते हुए भगवान कृष्ण की गाथा का भी वर्णन आता है, जिसके अंत में यह बताया गया है कि कंस का वध करने के पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण ने भी मातुल वध का प्रायश्चित् यहीं आकर कोटि तीर्थ में किया था।

इसी प्रकार अश्वत्थामा द्वारा सोते हुए पाण्डव योद्धाओं के वध के पाप की इस धनुष्कोटि क्षेत्र तीर्थ में स्नान करने से मुक्ति होने की कथा का भी वर्णन है। भगवान श्रीराम द्वारा यहां जानकी जी द्वारा लीलापूर्वक बनाया गया बालू का रामेश्वर लिंग है, जो ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को बुधवार, हस्त नक्षत्र, गदकरण, आनंद व व्यतीपात योग कन्याराशि के चंद्रमा व वृषराशि के सूर्य के समय स्थापित किया गया था, संपूर्ण पापों को समूल नष्ट करने वाला है। इसकी स्थापना के कुछ समय पश्चात् ही श्री हनुमान जी द्वारा कैलाश से लाया गया शिवलिंग 'हनुमदीश्वर' स्थापित किया गया और यह नियम व प्रावधान है कि सर्वप्रथम इसी हनुमदीश्वर लिंग का दर्शन किया जाता है और उसके पश्चात् रामेश्वर लिंग के दर्शन का पुण्य प्राप्त होता है। इसके पश्चात् राजा पुण्यनिधि के यहां महालक्ष्मी का पुत्री के रूप में निवास व सेतुमाधव की महिमा का विस्तृत वर्णन व विवरण

है। इसके पश्चात् सेतु तीर्थ की यात्रा का क्रम दिया गया है, जिसे रामेश्वरम् की यात्रा करने वाले श्रद्धालुओं को अवश्य अपनाना चाहिए, जिससे उन्हें इस पवित्र यात्रा का फल प्राप्त हो सके। रामेश्वर पहुंचकर सर्वप्रथम समुद्र को प्रणाम करें।

प्रणाम करने का मंत्र इस प्रकार है :

**नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो ह्यपाभ्यते।**
**नमो हिरण्यशृंगाय नदीनां पतये नमः।**

इसके पश्चात् समुद्र को निम्नलिखित मंत्र से अर्घ्य दें :

**सर्वरत्नमयः श्रीमान् सर्वरत्नाकराकर।**
**सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।।**

इसके पश्चात् भगवान से निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करके आज्ञा लें।

**अशेषजगदाधर शंखचक्रगदाधर।**
**देहि देव ममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे।।**

सेतु की पूर्व दिशा में सुग्रीव का, दक्षिण में नल का, पश्चिम में असंद का, उत्तर में द्विविद का, मध्य में श्रीराम, लक्ष्मण व सीता का तथा अंगद, वायु पुत्र हनुमान तथा विभीषण का मन-ही-मन स्मरण करना चाहिए। प्रहलाद, नारद, पाराशर, पुण्डरीक, व्यास, अंबरीष, शुक, शौनक, भीष्म आदि पुण्यात्माओं का स्मरण करना चाहिए।

(वस्तुतः इन पुण्यात्माओं के नाम का श्लोक पाण्डवगीता में उपलब्ध है।)

इसके पश्चात् सागर में स्नान करने से पूर्व निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करें :

**वेदादिर्यो वेदवसिष्ठयोनिः सरित्पतिः सागरलयर्तेनः।**
**अग्निश्च ते योनिरिद्रा च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः।।**
**इदं तेऽन्याभिरस्यमानभद्भिर्याः काश्च सिन्धुः प्रविशन्त्यापः।**
**सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहामि पापं शरीरात्सशिरस्कोऽभ्युचेत्पद।।**

इस प्रकार तीन बार डुबकी लगाकर स्नान करें। स्नान के पश्चात् पिप्पलाद, कवि, कण्व, कृतांत, जीवितेश्वर, मन्यु, कालरात्रि, विद्या, अहः, गणेश्वर, वशिष्ठ, वामदेव, पराशर, उमापति, वाल्मीकि, नारद, वालारिवल्य, मुनिगण, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गंधमादन, मैन्द, द्विविद, शरभ, ऋषभ, सुग्रीव, हनुमान, वेगदर्शन, राम, लक्ष्मण, सीता व विभु—इन सबका **नमः** सहित उच्चारण व तर्पण करना चाहिए। जैसे पिप्लादाय नमः, कवयै नमः और इसके पश्चात् कपि तीर्थ, सीता कुंड व ऋणमोचन में स्नान करें। लक्ष्मण तीर्थ में स्यान से पूर्व कंठ से ऊपर के भाग का क्षौर कराकर मन-ही-मन अपने पापों का चिंतन करके स्नान करें।

(जिन पापों का चिंतन करते हुए स्नान किया जाता है, वे निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं।)

## 14. वामन पुराण

भगवान विष्णु के वामन अवतार लेने के कारण यह पुराण वामन पुराण कहलाता है तथा अपने नाम व गुण के अनुसार यह छोटे आकार का है। इसकी श्लोक-संख्या दस हजार है और यह पूर्व तथा उत्तर—दो भागों में विभक्त है, परंतु इसका चार संहिताओं का बृहद् वामनसंज्ञक उत्तर भाग अप्राप्य है। वर्तमान में इस पुराण का पूर्व भाग ही उपलब्ध है, जिसकी श्लोक संख्या लगभग छः हजार है। बीच-बीच में कुछ गद्यात्मक अंश भी हैं। इसमें 97 अध्याय हैं, जिनमें लगभग 28 अध्याय (अ. 23 के बाद काशीराज-संस्करण में) सरोमाहात्म्य के नाम से कहे गए हैं। कुरुक्षेत्र में स्थित ब्रह्मसरोवर माहात्म्य को ही सरोमाहात्म्य कहा गया है। इसमें कुरुक्षेत्र तथा उसके अंतर्गत कुरुजाङ्गल, पृथूदक आदि तीर्थों का विस्तार से विवेचन तथा माहात्म्य है। बालिका यज्ञ कुरुक्षेत्र में ही होने की बात कही गई है। (वामन. 62/52)। अठारह महापुराणों में यह पुराण चौदहवें स्थान पर है। इस पुराण के आदि वक्ता महर्षि पुलस्त्य हैं और आदि प्रश्नकर्ता तथा श्रोता देवर्षि नारद हैं। नारदजी ने व्यास को, व्यास ने अपने शिष्य लोमहर्षण सूत को तथा सूत जी ने नैमिषारण्य में शौनक आदि मुनियों को इस पुराण की कथा सुनाई थी।

इस पुराण में भगवान् वामन नर-नारायण तथा भगवती दुर्गा के उत्तम चरित्र वर्णन के साथ प्रह्लाद तथा श्रीदामा आदि भक्तों के भी बड़े रम्य आख्यान हैं। इसमें दैत्यराज बलि से सम्बद्ध वामनावतार की प्रसिद्ध कथा के अतिरिक्त वामनावतार की एक अन्य कथा भी आई है, जो दैत्यराज धुन्धु के आख्यान में वर्णित है। गजेंद्रमोक्ष की कथा और मूल स्तोत्र भी इसमें हैं। मुख्यतः वैष्णव पुराण होते हुए भी इसमें शैव तथा शाक्तादि धर्मों की श्रेष्ठता का प्रदर्शन करते हुए सर्वत्र ऐक्य भाव की प्रतिष्ठा स्थापित है। इसके अलावा इस पुराण में अनेक महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयों का वर्णन है।

इस पुराण के मुख्य वर्ण्य विषय संक्षेप में इस प्रकार हैं—देवर्षि नारद द्वारा पुलस्त्यजी से वामनावतार की कथा का कथन, शिवजी का लीलाचरित्र एवं जीमूतवाहन-आख्यान, ब्रह्मा का मस्तक-छेदन, कपालमोचन-आख्यान, दक्षयज्ञ-विध्वंस, हरि का कालरूप, कामदेव-दहन, प्रह्लाद-नारायण के बीच युद्ध, भुवनकोष, दुर्गाचरित एवं कुरुक्षेत्र का वर्णन, पार्वती-जन्म, गौरी-आख्यान, स्कंदचरित अंधक-वध, जाबालि कथा, मरुद्गणों की उत्पत्ति, बलि का आख्यान, लक्ष्मीचरित, प्रेतोपाख्यान,

नक्षत्र-पुरुषाख्यान आदि वर्णित हैं। इसमें कुछ ऐसे विषय भी आए हैं, जो अन्य पुराणों में नहीं मिलते अथवा मात्रा में मिलते हैं। जैसे शिव के विभिन्न अंगों के भूषणों के रूप में सर्पो के नामों का उल्लेख, प्रह्लाद का बदरिकाश्रम में नर-नारायण के साथ युद्ध, देवों और असुरों के पृथक्-पृथक् वाहनों का वर्णन, कर्कचतुर्थी-व्रत कथा, कायज्जली-व्रत कथा, गंगा मानसिक-स्नान, गंगा-माहात्म्य, दधि घामनस्तोत्र, वराह-माहात्म्य, वेंकटेशगिरी माहात्म्य, त्रिविक्रम (विष्णु) द्वारा धुंधु-वध, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा तथा वामन के विधि स्वरूपों तथा निवास-स्थानों का वर्णन। अंत में भक्त प्रह्लाद द्वारा अपने पौत्र बलि को विष्णु भक्ति का माहात्म्योपदेश, विष्णु की पूजा-विधि और विष्णु के मंदिर बनवाने तथा उसे वैष्णवी दीक्षा में दीक्षित करने के वृत्तांत से पुराण का उपसंहार है। फलश्रुति में पुराण के पाठ से अथवा श्रवण से समस्त पापों का समूल क्षय होता है और विष्णुपद की प्राप्ति होती है—इसके लिए इस एकादशाक्षर मंत्र **'नमो नमः कारणवामनाय'** के जप का माहात्म्य बतलाया गया है। वामन पुराण में विभिन्न ऋतुओं व प्रकृति का बहुत ही सुंदर व मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया गया है। वर्षा ऋतु का मनोहर वर्णन शिव-पार्वती संवाद के माध्यम से प्रकट किया गया है।

वर्षा ऋतु में जलवृष्टि से त्रस्त पार्वती जी शिवजी से कहती हैं कि आप एक अच्छा-सा घर बनाइए, जिससे हम वर्षा में शांतिपूर्वक रह सकें। शिव ने उपहास पूर्वक कहा कि हे पार्वती! मैं तो श्मशान का निवासी हूं, व्याघ्र चर्म से शरीर ढ़ंकने वाला हूं और सर्प की माला धारण किए हूं, मैं घर कैसे बनाऊं ? इस पर माता पार्वती और रुष्ट हो गईं और कहने लगीं कि प्रभु, मैं जल में भीग रही हूं, घनघोर वर्षा हो रही है, ऐसे में आप मेरी कैसे रक्षा करेंगे ? और यदि आप घर बनाना नहीं चाहते, तो और क्या उपाय करेंगे ? इस पर भगवान चंद्रमौलि ने कहा, हे पार्वती! घर तो मैं नहीं बना सकता, परंतु हां, तुम्हारे शरीर को जल स्पर्श न करे, इसका प्रबंध मैं कर देता हूं। यह कहकर भगवान ने बादलों को इस प्रकार आरूढ़ होकर चारों ओर से ढंक लिया कि सती को जल की एक बूंद भी स्पर्श न कर सके। तभी से भगवान शंकर का नाम 'जीमूतवाहन' हो गया।

## 15. कूर्म पुराण

विष्णु जी ने कूर्म या कच्छप का रूप धारण करके भक्ति, ज्ञान व मोक्ष का जो उपदेश राजा इन्द्रद्युम्न को दिया था, उसी उपदेश को द्वादश वर्षीय महासत्र में रोमहर्षण (सूतजी) ने शौनक आदि 88 हजार ऋषियों को संवाद के रूप में अभिव्यक्त किया था। वही संवाद कालांतर में कूर्म पुराण के नाम से विख्यात हुआ तथा चार संहिताओं

में विभक्त किया गया : 1. ब्राह्मी, 2. भागवती, 3. शौरी एवं 4. वैष्णवी। अन्य संहिताएं तो अब उपलब्ध नहीं हैं, केवल ब्राह्मी संहिता के आधार पर ही कूर्म पुराण को दो भागों 1. पूर्व एवं 2. उपरि में विभक्त करके उसका अध्ययन किया जाता है। पूर्व विभाग में 51 व उपरि विभाग में 44 अध्याय हैं। उपरि विभाग में ईश्वर गीता व व्यास गीता इस पुराण की प्रमुख दार्शनिक क्षेत्र में उपलब्धियां हैं। इसकी संपूर्ण संहिता में 6 हजार श्लोक हैं, जबकि मूल कूर्म पुराण में 18 हजार श्लोक थे अर्थात् वर्तमान में मूल ग्रंथ का केवल तृतीयांश ही उपलब्ध है। इस पुराण में पंचलक्षणों—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित का पूर्ण विवेचन है। त्रिमूर्ति व त्रि-संप्रदायों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु व महेश तथा वैष्णव, शाक्त व शैव संप्रदायों का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ में शक्ति पूजा के विशिष्ट व विशेष महत्त्व को स्पष्ट किया गया है और शक्ति के प्रभावी सहस्रनाम दिए हुए हैं।

## पूर्व विभाग

पूर्व-विभाग के प्रथम अध्याय का प्रारंभ सूतजी की उत्पत्ति, उनके रोमहर्षण नाम पड़ने से प्रारंभ होता है (सूतजी का नाम रोमहर्षण इसलिए पड़ गया, क्योंकि उनके प्रवचनों को सुनने से मुनियों व वेदव्यास जी के समस्त रोम हर्षित हो गए थे)। इसके पश्चात् महापुराणों व उपपुराणों के नाम व उनकी संख्या दी गई है। यहां वस्तुतः महापुराण का तात्पर्य 18 पुराणों से ही है। अठारह उपपुराण अवश्य रूप से जानने योग्य हैं। ये हैं—1. सनत्कुमार उपपुराण, 2. नरसिंह, 3. स्कंद (यह पुराणों से भिन्न है), 4. शिवधर्म, 5. आश्चर्य, 6. नारद, 7. कपिल, 8. मानव, 9. उशना, 10. ब्रह्मांड, 11. वरुण, 12. कालिका, 13. माहेश्वर, 14. साम्ब, 15. सौर, 16. पाराशर, 17. मारीच और 18. भार्गव उपपुराण। इसके पश्चात् समुद्र मंथन से उत्पन्न विष्णु माया का वर्णन है तथा राजा इंद्रद्युम्न द्वारा भगवान विष्णु की परामाया की स्तुति व परामाया द्वारा नारायण राजा को स्वयं ज्ञान देने के वरदान का वर्णन है।

द्वितीय अध्याय में भगवान विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्माजी के प्रादुर्भाव, पुराण, रुद्र तथा लक्ष्मी का प्राकट्य, अपने नौ मानस पुत्रों मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि व वशिष्ठ की उत्पत्ति व चतुर्वर्ण की सृष्टि की रचना का वर्णन है। इसके पश्चात् वेदों में निहित अमूल्य ज्ञान की महिमा व वर्णाश्रम धर्म का विशद विवेचन है। तदनन्तर आश्रमों के द्वैविध्य का वर्णन है।

कूर्म के रूप में ईश्वर स्वयं ऋषियों से कहते हैं कि वेदों में बतलाया गया

है कि चारों आश्रमों 1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थ, 3. वानप्रस्थ, 4. संन्यास के दो-दो प्रकार के भेद होते हैं। ब्रह्मचारी के दो भेद हैं : उपकुवणिक और नैष्ठिक, जो ब्रह्मचारी विधिवत् वेदों का अध्ययन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, उसे **उपकुवणिक** ब्रह्मचारी कहते हैं और जो यावज्जीवन गुरु के निकट रहकर ब्रह्म ज्ञान का सतत् अभ्यास करता है, वह **नैष्ठिक** ब्रह्मचारी कहलाता है। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम के भी दो भेद हैं : 1. साधक और 2. उदासीन। जो गृहस्थी केवल कुटुंब के भरण-पोषण में ही व्यस्त रहता है, वह गृहस्थ **साधक** कहलाता है और जो गृहस्थी देवऋण, पितृऋण व ऋषिऋण इनसे उऋण होकर निर्लिप्त भाव से स्त्री व धन आदि के प्रति कर्तव्य का वहन करता है, वह गृहस्थ **उदासीन** कहलाता है।

इसी प्रकार वानप्रस्थ आश्रम के दो भेद क्रमशः तापस व सांन्यासिक हैं। जो वन में हवन, अनुष्ठान व स्वाध्याय करता है, वह वानप्रस्थी **तापस** कहलाता है और जो साधक अत्यंत तप से अपने शरीर को कृश व क्षीण कर लेता है तथा निरंतर ध्यानमग्न रहता है, वह **सांन्यासिक** वानप्रस्थी कहलाता है। इसी प्रकार संन्यास आश्रम के दो भेद हैं : जो साधक नित्य योगाभ्यास द्वारा इंद्रियों को जीतने वाला तथा ब्रह्मसायुज्य के लिए प्रयत्नशील मोक्ष की इच्छा रखने वाला साधक **पारमेष्ठिक** कहलाता है तथा जो साधक स्वयं में ब्रह्म का साक्षात्कार कर अपनी आत्मा में परमात्मा की दिव्य ज्योति देखता है, वह **योगी** कहलाता है। इसके पश्चात् त्रिपुंड्र-तिलक व भस्म धारण की महिमा के साथ द्वितीय अध्याय समाप्त होता है।

तृतीय अध्याय में आश्रम धर्म का वर्णन है तथा संन्यास ग्रहण करने का क्रम व ब्रह्मार्पण के लक्षण के साथ निष्काम कर्मयोग की महिमा का वर्णन है। भगवान सूर्य स्वयं अपने ही मुख से ऋषियों को कहते हैं कि क्रमानुसार तो ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ व संन्याय ये चार आश्रम हैं, परंतु कभी-कभी इनके इस क्रम में परिवर्तन भी हो जाता है।

**सामान्य स्थिति → ब्रह्मचर्य → गृहस्थ → वानप्रस्थ → संन्यास**

**असाधारण स्थिति → ब्रह्मचर्य → संन्यास**

जो पूर्व जन्मों के संस्कारवश ज्ञान-विज्ञान से संपन्न व परम वैराग्य की भावना से व्याप्त हो, ऐसा ब्रह्मचर्य यदि सीधे संन्यास आश्रम ग्रहण करना चाहे, तो ऐसा करना शास्त्र सम्मत है (ऐसा उदाहरण व्यास जी के पुत्र शुकदेव के संदर्भ में विशेष प्रसिद्ध है, जो तुरंत ही संन्यास आश्रम में प्रवृत्त हो गए थे)। सामान्य स्थिति में ब्रह्मचर्य के पश्चात् विधिपूर्वक स्त्री से विवाह करके विविध यज्ञों का अनुष्ठान करें तथा पुत्र उत्पन्न करें व इस अवस्था के बीच में गृहस्थाश्रम का परित्याग करके संन्यास ग्रहण करने की अनुमति नहीं है अर्थात् ऐसा शास्त्र सम्मत नहीं है। इसी

प्रकार वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने के पश्चात् पुनः गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का प्रावधान नहीं है और न ही संन्यासी वानप्रस्थ में लौट सकता है। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में प्रवृत्त व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम में नहीं लौट सकता। इसके पश्चात् आसक्ति रहित व निर्लिप्त भाव से, निष्काम भाव से जो भी व्यक्ति शास्त्र सम्मत कर्म करता है, वह मोक्ष का अधिकारी है।

चौथे अध्याय में सांख्य सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांड की सृष्टि के सृजन का विवेचन है तथा पंचीकरण प्रक्रिया का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, परमात्मा के विभिन्न नामों की बहुत ही सुंदर व्याख्या इस अध्याय में मिलती है। यथा, भगवान को 'आदिदेव' व 'अज' नामों से इसलिए संबोधित किया जाता है, क्योंकि वह सबसे पहले प्रादुर्भूत हुए और सृष्टि का सृजन उन्हीं से प्रारंभ हुआ, इसलिए वह आदिदेव हैं। भगवान क्योंकि अयोनिज हैं, अर्थात् उनका जन्म सांसारिक मैथुनी सृष्टि विधि से नहीं हुआ, अपितु यह सृष्टि ही उनकी माया का विस्तार है, अतः वह स्वयं अजन्मा या 'अज' हैं। वह संपूर्ण प्रजा का पालन करते हैं, अतः **प्रजापति** हैं। सबको अपने वश में रखने वाले, परंतु स्वयं किसी के वश में न रहने के कारण वह **'ईश्वर'** कहलाते हैं। उनकी सर्वत्र अबाध गति होने के कारण वह ऋषि कहलाते हैं।

इसी प्रकार भगवान के स्वयंभू, नारायण, विष्णु व महादेव आदि नामों की व्याख्या की गई है। पांचवें अध्याय में ब्रह्माजी की आयु का वर्णन, काल गणना, युग, मन्वंतर संकल्प आदि को विस्तार से बतलाया गया है तथा अंत में प्राकृत, प्रलय व काल की महिमा का वर्णन किया गया है। ब्रह्माजी की आयु उनके मान से 100 वर्ष की मानी गई है। ब्रह्माजी के 100 वर्ष की आयु को 'पर' कहते हैं और इसका आधा मान परार्ध (पर+अर्ध) कहलाता है। (इसीलिए हम किसी भी शुभ कार्य या अनुष्ठान के संकल्प में वर्तमान में द्वितीय परार्ध का उल्लेख करते हैं अर्थात् इस समय ब्रह्माजी का द्वितीय परार्ध (50-100 वाला खंड) चल रहा है)।

काल मान की गणना में बताया गया है :

| | | |
|---|---|---|
| 15 निमेष | = | एक काष्ठा |
| 30 काष्ठा | = | 1 कला |
| 30 कला | = | 1 मुहूर्त |
| 30 मुहूर्त | = | एक मनुष्य लोक का अहोरात्र (दिन-रात) |
| 30 अहोरात्र | = | एक मास (दो पक्ष : कृष्ण, शुक्ल) |
| 6 मास | = | एक अयन |
| 2 अयन (उत्तरायण व दक्षिणायन) | = | 1 वर्ष (दक्षिणायन = देवताओं की रात्रि उत्तरायण = देवताओं का दिन) |

ब्रह्माजी का एक दिन एक कल्प के बराबर होता है और रात्रि भी एक कल्प के बराबर होती है। ब्रह्माजी के 1 दिन में 14 मनु या मन्वंतर होते हैं (वर्तमान में वैवस्वत् मन्वंतर चल रहा है)। 360 कल्पों का ब्रह्माजी का एक वर्ष होता है। (जैसे पृथ्वी लोक पर 360-65 दिनों का एक वर्ष होता है) और उसके 100 गुने काल को 360×100=36,000 कल्प ब्रह्म लोक के 100 वर्ष या एक 'पर' होता है। एक पर के पश्चात् प्राकृतिक रूप से प्रलय हो जाती है और सभी तत्वों का अपनी मूल प्रकृति में लय हो जाता है। इस प्रलय के पश्चात् पुनः कालयोग से नई सृष्टि का आविर्भाव होता है।

छठे अध्याय में भगवान के नारायण नाम का शब्दार्थ व भावार्थ व्यक्त किया गया है। भगवान कूर्म ऋषियों से कहते हैं कि सृष्टि के सृजन से पूर्व सर्वत्र जल-ही-जल था, केवल जलमय समुद्र ही चारों ओर था। (आधुनिक हिंदी साहित्य में इस स्थिति का सर्वाधिक व्यापक व मनोहारी वर्णन जयशंकर प्रसाद की कामायनी के चिंतोत्सर्ग के नीचे जल के जड़ चेतन नामक पंक्तियों में मिलता है)। घोर अंधकार था, जल के अतिरिक्त अन्य सभी तत्त्व शांत थे। इस विशाल जल को शैया बनाकर या अपना अयन अर्थात् आश्रय स्थल बनाकर जो आदि देव विश्राम कर रहे थे, वह ही नारायण कहे जाते हैं। इसके पश्चात् भगवान द्वारा वाराह रूप में पृथ्वी के उद्धार की तथा सनकादि ऋषियों द्वारा भगवान के वाराह रूप की स्तुति के साथ छठा अध्याय समाप्त हो जाता है।

सातवें अध्याय में नौ प्रकार की सृष्टि व उनमें चारों मुखों से चारों वेदों की उत्पत्ति का वर्णन है। आठवें अध्याय में पुरातन पुरुष प्रभु द्वारा अपने शरीर को 2 भागों में विभाजित करके आधे भाग से मनु रूपी आदि पुरुष व दूसरे आधे से शतरूपा रूपी कल्याणकारी सृष्टि नारी के प्रादुर्भाव की गाथा हैं। इसके पश्चात् स्वयंभू मनु के वंश का वर्णन, प्रजापति दक्ष की कन्याओं की उत्पत्ति का प्रसंग व उनके विवाह का वर्णन है। नवें अध्याय में शेषशायी भगवान नारायण की नाभि से कमल के प्रस्फुटन व उस कमल की कणिका पर ब्रह्माजी के प्राकट्य की कथा का वर्णन मिलता है। इसी अध्याय में विष्णुजी की ही माया से मोहित होकर कुशध्वज (ब्रह्माजी का पर्याय) का विष्णुजी से विवाद का वर्णन है। अंत में शिव जी द्वारा ब्रह्माजी को शिव व विष्णु के एकत्व के प्रतिपादन के साथ अध्याय का समापन होता है।

दसवें अध्याय में भगवान विष्णु की कान के मैल से उत्पन्न मधु व कैटभ की उत्पत्ति व उनके वध की गाथा है। इस अध्याय में अष्ट रुद्रों : 1. भव, 2. शर्व, 3. ईशान, 4. पशुपति, 5. भीम, 6. उग्र, 7. अघोर व 8. महादेव (एक नाम रुद्र) का वर्णन है।

आगे प्रसंग आता है कि ब्रह्माजी द्वारा इन अष्ट रुद्रों को प्रजा की सृष्टि करने का आदेश दिया जाता है और भगवान शिव जब सृष्टि की रचना करने लगे, तो उन्होंने अपने समान अन्य नीलकंठ, आनंदस्वरूप, वीतराग रुद्रों को उत्पन्न करना प्रारंभ कर दिया, जो जरा-मृत्यु से रहित थे। अर्थात् वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होते थे। इस पर ब्रह्माजी ने भगवान शिव से चिंतित होकर कहा कि हे देव ! मृत्यु से रहित सृष्टि का सृजन तो प्रकृति के नियमों के विपरीत है। आप जन्म व मृत्यु वाली सृष्टि का ही निर्माण करें, दूसरी का नहीं। इस पर भगवान शिव ने कहा कि हे ब्रह्मा जी ! मैं ऐसे जीवों नहीं उत्पन्न करना चाहता, जिनकी मृत्यु हो या जो काल के अधीन हों। ऐसी सृष्टि का सृजन तो आप ही करें। यह कहकर भगवान शिव क्रिया रहित व स्थाणु हो गए। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने उनकी भावपूर्वक स्तुति की व अनेक प्रकार की सृष्टि के सृजन का कार्य प्रारंभ किया।

ग्यारहवें अध्याय में शक्ति की आराधना का बहुत ही गूढ़, गहन व भावुक वर्णन प्राप्त होता है। सती पार्वती के जन्म के पश्चात् देवी के माहात्म्य का वर्णन है और स्वयं देवी भगवती द्वारा हिमवान को अपने दिव्य विराट रूप के दर्शन का वर्णन है, जिसे देखकर राजा हिमवान द्वारा अत्यंत श्रद्धा व भक्ति द्वारा देवी के 1008 नामों द्वारा ऐसी भावप्रद व कल्याणकारी स्तुति की गई है, जो अन्यत्र दुर्लभ है (इस दिव्य नामावली के कारण कूर्म पुराण शाक्त मतावलंबियों में विशेष रूप से पूजनीय है)। अध्याय का समापन देवी के इस पवित्र अष्टोत्तर सहस्रनाम के माहात्म्य से होता है, जिसमें कहा गया है कि जो भी इस स्रोत का श्रद्धा व पवित्रतापूर्वक पाठ करता है, वह निश्चित रूप से समस्त पापों से मुक्त होकर पुण्य को प्राप्त करता है तथा जो व्यक्ति दिन में तीन बार इसका पाठ करके हवन करता है, वह सभी प्रकार के अनिष्ट ग्रहों के कुप्रभाव से मुक्त हो जाता है। उसे असीम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा उसके प्रत्येक इच्छित कार्य में सफलता प्राप्त होती है।

12वें अध्याय में दक्ष कन्याओं से संतानोत्पत्ति का वर्णन है तथा 49 अग्नियों, पितरों व गंगा जी के प्रादुर्भाव की गाथा है। 13वें अध्याय में मनु की पत्नी शतरूपा के प्रियव्रत व उत्तानपाद नामक पुत्रों के जन्म की अर्थात् मनु की वंश परंपरा का वर्णन है। इसके पश्चात् महाराजा पृथु का प्रसंग है, जिनके नाम से यह भूलोक पृथ्वी कहलाता है। आगे चलकर दक्ष के कनखल में यज्ञ के आयोजन का विवरण प्रारंभ होता है, जो 14वें अध्याय तक चलता है, जिसमें सती द्वारा देह त्याग, वीरभद्र द्वारा यज्ञ ध्वंस का वर्णन है। इसके पश्चात् कथा पारंपरिक गाथाओं से भिन्न हो जाती है, क्योंकि पुराण में शंकर-पार्वती का यज्ञस्थल में प्राकट्य दिखाया गया है और भयभीत दक्ष द्वारा शंकर-पार्वती की स्तुति के पश्चात् भगवान शिव द्वारा उसे

वर प्रदान करने का प्रसंग है। अंत में भगवान ब्रह्माजी द्वारा दक्ष को शिव-विष्णु के एकत्व के उपदेश के साथ अध्याय समाप्त होता है।

पंद्रहवें अध्याय में भगवान के नृसिंह अवतार की लीलाओं का वर्णन है, जिसमें हिरण्यकशिपु व हिरण्याक्ष के वध का वर्णन प्राप्त होता है। भक्त प्रह्लाद का चरित और गौतम ऋषि द्वारा दारुवन निवासी मुनियों को मायामयी झूठी गाय की हत्या का लांछन लगाने की कथा का प्रसंग भी यहां प्राप्त होता है। इसके पश्चात् अंधक द्वारा माता पार्वती को कुदृष्टि से देखने पर भगवान शंकर से उसके युद्ध व इसमें अंधक की पराजय के पश्चात् उसके द्वारा भगवान महादेव की स्तुति व भगवान भोलेनाथ द्वारा उसे गाणपत्य पद प्रदान करने का वर्णन है। इसके पश्चात् पार्वती द्वारा भी अंधकासुर को पुत्र रूप में ग्रहण करने व विष्णुजी द्वारा उत्पन्न मातृकाओं द्वारा संसार के भक्षण की कथा तथा भगवान विष्णु के ही उपदेश पर इन मातृकाओं द्वारा भगवान शिव की शरण ग्रहण करने के साथ अध्याय समाप्त हो जाता है।

सोलहवें अध्याय में विरोचन पुत्र बलि द्वारा देवताओं को पराजित करने की कथा व भगवान विष्णु का वामन रूप में बलि से तीन पग भूमि मांगने की कथा का विस्तार से विवरण प्राप्त होता है। अठारहवें अध्याय में एक ओर पुलस्त्य वंशज रावण, कुंभकर्ण आदि के जन्म की कथा है, तो साथ ही वशिष्ठ जी के वंशज शक्ति, व्यास व शुक मुनि की वंश-परंपरा का वर्णन है। उन्नीसवें अध्याय में सूर्यवंश की वंशावली का व बीसवें अध्याय में इक्ष्वाकु वंश की वंशावली में भगवान राम का, उनके पुत्र लव एवं कुश का उनके श्रुतायु नामक वंशज तक वर्णन प्राप्त होता है। इस अध्याय में रामेश्वरम् लिंग की महत्ता का भी वर्णन प्राप्त होता है। इक्कीसवें अध्याय में चंद्रवंश व यदुवंश की वंशावलियों के विवरण प्राप्त होते हैं। 22वें अध्याय में राजा जयध्वज के वंश का वर्णन है तथा कण्व ऋषि के आदेशानुसार वाराणसी के विश्वेश्वर लिंग के प्रताप से राजा दुर्जय के पापों से मुक्त होने का वर्णन है।

23वें अध्याय में भी पुराणों के प्रिय विषय वंश परंपरा का ही वर्णन है। इस अध्याय में क्रोष्टु वंशी राजाओं, सात्त्वतवंशी राजाओं व वासुदेव कृष्ण के वंश का वर्णन है। 24वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण का अपनी लीला प्रदर्शन में महामुनि उपमन्यु के आश्रम में जाने का वर्णन है, जहां वह भगवान शिव की स्तुति करते हैं और भगवान शिव उनकी पुत्र प्राप्ति की इच्छा को पूर्ण करते हुए वरदान देते हैं। (इसी अध्याय में बताया गया है कि महामुनि उपमन्यु के आश्रम में ही कूर्म पुराण की रचना हुई) और श्रीकृष्ण भगवान शंकर के साथ कैलाश पर्वत पर विहार के लिए प्रस्थान करते हैं। 25वें अध्याय में भगवान कृष्ण का कैलाश विहार से वापस द्वारका आगमन का वर्णन तो है ही, परंतु इस अध्याय की विशेषता यह

है कि द्वारका आने पर भगवान कृष्ण द्वारा मार्कण्डेय ऋषि को लिंग तत्त्व का उपदेश दिया गया, जिसमें **लिंग को ज्योति स्वरूप, अक्षर, अव्यक्त आनंद** कहा गया है तथा लिंग पूजन के माहात्म्य की चर्चा की गई है। 26वें अध्याय में भगवान शिव के वरदान स्वरूप भगवान कृष्ण को साम्ब नामक पुत्र की प्राप्ति का वर्णन है। इसी अध्याय में कंस-वध व भृगु ऋषि के निर्देश से श्रीकृष्ण द्वारा निजगोलोकधाम जाने का प्रसंग है। 28वें अध्याय में कलियुग में धर्म के ह्रास की स्थिति व रुद्र पूजन के माहात्म्य का वर्णन है और व्यासजी कृत शिवजी की स्तुति है।

39वें अध्याय में व्यास व जैमिनी ऋषि के मध्य धर्म संबंधी प्रश्नों पर परस्पर चर्चा का विवरण प्राप्त होता है। इस चर्चा में काशी के अविमुक्त स्वरूप का विशद वर्णन है, जो 33वें अध्याय तक प्राप्त होता है। भगवान शंकर मां पार्वती से स्वयं कहते हैं कि इस क्षेत्र में प्राण त्यागने से मनुष्य जीवन-मरण के चक्र से सदैव के लिए मुक्त हो जाते हैं। अतः मोक्ष को अत्यन्त दुर्लभ और संसार को अत्यंत भीषण समझकर पत्थर द्वारा पैरों को तोड़कर मनुष्य को वाराणसी में निवास करना चाहिए।

**मोक्षं सुदुर्लभं मत्वा संसारं चातिभीषणम्।**
**अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्तरः।** (29/440)

(काशी में मरण होने पर स्थूल, सूक्ष्म व कारण—इन तीनों प्रकार के शरीरों का सदा के लिए नाश हो जाता है। इसीलिए काशी को महाश्मशान कहते हैं और यहां मृत्यु को मोक्ष प्रदायिनी माना गया है।) मृत्यु के समय प्रत्येक मनुष्य का सूक्ष्म या लिंग शरीर जिसका परिमाप अंगुष्ठ मात्र होता है, स्थूल शरीर से अलग हो जाता है और अपने कर्मों व संस्कारों के अनुसार विभिन्न लोकों और विभिन्न योनियों में भ्रमण करता है या जन्म लेता है। सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर की मुक्ति या मोक्ष तभी संभव होता है, जब अन्नमय देह कोश से अलग होते ही ऊर्ध्वगामी हो जाए अर्थात् पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण जहां लिंग शरीर की अधोगति या तिर्यक गति आदि न हो। साधारण मनुष्य का लिंग शरीर तो मृत्यु के पश्चात् ही स्थूल शरीर से पृथक होता है, परंतु योगी जन समाधि की अवस्था में जीतेजी लिंग शरीर को पृथक कर लेते हैं और लोक-लोकांतर का भ्रमण करते हैं। सभी योगियों ने यह अनुभव किया है कि केवल काशी में ही ऐसा ऊर्ध्व आकर्षण है, जो स्वयं ही लिंग शरीर को ऊपर की ओर ले जाता है और चाहे जैसा भी जीव हो, उसे सद्यःमुक्ति प्राप्त होती है।

इस संदर्भ में श्री रामकृष्ण परमहंस का स्वानुभूत वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपनी काशी यात्रा के दौरान उन्होंने मणिकर्णिका घाट पर देखा

कि पिंगल वर्ण की जटाओं वाले एक लंबे श्वेतकाय पुरुष गंभीरता से चलते हुए श्मशान की प्रत्येक चिता के पास आते हैं और प्रत्येक देहों को अच्छी तरह से उठाकर उसके कान में तारक ब्रह्म मंत्र को प्रदान कर रहे हैं। सर्वशक्तिमयी श्री श्री जगदम्बा भी स्वयं महाकाली रूप में जीव के दूसरी तरफ उसी चिता पर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार बंधनों को खोल रही हैं तथा निर्वाण का मार्ग उन्मुक्त कर अपने हाथों से उन्हें अखंड धाम में भेज रही हैं।

इसके पश्चात् सूतजी शंकर जी के कृत्तिवासा नाम पड़ने का वृतांत बताते हैं कि प्राचीन काल में एक राक्षस हाथी का रूप धारण कर काशी में भगवान शंकर के समीप नित्य उपासना करने वाले ब्राह्मणों को मारने के लिए आया। इस पर भगवान त्रिलोचन ने हाथी की आकृति वाले उस दैत्य को भूल से मारकर उसके चर्म का वस्त्र धारण किया और कृत्तिवासेश्वर हो गए। इसके अतिरिक्त कपर्दीश्वर लिंग, पिशाचमोचन कुंड, मध्यमेश्वर महादेव व काशी के विभिन्न तीर्थों का व्यासजी द्वारा विस्तृत विवरण है। 34वें से 37वें अध्याय तक प्रयाग तीर्थ का माहात्म्य और संगम स्नान के पुण्य का फल बताया गया है।

इसके पश्चात् पौराणिक भूगोल का वर्णन है। सूतजी कहते हैं कि सूर्य और चंद्रमा की किरणों से जहां तक का भाग प्रकाशित होता है, उतना भाग भू लोक कहलाता है। आकाश में उत्तर में जहां ध्रुव तारा स्थित है, वहां तक के मंडल को स्वर्लोक कहा जाता है। इस लोक में वायु की 7 नेमियां हैं। भूमि से एक लाख योजन ऊपर सूर्य का मंडल है। सूर्य से 1 लाख योजन ऊपर चंद्रमा का मंडल है और उससे 1 लाख योजन ऊपर नक्षत्र मंडल है। इसके पश्चात् सूर्य की महिमा का विस्तार से वर्णन हैं और सूर्य की सात रश्मियों के नाम क्रमशः सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, अर्वावसु व स्वरांग एवं उनके विभिन्न पोषण स्थानों की चर्चा है। इसके पश्चात् 43वें अध्याय में भू लोक से 7 महाद्वीपों, सात महासागरों व जंबूद्वीप तथा मेरु पर्वत की स्थिति बताई गई है। पौराणिक भूगोल के विभिन्न पक्षों के विस्तृत विवरण के पश्चात् कलियुग में महादेव के अवतारों और भविष्य में होने वाले सात मन्वंतरों के नामों के परिगणन (वर्तमान मन्वंतर वैवस्वत् है, सावर्ण (आठवां), दक्षसावर्ण (नवां), ब्रह्मसावर्ण (दसवां), धर्मसावर्ण (ग्यारहवां), रुद्रसावर्ण (बारहवां), रोचमान (तेरहवां), भौत्य (चौदहवां) के साथ 51 अध्यायों के इस कूर्म पुराण के पूर्व विभाग का उपसंहार हो जाता है।

## उत्तरार्ध

44 अध्यायों के इस विभाग में दो प्रमुख दार्शनिक विवेचनाएं ईश्वर गीता और व्यास गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं। ईश्वर अर्थात् भगवान शिव तथा ऋषियों के मध्य हुए संवाद को ईश्वर गीता कहा गया है, जिस पर श्रीमद्भगवत् गीता का प्रभाव पूर्णतः स्पष्ट है। अनेक पद अक्षरशः गीता के समान हैं और जिस प्रकार भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अपने विश्वरूप के दर्शन कराए थे, वैसे ही ईश्वर गीता में नृत्यरत नटराज शिव के विश्वरूप का वर्णन व दर्शन कराते हैं। इस विभाग में यद्यपि चारों आश्रमों के नित्यकर्मों का विस्तार से वर्णन किया गया है, परंतु गृहस्थाश्रम के नित्य कर्म व सदाचार का वर्णन विशेष रूप से जीवन व्यवहार में लाने योग्य है।

ईश्वर गीता में आत्मतत्व के स्वरूप का निरूपण करते हुए भगवान शिव कहते हैं कि जिस प्रकार प्रकाश और अंधकार का परस्पर कोई संबंध नहीं हो सकता, जिस प्रकार धूप और छाया एक-दूसरे से भिन्न तत्व हैं, वैसे ही आत्मा और प्रपंच एक-दूसरे से भिन्न हैं। मैं कर्ता हूं, यह सुख है, यह दुःख है, यह राग व द्वेष की भावनाएं, कृश व स्थूल—यह सब विकार आत्मा के स्वभाव में नहीं है। यह सब विकार तो अहं के कारण मनुष्य मन में आरोपित कर लेता है, जिसका मूल कारण अज्ञान व माया है। इस अज्ञान से अविवेक उत्पन्न होता है। जिसके कारण मनुष्य अनात्म तत्व में आत्मविषयक विज्ञान से दुःखी होता है। इस भ्रांति के कारण कर्म में भी दोष होता है और पाप की स्थिति बनती है और जीव को इनके फलस्वरूप विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़ता है। जैसे धुएं के संपर्क से आकाश मलिन नहीं होता, वैसे ही अंतःकरण से उत्पन्न होने वाले विभिन्न भावों से आत्मा प्रभावित नहीं होता, वह तो शुद्ध स्फटिक की भांति अपनी आभा से स्वयं ही प्रकाशित रहती है। योगी जब सभी प्राणियों में आत्मा की इस स्थिति को देख लेता है या अनुभूत कर लेता है, तो उसे ब्रह्म-भाव की प्राप्ति हो जाती है। (यही भाव गीता के 5/18 व 6/32 में प्राप्त होता है)

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।**

(हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भांति संपूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख में भी सबको एक भाव से ही ग्रहण करता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है)।

योगी के हृदय में स्थित सभी कामनाएं समाप्त हो जाती हैं। वह पूर्णकाम या आप्तकाम हो जाता है और उसका चित्त एकाग्र हो जाता है। चित्त की एकाग्रता ही योग है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से ही योग प्रवर्तित रहता

है। योगी जिसे प्राप्त कर लेता है, वही सांख्य वेत्ताओं का विषय है। जो सांख्य व योग के समभाव को समझ जाता है, वही तत्त्व ज्ञानी है। इसके पश्चात् भगवान शिव अपने दिव्य स्वरूप का ऋषियों को दर्शन कराते हैं और अपने सर्वव्यापी स्वरूप का वर्णन करते हैं। इसके पश्चात् भगवान शिव अपने पशुपति नाम की चर्चा करते हुए कहते हैं कि संसार में रहने वाले अज्ञान से आवृत सभी जीव 'पशु' हैं और मैं सबका पति या स्वामी हूं, अतः विद्वान् मुझे पशुपति कहते हैं।

इसके पश्चात् सांख्य योग के 24 तत्वों का निरूपण करते हुए भगवान शिव कहते हैं कि मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये 8 प्रकृति हैं और दूसरे सभी पदार्थ विकार या विकृति हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, गुदा, जननेंद्रिय, हाथ-पैर और दसवीं इंद्रिय वाणी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन 5 तन्मात्राओं के योग से यह संख्या (8+10+5 = 23) 23 हो जाती है। यह 23 तत्त्व प्राकृत या प्रकृति से उत्पन्न होने वाले हैं। 24वां तत्त्व अव्यक्त तथा प्रधान है, जो आदि, अंत और मध्य से रहित तथा जगत का कारण पुरुष है। ग्यारहवें अध्याय में अष्टांग योग व प्राणायाम के प्रतिपाद तथा वाराणसी में प्राण त्याग की महिमा के साथ ईश्वर गीता का समापन हो जाता है।

ईश्वर गीता के समापन के पश्चात्। 12वें अध्याय में चारों आश्रमों के नियमों व सदाचार का वर्णन प्रारंभ होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम के आचार वर्णन में गायत्री मंत्र के विशिष्ट महत्त्व की चर्चा की गई है। वेदों के पठन-पाठन के निषिद्ध समय का वर्णन करते हुए बताया गया है कि रात्रि में आवाज करने वाली वायु के बहने पर, दिन में धूल उड़ने पर, बिजली चमकते समय व मेघ गर्जन के समय वेदों का अध्ययन नहीं करना चाहिए। ग्राम या घर में शव पड़े रहने पर, जल के मध्य, श्राद्ध के दिन वेदों का पठन-पाठन नहीं करना चाहिए। सूतक में तीन दिन तक वेदों का अध्ययन निषिद्ध है। अमावस्या, चतुर्दशी व पूर्णिमा तथा अष्टमी तिथियों को भी वेदों का अध्ययन नहीं करना चाहिए। अष्टकाओं में वेदों का अध्ययन पूर्णतः वर्जित है (आग्रहणयान, पौष व माघ मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी, अष्टमी व नवमी—इन तीन मासों की इन तीन तिथियों के समुदाय को अष्टका कहा गया है)।

**पंद्रहवें अध्याय** से गृहस्थ धर्म व इसके सदाचार व जीवनयापन की शास्त्रोक्त विधि का वर्णन है, जो पुराणों के आधुनिक संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण व जनोपयोगी है।

गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिए ऐसी स्त्री को पत्नी रूप में ग्रहण करना चाहिए, जो न तो वर की माता के गोत्र में उत्पन्न हुई हो, न ही पिता के गोत्र में उत्पन्न हो तथा शील व सदाचार से युक्त हो। विवाह के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति के लिए ऋतुकाल में अपनी पत्नी के साथ सहवास करना चाहिए, परंतु निषिद्ध

दिनों का तथा दिन में सहवास का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए। षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या को सहवास वर्जित है। अपनी जन्म तिथि से पंचांग की तिथि अनुसार तीन दिन ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए। एक ही व्यक्ति से दोबारा कोई पदार्थ नहीं मांगना चाहिए तथा देवता या मंदिर के द्रव्य का अपहरण नहीं करना चाहिए। पुष्प, शाक, जल, लकड़ी, फल तथा तृण ये पदार्थ यदि इनके स्वामी को बताए बिना भी ग्रहण कर लिए जाएं, तो चोरी या अपहरण का दोष नहीं लगता। वेद व देवताओं तथा विद्वान् ब्राह्मणों की निंदा करने वालों से विवाह संबंध स्थापित नहीं करना चाहिए। स्वयं देखकर भी किसी को चिता की अग्नि या इंद्रधनुष कभी न दिखाएं। बिना किसी विशेष प्रयोजन के उदय या अस्त होते सूर्य और चंद्रमा को न देखें। दर्पण में सूर्य या चंद्रमा का प्रतिबिंब न देखें। नग्न स्त्री या पुरुष को कभी न देखें। पत्नी के साथ भोजन नहीं करना चाहिए तथा उसे भोजन करते समय या छींकते व जम्हाई लेते समय नहीं देखना चाहिए। स्वयं भोजन करते समय पत्नी को या किसी अन्य खुले अंगवाली स्त्री को नहीं देखना चाहिए। जल में अपना रूप नहीं देखना चाहिए। पुत्र और शिष्य को योग्य बनाने के लिए ताड़न करना चाहिए। नखों से भूमि पर लिखना या कुरेदना नहीं चाहिए। भोजन या निवास में सहयोगी, मित्र या सहयात्री को छोड़ना नहीं चाहिए। जल में पूर्ण नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए। सिर पर लगाने के पश्चात् बचे तेल को शरीर में नहीं लगाना चाहिए। अंगुलियों को चटकाकर व नखों से आवाज नहीं करनी चाहिए। अंजलि से जल नहीं पीना चाहिए तथा हाथ व पैर से जल को पीटना नहीं चाहिए। किसी भी पदार्थ को गोद में रखकर खाना निषिद्ध है। दोनों हाथों से सिर खुजलाना निषिद्ध है। दांतों से नाखूनों को नहीं काटना चाहिए तथा सोए व्यक्ति को नहीं जगाना चाहिए। चिता के धुएं से दूर रहना चाहिए। अपने जूते स्वयं अपने हाथ में नहीं ढोने चाहिए। एक पैर से दूसरा पैर नहीं छूना चाहिए। पीपल के वृक्ष को नहीं काटना चाहिए तथा जल में थूकना व मल-मूत्र नहीं करना चाहिए। अग्नि को कभी भी मुख से नहीं फूंकना चाहिए। पशुओं को परस्पर लड़ाने के लिए उत्तेजित नहीं करना चाहिए। मंदिर में सदैव दाएं से प्रवेश करना चाहिए अर्थात् मंदिर को दाहिने करके प्रवेश करना चाहिए। अपने श्वसुर अर्थात् (पत्नी का पिता) के घर स्थायी रूप से रहना व अन्न ग्रहण करना निषिद्ध है। मनुष्य का किया पाप अन्न में स्थित रहता है, अतः अन्न बहुत ही ध्यान पूर्वक ग्रहण करना चाहिए। बैंगन, भंसीड़, प्याज, लहसुन, कांजी व लिसोढ़ा तथा नवप्रसूता को गौ का दुग्ध ग्रहण नहीं करना चाहिए। रात्रि में तिल संबंधी पदार्थों व दही का प्रयोग पूर्णतः निषिद्ध है। दूध के साथ कभी भी मट्ठे या लस्सी का सेवन नहीं करना

चाहिए। बासी, कुत्ते द्वारा सूंघा हुआ, कुष्ठ रोगी द्वारा स्पर्श किया अन्न त्याग देना चाहिए। नित्य प्रातःकाल स्नान अवश्य करना चाहिए। **यज्ञोपवीती** होकर देवताओं का, **निवीती** होकर ऋषियों का, **प्राचीनावीती** होकर पितरों का तर्पण करना चाहिए। यहां पर इनके अर्थ स्पष्ट किए गए हैं :

**यज्ञोपवीती :** जनेऊ या यज्ञोपवीत को वाएं कंधे के ऊपर रखते हुए दाहिनी भुजा के नीचे रखते हुए धारण करना यज्ञोपवीत कहलाता है। देवताओं का पूजन ऐसी स्थिति में ही होता है। देवताओं का तर्पण अंगुलियों के अग्रभाग से होता है और तर्जनी का प्रयोग वर्जित है। तर्जनी, अंगूठे के साथ वाली अंगुली होती है।

**निवीती :** यज्ञोपवीत को माला की तरह गले में धारण करना निवीती कहलाता है और ऋषियों का पूजन इस स्थिति में ही होता है। ऋषियों का तर्पण कनिष्ठिका अंगुली के मूल से होता है। इसे काय तीर्थ कहते हैं।

**प्राचीनावीती :** पितरों का पूजन करते समय यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर रखकर बाईं भुजा के नीचे रखते हैं। पितरों का तर्पण अंगूठे व तर्जनी के मूल से ही होता है और 'इन्हें पितृतीर्थ' कहते हैं। **पितृकर्म में जैसे श्राद्ध, पिंडदान आदि में स्नान के पश्चात्** वस्त्रों को निचोड़ना नहीं चाहिए। तर्पण के पश्चात् पुनः स्नान करने के महत्त्व का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं कि पवित्र आसन पर बैठकर सूर्य की ओर मुख करके या पूर्वाभिमुख होकर भोजन करने से दीर्घायु होती है। दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करने से यश की प्राप्ति होती है। पश्चिम की ओर मुख करने से संपत्ति की तथा उत्तर की ओर मुख करने से सत्य की प्राप्ति होती है, सिर ढककर और जूता पहनकर तथा शैया पर बैठकर भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए। रात्रि में कभी भी गीले पैर नहीं सोना चाहिए तथा उत्तर या पश्चिम की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिए।

इसके पश्चात् बीसवां अध्याय श्राद्ध प्रकरण से संबंधित है, जो श्राद्ध की शास्त्रीय विधि का वर्णन करता है। इस अध्याय में विभिन्न नक्षत्रों, तिथियों तथा दिनों को किए श्राद्धों का विस्तार से महत्त्व बताया गया है। पितरों की तिथि अमावस्या है, अतः अमावस्या को श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। गया, अमरकंटक व गंगा तट पर किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदायक होता है। श्राद्ध में भैंस के दूध का प्रयोग वर्जित है। श्राद्ध में मित्र को भोजन नहीं करवाना चाहिए।

इसके पश्चात् इसी प्रकार वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम के आचार-विचार के वर्णन के साथ पुराण के एक महत्त्वपूर्ण खंड का उपसंहार हो जाता है। चौंतीसवें अध्याय के तीर्थ-माहात्म्य प्रकरण में प्रयाग, गया, पुष्कर आदि तीर्थों की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है तथा पवित्र तीर्थ अमरकंटक व नर्मदा के अन्य तटवर्ती

तीर्थों के विस्तार से वर्णन के साथ शैव तीर्थों के माहात्म्य का निरूपण करता हुआ यह पुराण महर्षि व्यास व नारायण की वेदना के साथ पूर्ण हो जाता है।

## 16. मत्स्य पुराण

भगवान् विष्णु के मत्स्य अवतार से संबद्ध होने के कारण यह मत्स्य पुराण कहलाता है। मत्स्यावतारी माहात्म्य के द्वारा राजा वैवस्वत् मनु तथा सप्तर्षियों को, जो अत्यंत दिव्य एवं लोक-कल्याणकारी उपदेश दिए गए हैं, वे ही मत्स्य पुराण में संगृहीत हैं। सृष्टि के प्रारंभ में जब हयग्रीव नामक असुर वेदादि समस्त शास्त्रों को चुराकर पाताल में चला गया, तब भगवान् ने मत्स्यावतार धारण कर वेदों का उद्धार किया और एक विशाल नौका को अपने सींग से खींचते हुए महाराज मनु को मत्स्य पुराण की कथा सुनाई थी। दस अवतारों में भगवान का मत्स्य-अवतार सर्वप्रथम कहा गया है।

इस पुराण की श्लोक-संख्या चौदह हजार है, जो 291 अध्यायों में उपनिबद्ध है। इसके प्रथम अध्याय में मत्स्यावतार की कथा है। इसके बाद मनु महाराज का मत्स्य भगवान् के साथ संवाद है। तदनंतर सृष्टि, तत्त्व-मीमांसा, मन्वंतर तथा पितृवंश का विस्तृत वर्णन किया गया है। 13वें अध्याय में वैराज-पितृवंश, 14वें में अग्निष्वात-पितृवंश तथा 15वें में बर्हिषद्-पितृवंशों का वर्णन है। फिर सात अध्यायों में विविध श्राद्धों का सांगोपांग विवेचन है। तदनंतर 22 अध्यायों में चंद्रवंशी राजाओं का चरित्र विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। ययाति-चरित्र का वर्णन अत्यंत रोचक एवं शिक्षाप्रद है, जो प्रवृत्ति एवं भोगमार्ग को सर्वथा अनुचित बताकर निवृत्ति एवं त्याग मार्ग का आश्रय लेने के लिए प्रेरित करता है। राजा ययाति अपने पुत्र पुरु को उसकी युवावस्था लौटाते हुए कहते हैं—'वत्स! मैंने तुम्हारे यौवन के द्वारा अपनी रुचि, उत्साह और समय के अनुसार विविध विषयों का सेवन किया। विषयों की कामना उन विषयों के उपभोग से कभी शांत नहीं होती, अपितु घी की आहुति पड़ने से अग्नि की भांति अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। इस पृथ्वी पर जितने भी धान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियां हैं, वे सब एक मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं—ऐसा मानकर शांत रहना चाहिए'।

विविध व्रतों का वर्णन इस पुराण में विशेष रूप से किया गया है। 55वें अध्याय से 102 अध्याय तक अनेक व्रत एवं अनुष्ठानों की विधि, दानों की महिमा, नवग्रहों का स्वरूप-वर्णन, विविध स्नान तथा तर्पण-विधि का प्रतिपादन सुंदर कथाओं के माध्यम से किया गया है। तदनन्तर प्रयाग-महिमा (103-112 अध्याय), भूगोल-खगोल, ज्योतिष चक्र, त्रिपुरासुरसंग्राम (129 से 140 अध्याय), तारकासुर-आख्यान, नृसिंह-चरित्र, काशी (180-185 अध्याय) तथा नर्मदा माहात्म्य (187-194

अध्याय) आदि विस्तार से वर्णित है।

फिर ऋषियों के नाम-गोत्र तथा वंश का वर्णन है। सात अध्यायों में सती सावित्री की कथा है और 13 अध्यायों में राजधर्मों का सुंदर चित्रण है।

सदाचार, दान-धर्म, तीर्थ-व्रत, पूजा-प्रतिष्ठा के विषय में मत्स्य पुराण में दुर्लभ विषयों का संग्रह हुआ है। परवर्ती साहित्यकारों—कालिदास आदि का यह प्रतिपाद्य विषय एवं काव्य-शैली की दृष्टि से उपजीव्य तथा आदर्शभूत रहा है। इसमें सूर्य सिद्धांत तथा स्थापत्य कला व गृह निर्माण जैसे विषयों पर भी विस्तार से प्रकाश डाला गया है, जैसे जिस घर के चारों ओर द्वार होते हैं, उसे **'सूर्वतोभद्र'** कहा जाता है तथा जिसमें परिचय को छोड़कर शेष तीन ओर द्वार होते हैं, उसे **'बन्धावर्त'** कहा जाता है। इसी प्रकार जिस घर के दक्षिण में द्वार नहीं होता, उसे **वर्द्धमान** कहते हैं तथा जिसके पूर्व में द्वार नहीं होता, उसको **स्वास्तिक** कहते हैं तथा जिसके उत्तर में द्वार नहीं होता उसे **रुचम** कहते हैं।

## 17. गरुड़ पुराण

गरुड़ पुराण प्रधानतया वैष्णव पुराण है और इसमें विशेषतः पूर्वखंड में विष्णु-भक्ति एवं उपासना से संबंधित सांगोपांग दसों अवयवों का सन्निवेश है। सनातन हिंदू धर्म में मृत्यु के पश्चात् प्रायः गरुड़ पुराण के श्रवण का प्रावधान है तथा उत्तर खंड में प्रेतकल्प का वर्णन है। मरने के पश्चात् जीव की गति, उसका अन्य योनियों में जन्म, मोक्ष आदि का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त दान, प्रेतयोनि से मुक्ति के उपाय, श्राद्ध आदि पर विस्तार से तथ्यात्मक व तर्कात्मक सार प्रस्तुत किया गया है। सभी पुराणों में इसकी श्लोक-संख्या 19,000 बतलाई गई है, किंतु वर्तमान समय में इसमें 7000 श्लोक ही उपलब्ध होते हैं।

गरुड़ पुराण के तीसरे अध्याय में **'पक्षि ॐ स्वाहा'** इस मंत्र को तथा गरुड़ पुराण को मुख्य गारुड़ी विद्या कहा गया है। पुराणों में एक कथा आती है कि जब परीक्षित को तक्षक के द्वारा डसने की बात का प्रचार हुआ, तो सभी बड़े-बड़े मंत्रवेत्ता झाड़-फूंक के लिए भी चले थे। इन्हीं में एक काश्यप भी थे। तक्षक ने रास्ते में उन्हें देखा। वह उनके प्रभाव को जानता था। उसने एक वृद्ध ब्राह्मण का वेष बनाकर उनसे पूछा कि आप इतनी उतावली के साथ कहां जा रहे हैं? तब काश्यप ने कहा—'आज तक्षक परीक्षित को डसने वाला है, अतः मैं भी उसके विष को दूर कर उन्हें जीवित करने के लिए जल्दी-जल्दी जा रहा हूं।' यह सुनकर ब्राह्मण वेषधारी नागराज ने कहा—'तक्षक तो मैं ही हूं, आप लौट जाइए। मेरे दंश की चिकित्सा किसी के वश की बात नहीं है।' तब काश्यप ने कहा—'मैं तुम्हारे विष को अवश्य दूर करूंगा।'

इस पर तक्षक ने कहा—'यदि ऐसी बात है, तो मैं इस वृक्ष को डसता हूं, आपके पास जितनी मंत्र-शक्ति हो, दिखाइए।' यह सुनकर काश्यप ने कहा—'तुम अपना अहंकार प्रकट करो। मैं अभी इस वृक्ष को हरा-भरा कर देता हूं।' काश्यप के ऐसा कहने पर तक्षक ने वृक्ष को काटा और वृक्ष आग-जैसा जल उठा। यह देखकर उसने काश्यप से कहा—'इस वृक्ष को बचा सकते हैं तो बचाइए।' इसके बाद काश्यप ने उस वृक्ष की भस्मराशि को एकत्र कर ज्योंही मंत्र पढ़कर फूंका, त्योंही उसमें से अंकुर निकला, फिर तो पल्लव, शाखा, प्रशाखा, पुष्प आदि से युक्त वह वृक्ष पूर्ववत् ज्यों-का-त्यों खड़ा हो गया।

यह देखकर तक्षक ने कहा—'ब्रह्मन्, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। अब आप यह बताएं कि 'परीक्षित को जिलाने से आपका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा?' तब काश्यप ने कहा—'मुझे राजा से अपार धन मिलेगा।' यह सुनकर तक्षक ने उनकी इच्छा से दूना धन देकर काश्यप को वापस कर दिया। काश्यप का यह प्रभाव गरुड़ पुराण को सुनने से हुआ था, ऐसा गरुड़ पुराण और महाभारत, दोनों में दो बार उल्लिखित है।

गरुड़ पुराण के प्रथम अध्याय में भगवान के चौबीस अवतारों का ठीक वही वर्णन प्राप्त होता है, जो श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के तीसरे अध्याय में है। इसे ब्रह्माजी ने व्यास को और व्यास जी ने सूत आदि ऋषियों को बदरीनारायण में सुनाया था। आगे के अध्यायों में नीतिसार, आयुर्वेद, गया-माहात्म्य, श्राद्ध विधि, दशावतारचरित्र, सूर्य-सोम वंश वर्णन आदि बहुत विस्तार से वर्णित है। बीच-बीच में इन वंशों में उत्पन्न जरासंध आदि राजाओं का चरित्र भी निरूपित है। गया-माहात्म्य में बताया गया है कि पहले गयासुर नामक एक बलवान दैत्य था। उसने तपस्या से सभी देवताओं की शक्ति नष्ट कर दी थी और उनका सारा अधिकार अपहरण कर लिया था। देवता लोग दुःखी होकर भगवान् विष्णु की शरण में गए। तब उन्होंने कहा—इसका शरीर किसी प्रकार पृथ्वी पर लेटे, तो फिर इसका अंत समझना चाहिए। एक बार वह शिवजी की पूजा के लिए क्षीर समुद्र से कमलों को लेकर कीकट देश में सो रहा था। यह विष्णु की माया का प्रभाव था। उसी समय भगवान विष्णु ने उसे गदा से मार डाला। इसीलिए गया में विष्णु का नाम गदाधर है और पुरी का नाम गयापुरी है। वहां उन्होंने ब्रह्माजी को बुलाकर कहा कि 'यहां दैत्यदेह के दोष को दूर कर श्राद्ध आदि कार्य पितरों के लिए तारक होंगे।' वहां उन्होंने रुद्रपद, ब्रह्मा, गायत्री आदि के स्थानों की रचना कर फल्गु नदी भी प्रवाहित की। इस गयापुरी का विस्तार पांच कोस में है। यहां ब्रह्म ज्ञान के समान मुक्ति मिलती है। गया के आस-पास में पुनपुना नदी, च्यवनाश्रम और राजगृह आदि बड़े ही पुण्यदायक माने गए हैं।

गरुड़ पुराण के आरंभ में मनु से सृष्टि की उत्पत्ति, ध्रुव-चरित्र एवं द्वादश आदित्यों की कथा है। बाद में सूर्य-चंद्र आदि ग्रहों के मंत्र, शिव-पार्वती के मंत्र, इंद्रादि दिक्पालों के मंत्र, सरस्वती के मंत्र और उनकी नौ शक्तियों का वर्णन है। फिर विष्णु-दीक्षा की विधि और उसके बाद नव व्यूहों के अर्चन का विधान निरूपित है। तेहरवें अध्याय में **विष्णु-पंजर-स्तोत्र,** पद्रहवें अध्याय में विष्णु सहस्रनाम-स्तोत्र और चौबीसवें अध्याय में त्रिपुरा का मंत्र निरूपित है। इसके आगे के अध्यायों में 'रत्नसार' ग्रंथ संक्षेप में वर्णित है। इसमें कहा गया है कि देवताओं ने विश्व विजेता बल नामक दैत्य की प्रार्थना की, जिसने पहले इंद्र आदि सभी देवताओं को जीत लिया था। देवताओं ने उससे कहा कि 'आप महान् यज्ञ के रूप में अपना शरीर परिणत कीजिए।' बल ने देवताओं की प्रार्थना मानी, तब उसकी विशुद्ध शक्ति से रत्नों का भंडार प्रकट हुआ, जो समुद्र, पर्वत, वन आदि की खानों में प्राप्त होता है। हीरा, मोती, पद्म राग, मरकत, कर्केतन, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुलक, पुष्पराग, रुधिरमणि, स्फटिक, विद्रुम आदि मुख्य रत्नों तथा मणियों के लक्षण दस-बारह अध्यायों में यहां विस्तार से बतलाए गए हैं। तदनंतर संपूर्ण ज्योतिषशास्त्र, बृहस्पतिप्रोक्त नीतिशास्त्र और सामुद्रिक शास्त्र का भी वर्णन है। इसमें सांपों के लक्षण, स्वरोदय-शास्त्र, धर्मशास्त्र, विनायकशान्ति, वर्णाश्रम-धर्म, विविध व्रत, संपूर्ण अष्टांग आयुर्वेद, पतिव्रता-माहात्म्य, सूर्य-चन्द्र वंश वर्णन और भगवान की कथा सुनना, कीर्तन करना, उनकी पूजा करना आदि विष्णु भक्ति की महत्त्वपूर्ण बातें विस्तार से निरूपित हैं। कमलनाभ, पुंडरीकाक्ष नाम परम पाथेय हैं। जो इन्हें पुरुष-सूक्त से एक फूल तथा एक बार जल चढ़ा देता है, वह तीनों लोकों की पूजा कर लेता है।

इसके आयुर्वेद विभाग में अर्श, अतिसार, प्रमेह, पांडु, शोथ, कुष्ठ, विसर्प, नाड़ी-व्रण तथा स्त्री-रोगों की चिकित्सा है। आगे द्रव्यगुण-विकास भी है। ब्राह्मी घी के सेवन से मेधा की वृद्धि होती है। नारायण-तेल से गठिया की और अजमोद के तेल से गंडमाला का शमन होता है। इसका आयुर्वेदीय भाग धन्वंतरीय सुश्रुत, अग्निवेश, हारीत, आत्रेय एवं वाग्भट सम्मत है। इसके आगे कई यंत्र, मंत्र आदि प्रयोगों एवं व्याकरण तथा छंद शास्त्र का भी वर्णन है।

इसके अंत में ज्ञानामृतसार है, जिसमें कहा गया है कि निर्विकल्प, निराभास, निष्प्रपंच, विष्णु का ध्यान करने वाला मुक्त हो जाता है। इसके 23 वें अध्याय में 9 श्लोकों में मार्कण्डेय की वह स्तुति है, जिसे पढ़कर मार्कण्डेय मृत्युभय से मुक्त हो गए थे। इसके आगे सांख्य एवं वेदांत का सार निरूपित है। 237वें अध्याय में गीतासार है, किंतु उसमें गीता के श्लोक नहीं हैं। उसमें कहा गया है कि आत्मा असंग है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर घट और पट को प्रकाशित करता है, वैसे ही

ब्रह्मज्ञान आत्मा को प्रकाशित करने में भी सहायता करता है। इससे वह शीघ्र ही साक्षात् ब्रह्मरूप होकर पूर्ण मुक्त हो जाता है।

## 18. ब्रह्मांड पुराण

इसमें ब्रह्मांड का भौगोलिक वर्णन होने के कारण इसे ब्रह्मांड पुराण कहा जाता है–**ब्रह्मांडचरितोक्तत्वाद् ब्रह्मांड परिकीर्तितम्**। यह पुराण पूर्व, मध्य तथा उत्तर–इन तीन भागों में विभक्त है। पूर्वभाग में प्रक्रिया तथा अनुषंग नामक दो पाद हैं। मध्यम भाग में उपोद्घातपाद और उत्तर भाग में उपसंहारपाद है। इसकी अध्याय-संख्या 156 और श्लोक-संख्या लगभग बारह हजार है। कूर्म पुराण में इसे वायवीय ब्रह्मांड पुराण की संज्ञा दी गई है। इस पुराण की एक अन्य विशिष्ट विशेषता यह भी है कि जब ईसा की पूर्व शताब्दी में ब्रह्मांड दीपांतर या बाली व पवद्वीप गए, तो वह इस पुराण की प्रतिभा अपने साथ ले गए थे और इंडोनेशिया में उनकी राष्ट्रभाषा इंडोनेशिया में भी यह पुराण प्राप्त होता है।

इसके पूर्व भाग में मुख्य रूप से नैमिषीयोपाख्यान, हिरण्यगर्भप्रादुर्भाव, देव-ऋषि की सृष्टि, कल्प, मन्वन्तर तथा कृतयुगादि के परिमाण, रुद्रसर्ग, ऋषिसर्ग, अग्निसर्ग, दक्ष तथा शंकर का परस्पर शाप, प्रियव्रतवंश, भुवनकोश, गंगावतरण, खगोल वर्णन में सूर्यादि ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा अन्य आकाशीय पिंडों का विशद विवेचन, समुद्र-मंथन, विष्णु द्वारा लिंगोत्पत्ति-कथन, मंत्रों के विविध भेद, वेदशाखाविभाग तथा मन्वन्तरोपाख्यान विवेचित हैं।

मध्यम भाग में श्राद्ध संबंधी विषयों का सांगोपांग विवेचन, परशुराम-चरित्र की विस्तृत कथा, राजा सगर की वंश-परंपरा तथा भगीरथ द्वारा गंगानयन का विस्तृत वृत्तांत और सूर्य तथा चंद्रवंशी राजाओं के उत्तर चरित्र के आख्यान हैं।

उत्तर भाग में भावी मन्वंतरों का विवेचन, राजराजेश्वरी भगवती त्रिपुरसुंदरी का महत्त्वपूर्ण आख्यान है, जो 'ललितोपाख्यान' के नाम से प्रसिद्ध है। यहां यह हयग्रीव (विष्णु) तथा अगस्त्य के संवाद के रूप में वर्णित है। असुरों के विनाश के लिए तथा देवताओं को अभय प्रदान करने के लिए देवी ललिता ने सपरिवार विग्रह धारण किया–भंडासुर के उद्भव के संबंध में एक बहुत ही रुचिकर कथा प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है कि जब भगवान शिव ने कामदेव को भस्म कर दिया, तो चित्रवर्मा ने उस भस्म से एक पुरुष की आकृति बनाकर भगवान् शिव से उसे जीवनदान की प्रार्थना की, भगवान शिव ने उसे जीवन दान दे दिया। उसके विचित्र स्वरूप को देखकर ब्रह्मा जी के मुख से अचानक ही यह निकल गया कि अरे, यह तो विचित्र रूप का भंड (भांड़) है, इसी कारण उसका नाम भंडासुर हो गया। इसी भंडार का

पुत्र-पौत्रों सहित मां ललिता देवी ने विनाश किया।

इस प्रकार ब्रह्मांड पुराण में पंचविध लक्षणों के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन हुआ है। वायु पुराण तथा ब्रह्मांड पुराण में अद्भुत समानता है। परशुराम सर्ग-वृतांत तथा ललितोपाख्यान को छोड़कर प्रायः सभी विषय समान हैं। इसके आदि उपदेष्टा प्रजापति (ब्रह्मा) हैं। यह पुराण पापनाशक, पुण्यप्रद तथा पवित्रकारक है, आयु एवं कीर्ति को बढ़ाने वाला है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, पूजा, उपासना, ज्ञान-विज्ञान की अनके बातें सन्निहित हैं।

अध्याय 5

# पुराणों की जीवनोपयोगी कथाएं

## पौराणिक कथाओं की पृष्ठभूमि

पुराणों का उद्देश्य सारगर्भित संवादों की शृंखला द्वारा साधारण जनता को वैदिक परंपरा के ज्ञान का संप्रेषण है। इस संप्रेषण का तात्पर्य वाक्य या शब्दों की पुनरावृत्ति मात्र नहीं, अपितु वाक्यार्थ को ग्रहण कराने के समर्पण भाव की साधना है। यह अमूल्य धरोहर, यह वाचिक थाती, यह अक्षुण्ण परंपरा, यह सौंपना और ग्रहण करना निर्जीव व्यापार नहीं है, अपितु एक तपःसाधना है, ज़िसमें सौंपने वाले में यदि सौंपने की क्षमता है, तो ग्रहण करने वाले पात्र में भी ग्रहण करने की क्षमता होना अनिवार्य है। पुराणों में विभिन्न कथाओं व कहानियों के माध्यम से चिरकाल से प्रवाहित वाक् परंपरा के अनुभवों को समाहित तथा आत्मसात करके परंपरा की गतिशीलता में निरंतरता व सक्रियता को बनाए रखा गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि यह शब्द मात्र का व्यापार, पुनरावृत्ति या उसे ढोना नहीं, अपितु शब्दों के माध्यम से चेतना को, सद्गुणों को, जीवन शैली को देशकाल में प्रतिबिंबित करने का प्रयास है। इन्हें समझने के लिए अथवा इनके वास्तविक अर्थ तक पहुंचने के लिए अध्ययन की मनोवैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत श्रवण के पश्चात् मनन व निदिध्यासन का होना अनिवार्य है। भारतीय दर्शन व परंपरा के अनुसार ज्ञान या विद्या का प्रारंभ 'जिज्ञासा' से होता है। ब्रह्मसूत्र में 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' का यही भाव है। यही जिज्ञासा का बीज कालांतर में वट वृक्ष के रूप में अन्नमय कोष से आनंदमय कोष तक पल्लवित होकर मनुष्य को आत्मबोध कराता था और ज्ञान की पूर्णता व जीवन की संपूर्णता की व्यापक अनुभूति होती थी।

पुराणों की कथाओं व कहानियों में, कथानकों में यही भाव, यही विचारधारा विषय-प्रसंगों के अनुरूप वर्णित है। मनुष्य व काल (समय) में एक ऐसा विचित्र व विशिष्ट संबंध है कि मनुष्य आगे (भविष्य) को देख नहीं सकता, अनुभव नहीं

कर सकता, जान नहीं सकता, परंतु जा सकता है और पीछे (भूत) को वह देख सकता है, अनुभूत भी होता है, जानता भी है, परंतु जा नहीं सकता। हां, वर्तमान से भविष्य में जाने के लिए अपने पूर्वजों के अनुभवों को आत्मसात् करके उसे अधिक सार्थक बना सकता है और आज की हमारी पीढ़ी संभवतः इस थाती से नया संबल प्राप्त करके काल प्रवाह के धर्म व संस्कृति की सनातनता को तेजी से बदलते समय में संजीवित रख पाएगी। यही इन कथाओं का उद्देश्य व इनकी सार्थकता है।

**विज्ञेयो भारतो देशो भारती यम संततिः**

यही वह भारत देश है, जिसकी संतान अर्थात् परंपरा का वहन करने वाली पीढ़ियां उत्तरोत्तर भारतीय होती रहेंगी और ज्ञान की यह धारा निरंतर आगे बढ़ती रहेगी।

## 1. ब्रह्म पुराण

### अतिथि सत्कार

**'अतिथि देवो भव'** यह भारतीय सभ्यता व संस्कृति के जीवन दर्शन का एक प्रमुख सूत्र है। इसी भावना के अनुरूप ब्रह्म पुराण में कपोतयुगल की प्रसिद्ध कथा का विवरण प्राप्त होता है : एक दिन एक बहेलिया वन में शिकार करने गया और उसने अपने जाल में एक कपोती (कबूतरी) व अन्य बहुत-से पक्षियों को पकड़ कर बांध लिया। शीत ऋतु का समय था। पक्षियों को पकड़ने में उसे काफी समय लग गया और शिकार करते-करते सूर्यास्त हो गया। दिन भर का थका-मांदा व क्षुधापीड़ित होने के कारण वह एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गया। वह घर से काफी दूर निकल आया था और अंधकार होने से रास्ता भी भूल गया। अपने परिवार के सदस्यों की चिंता व ठंड में भूख से स्वयं ठिठुर कर वह अर्द्धमूर्च्छित-सा हो गया। संयोग से जिस वृक्ष के नीचे उसने आश्रय लिया, उसी वृक्ष पर उस कपोती का घोंसला था और उसका पति कपोत वहीं बैठा विलाप कर रहा था। पति को पहचान कर तुरंत ही कपोती बोली, हे नाथ! यद्यपि इस बहेलिए ने मुझे पिंजड़े में बंदी बना लिया है, परंतु फिर भी सूर्यास्त होने पर यह हमारे घोंसले के नीचे अनायास ही आकर बैठ गया है, अतः यह हमारा अतिथि है। यह ठंड व क्षुधा से पीड़ित है, रास्ता भटक गया है, परिवार के बारे में चिंतित है, अतः आप 'अतिथि देवो भव' की परंपरा के अनुसार आतिथ्य धर्म का निर्वाह करें। यह अतिथि यद्यपि हमारा शत्रु है, फिर भी हमारी संस्कृति में अतिथि के रूप में देवता व पितरों का आगमन होता है और यदि अतिथि द्वार से भूखा व निराश लौट जाए, तो देवता व पितर निराश होकर लौट जाते हैं और

मनुष्य पाप का भागी होता है। अतः इसकी सेवा करना हमारा धर्म है। कपोत अपनी पत्नी की बातों से प्रभावित हुआ और उसने बहेलिए से कहा कि हे अतिथिरूप व्याध ! तुम मेरे घर आए हो और दारुण कष्टमय दशा में हो, अतः तुम तनिक ठहरो, मैं अभी तुम्हारे लिए भोजन व अन्य प्रबंध करता हूं। यह कहकर कपोत उड़कर गया और शीघ्र ही जलती हुई लकड़ी लाया और उसे लकड़ियों के ढेर पर रख दिया। धीरे-धीरे अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई। व्याध को शीत का प्रकोप कम हुआ और उसमें चेतना लौटने लगी। अब उसके लिए भोजन उपलब्ध कराने के लिए जलती हुई अग्नि में उस कपोत ने स्वयं को समर्पित कर दिया। कपोत की यह अतिथि सत्कार की भावना देखकर व्याध आश्चर्य चकित रह गया व स्वयं को धिक्कारने लगा। उसने तुरंत कपोती को मुक्त कर दिया। कपोती तो सब कुछ देख ही रही थी। उसने मुक्त होते ही अपने पति का अनुसरण किया और स्वयं को भी अग्नि में समर्पित कर दिया। उसी समय आकाश में दिव्य प्रकाश फैल गया और निःस्वार्थ अतिथि सेवा से कपोत युगल को इतना पुण्य लाभ हुआ कि वे देवता के समान दिव्य शरीर धारण करके स्वर्गलोक की ओर चले गए। उन्हें इस रूप में देखकर व्याध उनके चरणों में गिर पड़ा व अपनी मुक्ति का उपाय पूछने लगा। इस पर कपोत युगल ने उसे एक मास तक गोदावरी नदी में स्नान करने को कहा। व्याध ने वैसा ही किया और वह भी एक मास के पश्चात् स्नान के पुण्य प्रभाव से गोलोकधाम का वासी हुआ। वही स्थान आज गोदावरी नदी के तट पर **कपोत तीर्थ** के नाम से प्रसिद्ध है।

**शिक्षा :** अपनी परंपरा के अनुरूप अपने कर्तव्य व दायित्व का पालन करने से बड़ा-से-बड़ा कष्ट टल जाता है और सदैव मंगल व पुण्य की प्राप्ति होती है।

## 2. पद्‌म पुराण

### प्रणाम करने से ब्रह्माजी के समान आयु की प्राप्ति

पद्‌म पुराण के सृष्टि खंड में इस कथा का विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है : भृगु ऋषि के पुत्र मुकण्डु के कोई पुत्र नहीं था। पुत्र के न होने पर मनुष्य को न तो पितृऋण से मुक्ति होती है, न ही उसे पुम् नामक नरक से मुक्ति मिलती है, न ही शास्त्रीय विधि अनुसार पितरों को कोई तर्पण-श्राद्ध करने वाला वंश में शेष रहता है। अतः ऋषि मुकण्डु चिंतित हो गए और उन्होंने अपनी पत्नी के साथ घोर तपस्या की। तपस्या के फलस्वरूप उनके यहां एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नामकरण मार्कण्डेय किया गया। जब यह बालक 5 वर्ष का था, उस समय ऋषि मुकण्डु की कुटी पर कोई सिद्ध योगी अतिथि के रूप में आए। बालक ने उन्हें प्रणाम किया, तो वह योगी बड़े चिंतामग्न हो गए। मार्कण्डेय के पिता ने योगी से चिंताग्रस्त होने

का कारण जानना चाहा, तो योगी ने कहा कि हे ऋषिवर! तुम्हारा पुत्र बहुत ही सुंदर, सुशील व ज्ञानवान् है, परंतु दुर्भाग्य से इसकी आयु केवल 6 मास ही शेष रह गई है। विधि का ऐसा ही विधान है। मुकण्डु जी ने धैर्यपूर्वक सब कुछ सुना और पुत्र का उपनयन करा कर उसे संध्या सिखा दी और यह नियम उन्हें बता दिया कि हे पुत्र, जो भी कोई अपने से बड़ा मिला जाए, उसे प्रसन्नता के साथ प्रणाम किया करो। बालक भावी को जानता था, अतः पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके प्रत्येक परिचित-अपरिचित जो भी उससे मिलते, उन्हें वह श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने लगा। धीरे-धीरे समय बीतने लगा। 5 मास और अंत में छठवां मास भी आ गया। बालक की मृत्यु की घड़ी में मात्र 5 दिन शेष रह गए। बालक श्रद्धापूर्वक अपने पिता द्वारा बताए गए नियम का पालन कर रहा था और संयोग से उधर से सप्तर्षि निकल रहे थे। बालक ने श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और सप्तर्षियों ने भी सहज ही उसे **आयुष्मान भव वत्स** का आशीर्वाद दे दिया। पीछे बालक के बारे में विचार करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि इसकी आयु तो मात्र 5 दिन शेष रह गई है। सप्तर्षि अब तो बालक को आशीर्वाद दे चुके थे, अब उनकी बात झूठी न हो, इसका क्या उपाय किया जाए, इस पर वे सब विचार करने लगे। आयु, कर्म, वित्त, विद्या व निधन, इन पांचों का उल्लेख विरंचि (ब्रह्मा जी) शिशु के गर्भ में ही निर्धारित कर देते हैं, अतः इसकी आयु में अब ब्रह्माजी ही वृद्धि कर सकते हैं। अतः सप्तर्षि, मुकण्डु ऋषि की आज्ञा लेकर मार्कण्डेय को अपने साथ ब्रह्मलोक ले गए। बालक ने पिता के बताए नियमानुसार उसने ब्रह्माजी को श्रद्धापूर्वक तुरंत साष्टांग प्रणाम किया और ब्रह्माजी ने भी तुरंत आशीर्वाद दिया, **आयुष्मान भव वत्स**। सप्त ऋषियों ने जगत पितामह ब्रह्माजी से कहा कि हे सृष्टि के सर्जक! इनकी आयु तो मात्र आज ही के दिन की शेष रह गई है। अब आपका आशीर्वाद व हमारा आशीर्वाद कैसे सत्य होगा? ब्रह्माजी बालक के श्रद्धापूर्वक प्रणाम करने से बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने उसे वरदान दिया कि इसकी आयु मेरी आयु के समान होगी। इसी वरदान के फलस्वरूप मार्कण्डेय ऋषि चिरजीवी हैं और प्रलय काल में जब संपूर्ण पृथ्वी जल से आप्लावित हो जाती है, तो वह ही इस भूलोक पर जीवित रहते हैं और वट-पत्र पर भगवान का दर्शन करते हैं।

**वटस्य पत्रस्य पुटे शयानम्**
**बालंमुकुन्दम् शिरसा नमामि**

**शिक्षा :** अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिए व जीवन में यदि कोई नियम बना लिया जाए, तो उसका पालन करना चाहिए तथा अपने से बड़ों का सदा सम्मान व उन्हें प्रणाम करना चाहिए। उनके आशीर्वाद से अनेक दुखों, व्याधियों व अमंगल का नाश होता है।

## 3. विष्णु पुराण

### धन्य कौन ?

एक बार भगवान श्रीकृष्ण सागर के मध्य द्वीप पर स्थित अपनी द्वारकापुरी में पटरानियों के साथ स्वर्ण सिंहासन पर विद्यमान थे कि सहसा तीव्र मेघ गर्जन व वायु का नाद हुआ और बड़े जोरों से वायु चलने लगी। सभी उपस्थित जन भयभीत व आश्चर्य चकित होकर प्रभु के मुखमंडल की ओर देखने लगे, परंतु प्रभु उसी प्रकार शांत व निश्छल बैठे रहे व मंद-मंद मुस्कराते रहे। सहसा वह प्रबल झंझावात शांत हो गया और मेघमंडल में से पृथ्वी पर नारद जी अवतरित हो गए। नारदजी ने तुरंत ही प्रभु की ओर उन्मुख होकर श्रद्धा व विनयपूर्वक कहा कि हे पुरुषोत्तम! देवताओं में आप ही परम आश्चर्य और धन्य हैं। प्रभु ने उत्तर दिया–हां, **मैं ही दक्षिणाओं के साथ आश्चर्य व धन्य हूं।** इस पर देवर्षि नारद जी ने उत्तर दिया, हे प्रभो! मेरे प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो गया है। यह कहकर नारदजी जाने लगे। नारद के चलने पर और अनायास ही यह सब घटित होने पर सभी सभासद आश्चर्य चकित रह गए और भगवान कृष्ण से कहने लगे कि हे प्रभु! नारद जी के यह कहने का क्या तात्पर्य था कि आप धन्य हैं और आपके उत्तर 'हां, मैं ही धन्य हूं,' का तात्पर्य क्या था ? कृपया इसे विस्तार से बताएं! भगवान ने मुस्करा कर नारद जी से कहा कि हे नारदजी! आप ही उपस्थित इन सभी जनों की शंका का समाधान करें। इस पर नारद जी कहने लगे–'राजाओ! सुनो, जिस प्रकार मैं इन श्रीकृष्ण के माहात्म्य को जान सका हूं, वह तुम्हें बतलाता हूं। एक बार मैं सूर्योदय के समय एकांत में गंगा के किनारे घूम रहा था। इतने में ही वहां एक पर्वताकार कछुआ आया। मैं उसे देखकर चकित रह गया। मैंने उसे हाथ से स्पर्श करते हुए कहा–'कूर्म! तुम्हारा शरीर परम आश्चर्यमय है। वस्तुतः तुम धन्य हो; क्योंकि तुम निःशंक और निश्चित होकर इस गंगा में सर्वत्र विचरते हो, फिर तुमसे अधिक धन्य कौन होगा?' मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि बिना कुछ सोचे ही वह कछुआ बोल उठा–'मुने! भला मुझमें आश्चर्य क्या है तथा प्रभो! मैं धन्य भी कैसे हो सकता हूं? धन्य तो हैं ये देवनदी गंगा, जो मुझ-जैसे हजारों कछुए तथा मकर आदि जीवों की आश्रयभूता शरणदायिनी हैं। मेरे-जैसे असंख्य जीव इनमें भरे हैं–विचरते रहते हैं, भला इनसे अधिक आश्चर्य तथा धन्य और कौन है?

नारदजी ने कहा–'राजाओ! कछुए की बात सुनकर मुझे बड़ा कुतूहल हुआ और मैं गंगादेवी के सामने जाकर बोला–'सरित्-श्रेष्ठे गंगे! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम तपस्वियों के आश्रमों की रक्षा करती हो, समुद्र में मिलती हो और सभी आश्चर्यों

से विभूषित हो।' इस पर गंगा तुरंत बोल उठीं—'नहीं, नहीं, देवर्षि नारद! मैं क्या आश्चर्यविभूषित या धन्य हूं। इस लोक में सर्वाश्चर्यकर परमधन्य तो समुद्र ही है, जिसमें मुझ जैसी सैकड़ों बड़ी-बड़ी नदियां मिलती हैं।' इस पर मैंने जब समुद्र के पास जाकर उसकी ऐसी प्रशंसा की, तो वह जलतल को फाड़ता हुआ ऊपर उठा और बोला—'मुने! मैं कोई धन्य नहीं हूं, धन्य तो है यह वसुन्धरा, जिसने मुझ-जैसे कई समुद्रों को धारण कर रखा है।'

समुद्र के वचनों को सुनकर मैंने पृथ्वी से कहा—'देहधारियों की योनि पृथ्वी! तुम धन्य हो। तुम समस्त आश्चर्यों की निवास भूमि भी हो। इस पर माता धेनु रूपा पृथ्वी बोली, हे देवर्षि नारद! मैं धन्य नहीं हूं, धन्य तो है वह पर्वत, जो मुझे भी धारण करने में समर्थ होने के कारण भूधर कहलाते हैं। यह सुनकर नारदजी पर्वतों के सम्मुख उपस्थित हुए और कहने लगे कि हे भूधर श्रेष्ठ ! आप ही धन्य हैं, क्योंकि आप पृथ्वी व समुद्र के साथ संपूर्ण मृत्युलोक को धारण किए हुए हैं। इस पर पर्वत बोले कि हे देवर्षि! हम लोग धन्य नहीं हैं। धन्य हैं संपूर्ण विश्व के संभूत व सृष्टि के सर्जक विरंचि (ब्रह्माजी), क्योंकि इस संपूर्ण माया जगत के निर्माता वही हैं। यह सुनकर नारद जी अपने पिता श्री ब्रह्माजी के पास ब्रह्मलोक में पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे कि हे प्रभु, आप ही एकमात्र इस ब्रह्मांड में धन्य हैं, क्योंकि इस संपूर्ण सृष्टि का आविर्भाव आपसे हुआ है और आप ही सृष्टि के आधार रूप हैं। इस पर ब्रह्माजी हंस कर बोले, हे मानस पुत्र! मेरी स्तुति करने से पूर्व यह तो देखो कि मेरा स्वयं का आधार क्या है? यह ठीक है कि इस संपूर्ण सृष्टि का सृजन मेरे द्वारा होता है, परंतु मेरा सर्जक कौन है? मैं जिस कमल दल की कर्णिका पर स्थित होकर सृजन कार्य में निमग्न रहता हूं, उस कमल दल का प्रस्फुटन कहां से होता है? उस कमल की उत्पत्ति कहां से होती है? कौन उस मृणाल को धारण करने का आश्रय देता है? कौन मेरे मुख से निष्पन्न वेदों की अंतिम गति है? कौन इन वेदों की वाक्भूय अभिव्यक्ति यज्ञों के रूप में होने पर यज्ञ पुरुष बनता है? कौन मेरी सृष्टि को स्थिति में रखता है?

यह सुनकर प्रभु, मैं उस कमल के आश्रयदाता व मृणाल के आधार व वेदों की अंतिम गति रूप यज्ञपुरुष विष्णु रूप की शरण में आया हूं और आपको ही परम आश्चर्य व धन्य कहकर संबोधित किया और आपने उसका अनुमोदन किया और मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। मेरी जिज्ञासा शांत हुई और मैं कुतूहल निवृत्त हो गया। प्रभु ! मैं आपका दर्शन पाकर धन्य हो गया।

**शिक्षा :** यह कथा गहन व गंभीर दार्शनिक जिज्ञासाओं पर आधारित है, जो संसार के पालक विष्णु जी की महत्ता को एक शोध रूप में प्रस्तुत करती है।

## 4. वायु-पुराण

### भाव प्रधान और कर्म गौण

सुशील नामक एक ब्राह्मण के सुवृत व वृत नाम के दो पुत्र थे। दोनों समवयस्क थे। एक बार युवावस्था में वे दोनों गुरुकुल से आने के पश्चात् देशाटन के लिए प्रयाग पहुंचे। उन दिनों भाद्रपद मास चल रहा था व कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व की तैयारियां चल रही थीं। कुछ दिनों के पश्चात् जन्माष्टमी के पर्व पर वह भगवान कृष्ण के मंदिर में रात्रि को दर्शनार्थ जा रहे थे कि बड़े जोर से वर्षा आ गई और दोनों मार्ग में किसी भवन में वर्षा से बचने के लिए जा कर घुस गए। वहां जाकर दोनों को पता चला कि यह तो वेश्या का घर है। सुवृत के मन में विकार आ गया और वह भगवत् दर्शन का विचार त्यागकर वेश्या के साथ विषय-भोग में तल्लीन हो गया और अपने भाई वृत को भी कहने लगा कि भैया, आज यहीं आनंद करते हैं। जन्माष्टमी तो हर वर्ष आती है। अगले वर्ष दर्शन कर लेंगे। वृत ने भाई की बात नहीं मानी और वह वेश्यालय में भाई को छोड़कर मंदिर चला गया। मन की चंचलता व इंद्रियों की भोगलोलुपता देखिए कि मंदिर में जाकर उसके भाव व संस्कार बदल गए और वह सुवृत और वेश्या के आनंद भोग के ध्यान में डूब गया। भगवान माधव की पूजा, कथा, स्तुति, पुष्पांजलि को देखते-सुनते-करते भी न तो वह सच्ची भावना से प्रभु को देख रहा था, न ही स्तुति सुन रहा था और न ही पुष्पांजलि अर्पित कर रहा। वह तो यंत्रवत् कर्म कर रहा था, भावशून्य, वेश्या के भाव में डूबा हुआ। उधर वेश्यालय में सुवृत की मानसिक दशा विचित्र हो गई और उसके भी भाव में आकस्मिक परिवर्तन आ गया। वह पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगा। वह स्वयं को धिक्कारने लगा और सोचने लगा—अरे, मेरे भाई वृत को देखो, वह जन्माष्टमी की पुण्य बेला में भगवान श्रीकृष्ण की चरण रज को मस्तक पर लगा रहा होगा। प्रभु माधव की मनमोहनी दिव्य मूर्ति के दर्शन कर रहा होगा। प्रभु को अर्घ्य दे रहा होगा। अब वह प्रभु की दिव्य आरती का दर्शन कर अपनी जीवात्मा को प्रभु की दिव्यात्मा में विलीन कर रहा होगा। उसका जीवन तो आज सफल हो गया। हम दोनों एक ही माता-पिता से जन्मे हैं, परंतु एक मैं हत्भाग्य हूं, जो आज पापकुंड में, वेश्यालय में पड़ा हूं और वेश्या की केशराशि को देख रहा हूं और दूसरी ओर मेरा भाई वृत है, जो मोर पंख वाले प्रभु के सुंदर मुखारविंद को जी भर कर देख रहा है। मन-ही-मन भाव रूप से वह प्रभु के ध्यान में डूब गया। ऐसे ही रात बीत गई। प्रातःकाल दोनों अपने निवास की ओर जाने लगे थे कि रास्ते में ही भीषण वज्रपात से दोनों की मृत्यु हो गई। तत्काल दो यमदूत व दो विष्णुदूत वहां आ गए। परंतु

आश्चर्य ! वेश्यालय में रात्रि व्यतीत करने वाले भाई सुवृत को विष्णुदूत दिव्य विमान में बिठाकर ले जाने लगे और रात्रि को भगवान कृष्ण के देवालय में जागरण करने वाले भाई वृत को यमदूत कष्ट देने लगे। सुवृत विष्णुदूतों से बोला कि कहीं आप लोग भूल तो नहीं कर रहे, जो मुझे दिव्य विमान में ले जा रहे हैं। मैं तो सारी रात पाप कर्म में विलीन वेश्यालय में पड़ा था, विष्णु पूजा में तो मेरा भाई वृत तल्लीन था, इस पर दोनों विष्णु पार्षद मुस्कुराए और कहने लगे कि न तो हम कोई भूल कर रहे हैं और न ही अन्याय कर रहे हें। धर्म का तत्व बहुत ही सूक्ष्म, विचित्र व रहस्यमय है। धर्मकार्य भावप्रधान है और मनःशुद्धि उसका आधार है। कर्म की धर्म में इतनी प्रधानता नहीं है जितनी मन की। तुम रातभर वेश्यालय में रहकर मन से, भाव से भगवद् चिंतन में डूबे रहे, जबकि तुम्हारा भाई रात भर देवालय में रहकर भी मन से तथा भाव से वेश्या के रूप-रस में डूबा रहा, अतः वह यमदूतों द्वारा ले जाया जा रहा है।

**शिक्षा :** कर्म करने की क्रिया में भाव शुद्धि होना आवश्यक है, अर्थात् साध्य की पवित्रता व शुद्धता के लिए साधन को भी पवित्र व शुद्ध रहना चाहिए।

### 5. श्रीमद्भागवत पुराण

## रंतिदेव की कथा

श्रीमद्भागवत के नवम् स्कंध में मनु के वंशज व सुकृति के पुत्र रंतिदेव के दान की कथा का प्रसंग आता है, जिसके माध्यम से यह दर्शाया गया है कि वास्तविक दान वही है, जिसमें स्वयं व स्व को भुलाकर सर्वस्व त्याग व अर्पण की भावना का समावेश हो। यदि आप भूखे हैं, आपके पास अन्न का एक ग्रास है, तो उसमें से आधा दान करने का भाव दान है, यदि आप प्यासे हैं और आपके पास केवल एक गिलास जल है, तो उसमें से आधे गिलास जल को दान करने का भाव दान है। दान, धन व समृद्धि को गरीबों में बांटना नहीं, अपितु अपने सीमित संसाधनों में मानव मात्र व जीव-जंतुओं की सेवा करना है।

कथा इस प्रकार है कि रंतिदेव में त्याग व दान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। मानव हो या अन्य कोई जीव, उनकी सब में समान दृष्टि थी और सबको खिलाकर ही स्वयं भोजन ग्रहण करने का उनका नियम था, जो धीरे-धीरे उनके परिवार के सभी सदस्यों की जीवनचर्या बन गया। एक बार अकाल के समय कई दिनों तक अन्न व जल रंतिदेव और उनके परिवार को प्राप्त नहीं हुआ। अंत में एक दिन कहीं से भंडारे में उन्हें खीर, हलवा, पूड़ी व अन्य व्यंजन प्राप्त हुए। ज्योंही

रंतिदेव परिवार सहित भोजन करने बैठे कि एक ब्राह्मण आ गया, जो भूखा था। रंतिदेव ने प्रेम व श्रद्धा से ब्राह्मण को भोजन कराया और उसके जाने के पश्चात् बचे भोजन को पुनः आपस में बांटकर खाने लगे। फिर एक शूद्र क्षुधा से पीड़ित होकर उनके द्वार पर आकर याचना करने लगा। अतिथि तो देवता है और ब्रह्म के लिए ब्राह्मण, शूद्र व श्वान सभी में समदृष्टि के अनुरूप ब्रह्म स्थित है। उस शूद्र अतिथि को भी प्रेम व श्रद्धापूर्वक भोजन कराया गया। अब तीसरी बार थोड़े-से बचे भोजन में से वह सपरिवार बांटकर खाने को बैठे ही थे कि एक चांडाल अपने कुत्ते के साथ आ गया और कहने लगा, हे रंतिदेव! मैं और मेरा कुत्ता अकाल के कारण तीन दिन से भूखे हैं। हमें कुछ अन्न चाहिए अन्यथा हमारे प्राण निकल जाएंगे। अन्न बहुत थोड़ा-सा बचा था, स्वयं रंतिदेव अपनी पत्नी व छोटे-छोटे पुत्रों के साथ क्षुधा से व्याकुल थे, परंतु चांडाल व श्वान में भी अतिथि रूप में भगवान को पाकर उन्होंने अपनी भूख-प्यास व पीड़ा को भुलाकर सारा अन्न उन्हें दे दिया। चांडाल व कुत्ते ने वह भोजन पा लिया और चले गए, रंतिदेव के पास अब केवल एक गिलास जल शेष रह गया। वह परिवार में जल को बांटकर पीने ही वाले थे कि एक गरीब भिखारी, जो भूख व प्यास से अर्द्धमूर्च्छित व विक्षिप्त हो रहा था, उनके द्वार पर आकर गिर पड़ा। उसके मुख से वाणी नहीं निकल रही थी, होंठ सूख चुके थे, सांस अत्यंत धीमी गति से चल रही थी। उसकी ऐसी दशा देखकर रंतिदेव का हृदय करुणा व दया से भर आया और अतिथि धर्म का पालन करने के लिए उन्होंने वह अंतिम गिलास जल भी उस गरीब भिखारी को दे दिया। अपने को दुःख व कष्ट देकर त्याग-भावना से दूसरे के कष्ट और पीड़ा मिटाने के लिए किया गया दान ही सर्वश्रेष्ठ है। इसी भावना के अनुरूप रंतिदेव ने अकाल में कई दिनों से भूखे होने के पश्चात् भी अपना सर्वस्व दान दे दिया।

सब कुछ दान करने के उपरांत स्वयं रंतिदेव व उनका परिवार क्षुधा व प्यास से पूर्णतः मूर्च्छित होने ही वाला था कि उन्होंने देखा कि न तो वहां चांडाल है, न श्वान है, न ब्राह्मण है, न गरीब भिखारी। वहां तो शंख-चक्र-गदाधारी साक्षात् भगवान विष्णु खड़े हैं और वही विभिन्न रूपों में रंतिदेव के दान, समदृष्टि व अतिथि सेवा की परीक्षा ले रहे थे, उनके साथ कैलाशपति भगवान शंकर व जगत के कारण संभूत ब्रह्माजी भी विद्यमान थे। रंतिदेव उनके चरणों में गिर पड़े और त्रिदेव ने कहा कि हे रंतिदेव! तुम धन्य हो, तुम्हारा अतिथि प्रेम, मानव धर्म व दान की भावना आने वाले समय में सदैव मनुष्य मात्र के लिए एक प्रेरक उदाहरण होगा।

**शिक्षा :** इस कथा की शिक्षा यह है कि मनुष्य को कष्ट में पड़े जीव की जाति, धर्म या कुल न देखकर उसे केवल ब्रह्म के प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

## 6. नारद पुराण

### गंगा की कथा तथा पुत्र या वंशज के कर्तव्य

मृत्युलोक पर गंगा के अवतरण की कथा का विस्तृत प्रसंग नारद पुराण में प्राप्त होता है। सूर्यवंशी राजा सगर की दो पत्नियां थीं, परंतु किसी से भी उन्हें संतान प्राप्त नहीं हुई। वह अपने कुलगुरु राजा वशिष्ठ की शरण में गए, तो उन्होंने उपाय बतलाया कि वह घर आए ऋषियों का स्वागत-सत्कार करें, तो समय आने पर उन्हें आगंतुक ऋषियों ने आशीर्वाद दिया कि हे राजन! तुम्हारी दोनों रानियों से तुम्हें संतान की प्राप्ति होगी। एक रानी से तुम्हें 60 हजार पुत्रों की प्राप्ति होगी व दूसरी से केवल एक पुत्र प्राप्त होगा, परंतु तुम्हारे वंश का विस्तार करने वाला केवल दूसरी रानी का एकलौता पुत्र होगा। पहली रानी के साठ हजार पुत्र न तो वंशवृद्धि करेंगे, न ही पितृऋण से विमुक्त होंगे।

समय आने पर वरदान फलीभूत हुआ। कालांतर में महाराजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। परंपरानुसार अश्व छोड़ा गया और महाराजा सगर के साठ हजार पुत्र रक्षक के रूप में घोड़े के साथ भेजे गए। महाराजा सगर के ये साठ हजार पुत्र अत्यंत दुराचारी व आततायी थे, अतः उन्हें दंड देने के प्रयोजन से इंद्र ने अश्व को अदृश्य करके पाताल लोक में महात्मा कपिल की कुटिया में छिपा दिया। राजकुमारों ने घोड़े की खोज में समस्त पृथ्वी छान डाली, परंतु उन्हें कहीं भी यज्ञ का घोड़ा नहीं मिला। अंत में आकाशवाणी हुई, "हे सगरपुत्रों ! तुम्हारा अश्व रसातल में बंधा है। यह सुनकर राजकुमार रसातल पहुंचे और घोड़े को महात्मा कपिल जी के सम्मुख बंधा देखकर क्रोधित हो उठे और कहने लगे, "इसे पकड़ लो, यह साधु नहीं बगुला भगत है, इसी ने घोड़ा चुराया है। महात्मा कपिल ध्यान में लीन थे। उन्हें बाह्य जगत का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था और उनकी संपूर्ण चित्तवृत्तियां अंतर्मुखी थीं, अतः उन पर दुष्ट राजकुमारों के चिल्लाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मूढ़बुद्धि राजकुमारों ने इसे अपमान व अवज्ञा समझा तथा उन्हें पकड़कर लातों से मारने लगे। बहुत देर के पश्चात् कपिल मुनि को बाह्य ज्ञान हुआ। वे विस्मित होकर क्रोध से सगर पुत्रों को देखने लगे और देखते-ही-देखते उनके नेत्रों से आग प्रकट हो गई और सगरपुत्र तत्काल वहीं भस्म हो गए।

महाराज सगर को यह दुःखद समाचार मिलने पर उन्होंने अपने पौत्र अंशुमान को कपिल मुनि के पास उनका कोप शांत करने के लिए भेजा। अंशुमान की विनयपूर्वक स्तुति व क्षमा याचना से कपिल मुनि का क्रोध शांत हो गया और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पौत्र भगीरथ जब अपनी कठिन आराधना से पुण्यसलिला

गंगा को यहां लाएगा, तो उनके पवित्र जल के स्पर्श से तुम्हारे ये पिता के भाई मुक्त होंगे और इन्हें परम पद की प्राप्ति होगी। कालांतर में अंशुमान के दिलीप नाम का पुत्र हुआ। इन्हीं के भगीरथ नामक पुत्र का जन्म हुआ। अपने पितरों के उद्धार के लिए भगीरथ ने दीर्घकाल तक हिमालय पर कठोर तप करके गंगा का पृथ्वी पर अवतरण किया। गंगाजी की पवित्र धारा जब सगर पुत्रों के भस्म को प्लावित करते हुए प्रवाहित होने लगी, तो वे सभी विष्णुधाम को पहुंच गए और उनकी मुक्ति हो गई।

पुराण में इस कथा के माध्यम से पुण्यसलिला, पापविमोचनी, कलिमलतारिणी गंगा जी की महिमा को इस प्रकार वर्णित किया गया है–

**न गंगासदृशम् तीर्थम्, ना देवो केशवापराह**

(न गंगा जैसा कोई तीर्थ है, न भगवान विष्णु सदृश कोई देव)

गंगा जल के सेवन से पापों का नाश होता है। नारद पुराण के अनुसार गंगा जल का प्रभाव एक वर्ष तक मानव शरीर पर रहता है।

पुत्र की कामना इसी भगीरथ परंपरा के अनुरूप की जाती है। जब भी माता-पिता या अन्य पूर्वज की मृत्यु हो, तो दस दिन के भीतर ही यदि उसकी अस्थियों का गंगा जी से संयोग हो जाए, तो उसे परलोक में उत्तम फल की प्राप्ति होती है। जब तक मृतक की अस्थियों को गंगा जल का स्पर्श व सान्निध्य प्राप्त नहीं होता, तब तक उसकी आत्मा व प्रेत शरीर एक कष्टदायक ताप व अशांति से व्याकुल रहते हैं।

वर्तमान में तर्क प्रधान विचारों के कारण गंगा जल की पवित्रता व महत्ता को बहुत-से लोग स्वीकार नहीं करते और उनका तर्क होता है कि गंगा जल व अन्य बहते जलों में या अन्य नदियों के जल में क्या अंतर है? इस संदर्भ में मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा के प्रोफेसर एफ.सी. हैरिसन ने वैज्ञानिक शोध के पश्चात् यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि हैजे के जीवाणु मात्र तीन घंटे में ही गंगा जल में मृत व निष्प्रभावी हो जाते हैं। इसी के अनुरूप फ्रांस के चिकित्सक डॉ. डी. हैरेज के अनुसार अमीबा के अतिसार से मरे व्यक्ति के शरीर को गंगा जी में प्रवाहित करने के पश्चात् 2 फुट नीचे जहां करोड़ों की संख्या में अमीबा होने चाहिए थे, वहां एक भी अमीबा का नामोनिशान नहीं था और तो और, गंगा जल में जब विभिन्न प्रकार के जीवाणुओं का संवर्धन (कल्चर) किया गया, तो वैज्ञानिकों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि गंगा जल में कोई भी जीवाणु नहीं पनप सका। इसी जल के पान से शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, ऐसा भी शोध से ज्ञात हुआ है।

**शिक्षा :** इस कथा से हमें शिक्षा मिलती है कि पुत्र वही है, जो अपने पितरों की मुक्ति के लिए उनकी अस्थियों को गंगाजी में अवश्य पहुंचाए और जीवन में या संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं, यदि सतत् प्रयास किया जाए।

## 7. मार्कण्डेय पुराण

### विपुलस्वान् मुनि और उनके पुत्रों की कथा

द्वापर युग की बात है, मन्दपाल नामक एक पक्षी था। उसके चार पुत्र थे, जो बड़े बुद्धिमान् थे। उनमें द्रोण सबसे छोटा था। वह बड़ा धर्मात्मा और वेद-वेदांग में पारंगत था। उसने कन्धर की अनुमति से उसकी पुत्री तार्क्षी से विवाह किया। कुछ समय बाद तार्क्षी गर्भवती हुई और साढ़े तीन मास के पश्चात् वह कुरुक्षेत्र चली गई। वहां वह कौरवों और पाण्डवों के भयंकर युद्ध के बीच घुस गई। तब अर्जुन के बाण से उसकी खाल उधड़ गई, जिससे उसका पेट फट गया और उसके चार अंडे अपनी आयु शेष रहने के कारण पृथ्वी पर ऐसे गिरे, मानो रुई की ढेर पर गिरे हों। उनके गिरते ही राजा भगदत्त के सुप्रतीक नामक गजराज का विशाल घंटा, जिसकी जंजीर अर्जुन के ही बाण से कटी थी, नीचे गिर पड़ा। उसने भूतल को विदीर्ण कर दिया और मांस की ढेर पर पड़े तार्क्षी के उन अंडों को चारों ओर से ढक दिया।

इसी समय शमीक ऋषि उस स्थान पर आ पहुंचे। वहां उन्होंने उन पक्षि-शावकों की चीं-चीं की ध्वनि सुनी। तब उन्होंने शिष्यों के साथ उस घंटे को ऊपर उठाया और उन अनाथ पक्षि-शावकों को देखा। फिर तो उन्होंने शिष्यों से कहा—"इन पक्षि-शावकों को आश्रम में ले चलो और इन्हें ऐसे स्थान पर रखो, जहां बिलाव आदि का भय न हो।"

मुनिकुमार पक्षि-शावकों को लेकर आश्रम में आए। वहां मुनिवर शमीक ने प्रतिदिन भोजन, जल और संरक्षण के द्वारा उनका पालन-पोषण किया। एक मास में ही वे सूर्यदेव के रथमार्ग पर उड़ने लगे, जिन्हें कौतुकवश आंखें फाड़कर मुनिकुमार देखा करते थे।

जब उन पक्षि-शावकों ने नगरों से भरी, समुद्र से घिरी, नदियों वाली और रथ के पहिए के समान गोल पृथ्वी का परिभ्रमण कर लिया, तब वे आश्रम में लौट आए। उस समय ऋषि शमीक शिष्यों पर अनुकम्पा करके प्रवचन द्वारा धर्म-कर्म का निर्णय कर रहे थे। उन पक्षि-शावकों ने उनकी प्रदक्षिणा करके उनकी वन्दना की और कहा—"मुनिवर! आपने हमें भयंकर मृत्यु से मुक्त किया है, अतः आप हमारे पिता हैं और गुरु भी। जब हम लोग मां के पेट में थे, तभी हमारी मां मर

गई और पिता ने भी हमारा पालन-पोषण नहीं किया। आपने हमें जीवनदान दिया है, जिससे हम बालक बचे हुए हैं। इस पृथ्वी पर आपका तेज अप्रतिहत है। आपने ही हाथी का घंटा उठाकर कीड़ों की भांति सूखते हुए हम लोगों के कष्टों का निवारण किया है।''

उन पक्षि-शावकों की ऐसी स्पष्ट शुद्ध वाणी सुनकर शमीक मुनि ने उनसे पूछा—''ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें यह मानव वाणी कैसे मिली? साथ ही यह भी बताओ कि किसके शाप से तुम में रूप और वाणी का ऐसा परिवर्तन हो गया?''

पक्षियों ने कहा—विपुलवान् नाम के एक प्रसिद्ध महामुनि थे। उनके दो पुत्र हुए—सुकृष और तुम्बुरु। हम चारों यतिराज सुकृष के ही पुत्र हैं और सदा विनम्रतापूर्वक व्यवहार और भक्तिभाव से उन्हीं की सेवा-शुश्रूषा में लगे रहे हैं। तपश्चरण में लीन अपने पिता सुकृष मुनि की इच्छा के अनुसार हमने समिधा, पुष्प और भोज्य पदार्थ सब कुछ उन्हें समर्पित किया है। इस प्रकार जब हम वहां रहते थे, तब एक बार हमारे आश्रम में विशाल देहधारी टूटे पंखवाले वृद्धावस्थाग्रस्त ताम्रवर्ण के नेत्रों से युक्त, शिथिल-शरीर पक्षी के रूप में देवराज इन्द्र पधारे। वे सुकृष ऋषि की परीक्षा लेने आए थे। उनका आगमन ही हम लोगों पर शाप का कारण बन गया।

पक्षी-रूपी इन्द्र ने कहा—''पूज्य विप्रवर! मैं भूखा हूं, आप मेरी प्राण-रक्षा करें। मैं भोजन की याचना करता हूं। आप ही हमारे एकमात्र उद्धारक हैं। मैं विन्ध्याचल के शिखर पर रहने वाला हूं, जहां से उड़ान भरने वाले पक्षियों के पंखों की वेगयुक्त वायु से मैं नीचे गिर पड़ा। गिरने के कारण मैं सप्ताहभर बेसुध पृथ्वी पर पड़ा रहा। आठवें दिन मेरी चेतना लौटी। तब क्षुधा से पीड़ित मैं आपकी शरण में आया हूं। मैं बड़ा दुःखी हूं, मेरा मन बड़ा खिन्न है और मेरी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी है। बस, मुझे भोजन की अभिलाषा है। विप्रवर! आप मुझे कुछ खाने को दें, जिससे मेरे प्राण बच जाएं।''

ऐसा कहे जाने पर सुकृष ऋषि ने पक्षिरूपधारी इन्द्र से कहा—''प्राणरक्षा के लिए तुम जो भी भोजन चाहो, मैं दूंगा।'' ऐसा कहकर ऋषि ने फिर उस पक्षी से पूछा—''तुम्हारे लिए मैं किस प्रकार के भोजन की व्यवस्था करूं?'' यह सुनकर उसने कहा—''नर-मांस मिलने पर मैं पूर्णरूप से संतृप्त हो जाऊंगा।''

ऋषि ने पक्षी से कहा—तुम्हारी कुमारावस्था एवं युवावस्था समाप्त हो चुकी है, अब तुम बुढ़ापे की अवस्था में हो। इस अवस्था में मनुष्य की सभी इच्छाएं दूर हो जाती हैं। फिर भी ऐसा क्यों है कि तुम इतने क्रूर-हृदय हो? कहां तो मनुष्य का मांस और कहां तुम्हारी अंतिम अवस्था, इससे तो यही सिद्ध होता है कि दुष्टात्मा

लोगों में कभी भी प्रेम भावना उत्पन्न नहीं हो पाती। मेरा यह सब कहना निष्प्रयोजन है, क्योंकि जब मैंने वचन दे दिया, तब तो तुम्हें भोजन देना ही है।

उससे ऐसा कहकर और नर-मांस देने का निश्चय करके विप्रवर सुकृष ने अविलम्ब हम लोगों को पुकारा और हमारे गुणों की प्रशंसा की। तत्पश्चात् उन्होंने हम लोगों से, जो विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़े बैठे थे, बड़ा कठोर वचन कहा—"अरे पुत्रो! तुम सब आत्मज्ञानी होकर पूर्णमनोरथ हो चुके हो, किंतु जैसे मुझ पर अतिथि-ऋण है, वैसे ही तुम पर भी है, क्योंकि तुम्हीं मेरे पुत्र हो। यदि तुम अपने गुरु को, जो तुम्हारा एकमात्र पिता है, पूज्य मानते हो, तो निष्कलुष हृदय से मैं जैसा कहता हूं, वैसा करो।" उनके ऐसा कहने पर गुरु के प्रति श्रद्धालु हम लोगों के मुंह से निकल पड़ा कि आपका जो भी आदेश होगा, उसके विषय में आप यही सोचें कि उसका पालन हो गया।

ऋषि ने कहा—"भूख और प्यास से व्याकुल हुआ यह पक्षी मेरी शरण में आया है। तुम लोगों के मांस से इसकी क्षणभर के लिए तृप्ति हो जाती, तो अच्छा होता। तुम लोगों के रक्त से इसकी प्यास बुझ जाय, इसके लिए तुम लोग अविलम्ब तैयार हो जाओ।" यह सुनकर हम लोग बड़े दुःखी हुए और हमारा शरीर कांप उठा, जिससे हमारे भीतर का भय बाहर निकल पड़ा और हम कह उठे—"ओह! यह काम हमसे नहीं हो सकता।"

हम लोगों की इस प्रकार की बात सुनकर सुकृष मुनि क्रोध से जल-भुन उठे और बोले—"तुम लोगों ने मुझे वचन देकर भी उसके अनुसार कार्य नहीं किया, इसलिए मेरी शाप की अग्नि में जलकर पक्षियोनि में जन्म लोगे।"

हम लोगों से ऐसा कहकर उन्होंने उस पक्षी से कहा—"पक्षिराज! मुझे अपना अन्त्येष्टि-संस्कार और शास्त्रीय विधि से श्राद्धादि कर लेने दो, इसके बाद तुम निश्चिंत होकर मुझे यहीं खा लेना। मैंने अपना ही शरीर तुम्हारे लिए भक्ष्य बना दिया है।" "आप अपने योगबल से अपना यह शरीर छोड़ दें, क्योंकि मैं जीवित जन्तु को नहीं खाता।" पक्षी के इस वचन को सुनकर मुनि सुकृष योगयुक्त हो गए। उनके शरीर-त्याग के निश्चय को जानकर इन्द्र ने अपना वास्तविक शरीर धारण कर लिया और कहा—"विप्रवर! आप अपनी बुद्धि से ज्ञातव्य वस्तु को जान लीजिए। आप महाबुद्धिमान् और परम पवित्र हैं। आपकी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने यह अपराध किया है। आज से आप में ऐन्द्र अथवा परमेश्वर्ययुक्त ज्ञान प्रादुर्भूत होगा और आपके तपश्चरण तथा धर्म-कर्म में कोई भी विघ्न उपस्थित न होगा।"

ऐसा कहकर जब इन्द्र चले गए, तब हम लोगों ने अपने क्रुद्ध पिता महामुनि सुकृष से सिर झुकाकर निवेदन किया—"पिताजी! हम मृत्यु से भयभीत हो गए

थे, हमें जीवन से मोह हो गया था, आप हम दोनों को क्षमा-दान दें।'' तब उन्होंने कहा—''मेरे बच्चो! मेरे मुंह से जो बात निकल चुकी है, वह कभी मिथ्या न होगी। आज तक मेरी वाणी से असत्य कभी भी नहीं निकला है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि दैव ही समर्थ है और पौरुष व्यर्थ है। भाग्य से प्रेरित होने से ही मुझसे ऐसा अचिन्तित अकार्य हो गया है। अब तुम लोगों ने मेरे सामने नतमस्तक होकर मुझे प्रसन्न किया है, इसलिए पक्षी की योनि में पहुंच जाने पर भी तुम लोग परमज्ञान को प्राप्त कर लोगे। भगवान्! इस प्रकार पहले दुर्दैववश पिता सुकृष ऋषि ने हमें शाप दिया था, जिससे बहुत समय के बाद हम लोगों ने (मानव-योनि छोड़कर) दूसरी योनि में जन्म लिया है।

उनकी ऐसी बात सुनकर परमेश्वर्यवान् शमीक मुनि ने समस्त समीपवर्ती द्विजगण को सम्बोधित करके कहा—''मैंने आप लोगों के समक्ष पहले ही कहा था कि ये पक्षी साधारण पक्षी नहीं हैं, ये परमज्ञानी हैं, जो अमानुषिक युद्ध में भी मरने से बच गए।'' इसके बाद प्रसन्न हृदय महात्मा शमीक मुनि की आज्ञा पाकर वे पक्षी पर्वतों में श्रेष्ठ, वृक्षों और लताओं से भरे विन्ध्याचल पर्वत पर चले गए।

वे धर्मपक्षी आज तक उसी विन्ध्य पर्वत पर निवास कर रहे हैं और तपश्चरण तथा स्वाध्याय में लगे हैं एवं समाधि-सिद्धि के लिए दृढ़ निश्चय कर चुके हैं।

**शिक्षा :** गुरु व बड़ों की आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

## 8. अग्नि पुराण

### जड़भरत और सौवीर नरेश का संवाद

प्राचीन काल की बात है, राजा भरत शालग्राम क्षेत्र में रहकर भगवान वासुदेव की पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनकी एक मृग के प्रति आसक्ति हो गई थी, इसलिए अंतकाल में उसी का स्मरण करते हुए प्राण त्यागने के कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनि में भी उन्हें पूर्वजन्म की बातों का स्मरण रहा। अतः उस मृग शरीर का परित्याग करके वह स्वयं ही योगबल से एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्म का पूर्ण बोध था। उन्हें हृष्ट-पृष्ट देखकर सौवीर-नरेश के सेवक ने बेगार में लगाने के योग्य समझा और राजा की पालकी ढोने में नियुक्त कर दिया। सेवक के कहने से वह सौवीर राजा की पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि बेगार में पकड़े जाने पर अपने प्रारब्ध भोग का क्षय करने के लिए राजा का भार वहन करने लगे, परंतु उनकी गति मंद थी। वे पालकी में पीछे की ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब-के-सब तेज चल रहे

थे। राजा ने देखा कि यह जो नया कहार आया है, इसकी गति बहुत मंद है। तब वह बोले—'अरे! क्या तू थक गया? अभी तो तूने थोड़ी ही दूर तक मेरी पालकी ढोयी है। क्या परिश्रम नहीं सहा जाता? क्या तू मोटा-ताजा नहीं है? देखने में तो तू अत्यंत हृष्ट-पुष्ट जान पड़ता है?'

ब्राह्मण ने कहा—'राजन्! न मैं मोटा हूं, न मैंने तुम्हारी पालकी ढोयी है, न मुझे थकावट आई है, न परिश्रम करना पड़ा है और न मुझ पर तुम्हारा कुछ भार ही है। पृथ्वी पर दोनों पैर हैं, पैरों पर जंघाएं, जंघाओं के ऊपर उरु और उरुओं के ऊपर उदर (पेट) है। उदर के ऊपर वक्षस्थल, भुजाएं और कंधे हैं तथा कंधों के ऊपर यह पालकी रखी गई है। फिर मेरे ऊपर यहां कौन-सा भार है? इस पालकी पर तुम्हारा कहा जाने वाला यह शरीर रखा हुआ है। वास्तव में तुम वहां (पालकी में) हो और मैं यहां (पृथ्वी) पर हूं—ऐसा जो कहा जाता है, वह सब मिथ्या है। सौवीर नरेश! मैं, तुम तथा अन्य जितने भी जीव हैं, सबका भार पंचभूतों के द्वारा ही ढोया जा रहा है। ये पंचभूत ही गुणों के प्रवाह में पड़कर चल रहे हैं। भूपालशिरोमणे! यदि मुझ (आत्मा) से भिन्न कोई भी अपनी पृथक् सत्ता रखता हो, तो 'यह मैं हूं', 'यह दूसरा है'—ऐसी बात भी कही जा सकती है। वास्तव में पर्वत, पशु तथा वृक्ष आदि का भेद सत्य नहीं है। शरीर दृष्टि से ये जितने भी भेद प्रतीत हो रहे हैं, सब-के-सब कर्मजन्य हैं। संसार में जिसे 'राजा' या 'राजा सेवक' कहते हैं, वह तथा और भी इस तरह की जितनी संज्ञाएं हैं, वे कोई भी निर्विकार सत्य नहीं हैं। भूपाल! तुम संपूर्ण लोक के राजा हो, अपने पिता के पुत्र हो, शत्रु के लिए शत्रु, धर्मपत्नी के लिए पति और पुत्र के पिता—इतने नामों के होते हुए मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूं? पृथ्वीनाथ! क्या यह मस्तक तुम हो? किंतु जैसा मस्तक तुम्हारा है, वैसे ही उदर भी तुम हो? (फिर उदर क्यों नहीं हो?) तो क्या इन पैर आदि अंगों में से तुम कोई हो? नहीं, तो ये सब तुम्हारे क्या हैं? महाराज! इन समस्त अवयवों से तुम पृथक् हो, अतः इनसे अलग होकर ही अच्छी तरह विचार करो कि 'वास्तव में मैं कौन हूं?'

यह सुनकर राजा ने उन भगवत्स्वरूप अवधूत ब्राह्मण से कहा—'ब्रह्मन्! मैं आत्म कल्याण के लिए उद्यत होकर महर्षि कपिल के पास कुछ पूछने के लिए जा रहा था। आप भी मेरे लिए इस पृथ्वी पर महर्षि कपिल के ही अंश हैं, अतः आप ही मुझे ज्ञान दें। जिससे ज्ञानरूपी महासागर की प्राप्ति होकर परम कल्याण की सिद्धि हो, वह उपाय मुझे बताइए।'

ब्राह्मण ने कहा—'राजन्! तुम फिर कल्याण का ही उपाय पूछने लगे। 'परमार्थ क्या है?' यह नहीं पूछते। 'परमार्थ' ही सब प्रकार के कल्याणों का स्वरूप है। मनुष्य

देवताओं की आराधना करके धन-संपत्ति की इच्छा करता है, पुत्र और राज्य पाना चाहता है, किंतु सौवीरनरेश! तुम्हीं बताओ, क्या यही उसका श्रेय है? (इसी से उसका कल्याण होगा?) विवेकी पुरुष की दृष्टि में तो परमात्मा की प्राप्ति ही श्रेय है, यज्ञादि की क्रिया तथा द्रव्य की सिद्धि को वह श्रेय नहीं मानता। परमात्मा और आत्मा का संयोग—उनके एकत्व का बोध ही 'परमार्थ' माना गया है। परमात्मा एक अर्थात् अद्वितीय है। वह सर्वत्र समान रूप से व्यापक, शुद्ध निर्गुण, प्रकृति से परे, जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वगत, अविनाशी, उत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप, गुण-जाति आदि के संसर्ग से रहित एवं विभु है। अब मैं तुम्हें निदाघ और ऋतु (ऋभु) का संवाद सुनाता हूं—

'ऋतु ब्रह्माजी के पुत्र और ज्ञानी थे। पुलस्त्यनंदन निदाघ ने उनकी शिष्यता ग्रहण की। ऋतु से विद्या पढ़ लेने के पश्चात् निदाघ देविका नदी के तट पर एक नगर में जाकर रहने लगे। ऋतु ने अपने शिष्य के निवास स्थान का पता लगा लिया था। हजार दिव्य वर्ष बीतने के पश्चात् एक दिन ऋतु निदाघ को देखने के लिए गए। उस समय निदाघ बलिवैश्वदेव के अनंतर अन्न-भोजन करके अपने शिष्य से कह रहे थे—'भोजन के बाद मुझे तृप्ति हुई है, क्योंकि भोजन ही अक्षय तृप्ति प्रदान करने वाला है।' यह कहकर वे तत्काल आए हुए अतिथि से भी तृप्ति के विषय में पूछने लगे।

तब ऋतु ने कहा—'ब्राह्मण! जिसे भूख लगी होती है, उसे ही भोजन के पश्चात् तृप्ति होती है। मुझे तो भूख ही नहीं लगी, फिर मेरी तृप्ति के विषय में क्यों पूछते हो? भूख और प्यास देह के धर्म हैं। मुझ आत्मा का ये कभी स्पर्श नहीं करते। तुमने पूछा है, इसलिए कहता हूं। मुझे सदा ही तृप्ति बनी रहती है। पुरुष (आत्मा) आकाश की भांति सर्वत्र व्याप्त है और मैं वह प्रत्यगात्मा ही हूं, अतः तुमने जो मुझसे यह पूछा कि 'आप कहां से आते हैं?' यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है? मैं न कहीं जाता हूं, न आता हूं और न किसी एक स्थान में रहता हूं। न तुम मुझसे भिन्न हो, न मैं तुमसे अलग हूं। जैसे मिट्टी का घर मिट्टी से लीपने पर सुदृढ़ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह भी पार्थिव अन्न के परमाणुओं से पुष्ट होती है। ब्रह्मन्! मैं तुम्हारा आचार्य ऋतु हूं और तुम्हें ज्ञान देने के लिए यहां आया हूं, अब जाऊंगा। तुम्हें परमार्थ तत्त्व का उपदेश कर दिया। इस प्रकार तुम इस संपूर्ण जगत् को एकमात्र वसुदेव-संज्ञक परमात्मा का ही स्वरूप समझो, इसमें भेद का सर्वथा अभाव है।'

तत्पश्चात् एक हजार वर्ष व्यतीत होने पर ऋतु पुनः उस नगर में गए। वहां जाकर उन्होंने देखा—निदाघ नगर के पास एकांत-स्थान में खड़े हैं। तब वे उनसे

बोले—'भैया! इस एकांत-स्थान में क्यों खड़े हो?' निदाघ ने कहा—ब्रह्मन्! मार्ग में मनुष्यों की बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है, क्योंकि ये नरेश इस समय इस रमणीय नगर में प्रवेश करना चाहते हैं, इसीलिए मैं यहां ठहर गया हूं।' ऋतु ने पूछा—'द्विजश्रेष्ठ! तुम यहां की सब बातें जानते हो, अतः बताओ कि इनमें कौन नरेश है और कौन दूसरे लोग हैं?' निदाघ ने कहा—ब्रह्मन्! जो इस पर्वत-शिखर के समान खड़े हुए मतवाले गजराज पर चढ़े हैं, वे ही दूसरे लोग हैं। यह नीचेवाला जीव हाथी है और ऊपर बैठे हुए सज्जन महाराज हैं।'

ऋतु ने कहा—'मुझे समझाकर बताओ, इनमें कौन राजा है और कौन हाथी?' निदाघ बोले—'अच्छा बतलाता हूं।' यह कहकर निदाघ ऋतु के ऊपर चढ़ गए और बोले—'अब दृष्टांत देखकर तुम वाहन को समझ लो। मैं तुम्हारे ऊपर राजा के समान बैठा हूं और तुम मेरे नीचे हाथी के समान खड़े हो।' तब ऋतु ने निदाघ से कहा—'मैं कौन हूं और तुम्हें क्या कहूं?' इतना सुनते ही निदाघ उतरकर उनके चरणों में पड़ गए और बोले—'निश्चय ही आप मेरे गुरुजी महाराज हैं क्योंकि दूसरे किसी का हृदय ऐसा नहीं है, जो निरंतर अद्वैत-संस्कार से सुसंस्कृत रहता हो।' ऋतु ने निदाघ से कहा—'मैं तुम्हें ब्रह्म का बोध कराने के लिए आया था और परमार्थ-सारभूत अद्वैत तत्त्व का दर्शन तुम्हें करा दिया।'

शिक्षा : परमात्मा के स्तर पर पहुंचकर सब कुछ आत्मवत् दिखाई देने लगता है। अतः सभी को प्रारंभ से ही आत्मवत् देखना चाहिए।

## 9. भविष्य पुराण

### कर्तव्यपरायणता का अद्भुत फल

प्राचीनकाल में वर्धमान नगर में रूपसेन नामक एक धर्मात्मा राजा था। एक दिन उसके दरबार में वीरवर नाम का एक गुणी व्यक्ति अपनी पत्नी, कन्या एवं पुत्र के साथ वृत्ति के लिए उपस्थित हुआ। राजा ने उसकी विनयपूर्ण बातों को सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा का वेतन नियत कर सिंह द्वार के रक्षक के रूप में उसकी नियुक्ति कर ली। दूसरे दिन राजा ने अपने गुप्तचरों से जब पता लगाया, तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव, विष्णु के मंदिरों में आराधनादि-कार्यों तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथों में वितरित कर से अपने परिजनों का पालन करता है। इससे राजा ने प्रसन्न होकर उसकी नियुक्ति को स्थायी कर दिया।

एक दिन आधी रात में जब मूसलाधार वृष्टि, रात्रि की विभीषिका सीमा स्पर्श कर रही थी, श्मशान से किसी नारी की करुण-क्रंदन-ध्वनि राजा के कानों में पड़ी।

राजा ने सिंह द्वार पर उपस्थित वीरवर से इस रुदन-ध्वनि का पता लगाने के लिए कहा। जब वीरवर तलवार लेकर चला, तब राजा भी उसके सहयोगार्थ एक तलवार लेकर गुप्त रूप से उसके पीछे लग गया। वीरवर ने श्मशान पहुंचकर एक स्त्री को वहां रोते देखा और उससे जब इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि 'मुझे इस राज्य की लक्ष्मी अथवा राष्ट्रलक्ष्मी समझो। इसी मास के अंत में राजा रूपसेन की मृत्यु हो जाने पर मैं अनाथ होकर कहां जाऊंगी, इसीलिए रो रही हूं।' वीरवर ने राजा के दीर्घायु के लिए जब उससे उपाय पूछा, तब उसने वीरवर के पुत्र की चंडिका के सामने बलि देने से राजा के शतायु होने की बात कही। फिर क्या था? वीरवर उलटे पांव घर लौटकर पत्नी, पुत्र आदि को जगाकर उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चंडिका मंदिर में पहुंचा। राजा भी गुप्त रूप से पीछे-पीछे सर्वत्र जाता रहा। वीरवर ने देवी की प्रार्थना कर राजा की आयु बढ़ाने के लिए अपने पुत्र की बलि चढ़ा दी। इसे देखते ही उसकी बहन का दुःख से हृदयस्फोट हो गया। फिर उसकी माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनों का दाह कर स्वयं भी राजा की आयु की वृद्धि के लिए बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवी की प्रार्थना कर अपने जीवन को व्यर्थ बताते हुए सिर काटने के लिए ज्यों-ही तलवार खींची, त्यों-ही देवी ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और वर मांगने को कहा। राजा ने परिजनों सहित वीरवर को जिलाने की बात कही। फलतः देवी ने सबको जिला दिया और राजा चुपके से वहां से चलकर अपने महल में जाकर लेट गया। इधर वीरवर भी कुछ देवी की कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवार को घर पर छोड़कर राजप्रसाद के सिंह द्वार पर खड़ा हो गया। जब राजा ने उसके वहां उपस्थिति के लक्षणों से परिचित होकर उसे बुलाकर अज्ञात नारी के रुदन का कारण पूछा, तब वीरवर ने कहा 'राजन्! वह कोई चुड़ैल थी और मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गई, चिंता की कोई बात नहीं।'

इस पर राजा मन-ही-मन उसकी धीरता तथा स्वामिभक्ति की प्रशंसा की और प्रातःकाल सारी बात अपने सभासदों से बतलाकर वीरवर को पुत्र सहित कर्नाट एवं लाटदेश (महाराष्ट्र-गुजरात) का अधिपति बना दिया।

**शिक्षा :** इस कथा से परोपकार, कर्तव्यपरायणता, दीन एवं अनाथ की सेवा, स्वामिभक्ति एवं परस्पर प्राणरक्षार्थ आत्मोत्सर्ग की भावना की तीव्र प्रेरणा मिलती है।

## 10. ब्रह्मवैवर्त पुराण

### गणेशजी पर शनि की दृष्टि

एक बार सूर्यपुत्र शनैश्चर गणेश जी को कैलास पर्वत पर देखने के लिए आए। उनका मुख अत्यंत नम्र था, आंखें कुछ मुंदी हुई थीं और मन एकमात्र श्रीकृष्ण के ध्यान में लगा हुआ था, अतः वे बाहर-भीतर श्रीकृष्ण का स्मरण कर रहे थे। उन्होंने वहां पहले विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य, देवगणों और मुनिवरों को प्रणाम किया। फिर उनकी आज्ञा से उस बालक को देखने गए। भीतर जाकर शनैश्चर ने सिर झुकाकर पार्वती देवी को नमस्कार किया। उस समय वे पुत्र को छाती से चिपटाए रत्नसिंहासन पर विराजमान हो आनंदपूर्वक मुस्करा रही थीं। सहसा शनैश्चर को सिर झुकाए देखकर दुर्गा ने उन्हें शीघ्र ही शुभाशीर्वाद दिया और उनका कुशल-मंगल पूछा–ग्रहेश्वर! इस समय तुम्हारा मुख नीचे की ओर क्यों झुका हुआ है तथा तुम मुझे अथवा इस बालक की ओर देख क्यों नहीं रहे हो?

शनैश्चर ने कहा–देवि ! मैं एक परम गोपनीय इतिहास, यद्यपि वह लज्जाजनक तथा माता के समक्ष कहने योग्य नहीं है, कहता हूं। मैं बचपन से ही श्रीकृष्ण का भक्त था। मेरा मन सदा श्रीकृष्ण के ध्यान में ही लगा रहता था। मैं विषयों से विरक्त होकर निरंतर तपस्या में रत रहता था। पिताजी ने चित्ररथ की कन्या से मेरा विवाह कर दिया। वह सती-साध्वी नारी अत्यंत तेजस्विनी तथा सतत तपस्या में रत रहने वाली थी। एक दिन ऋतु स्नान करके वह मेरे पास आई। उस समय मैं भगवान का ध्यान कर रहा था। अतः मैंने उसकी ओर देखा भी नहीं। पत्नी ने अपना ऋतुकाल निष्फल जानकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम अब जिसकी ओर भी दृष्टि करोगे, वही नष्ट हो जाएगा।' तदनंतर जब मैं ध्यान से विरत हुआ, तब मैंने उस सती को संतुष्ट किया, परंतु अब तो वह शाप से मुक्त कराने में असमर्थ थी, अतः पश्चात्ताप करने लगी। माता! इसी कारण मैं किसी वस्तु को अपने नेत्रों से नहीं देखता और तभी से मैं जीव हिंसा के भय से स्वाभाविक ही अपने मुख को नीचे किए रहता हूं। शनैश्चर की बात सुनकर पार्वती हंसने लगीं और नर्तकियों तथा किन्नरियों का सारा समुदाय ठहाका मारकर हंस पड़ा।

शनैश्चर का वचन सुनकर दुर्गा ने परमेश्वर श्रीहरि का स्मरण किया और इस प्रकार कहा–'सारा जगत् ईश्वर की इच्छा के वशीभूत ही है।' फिर देवी पार्वती ने कौतूहलवश शनैश्चर से कहा–'तुम मेरी तथा मेरे बालक की ओर देखो। भला, इस निषेक (कर्मफल भोग) को कौन हटा सकता है?' तब पार्वती का वचन सुनकर शनैश्चर स्वयं मन-ही-मन यों विचार करने लगे–'अहो! क्या मैं इस पार्वती नंदन

पर दृष्टिपात करूं अथवा न करूं? क्योंकि यदि मैं बालक को देख लूंगा, तो निश्चय ही उसका अनिष्ट हो जाएगा।' इस प्रकार कहकर शनैश्चर ने धर्म को साक्षी बनाकर बालक को तो देखने का विचार किया, परंतु बालक की माता को नहीं। शनैश्चर का मन तो पहले से ही खिन्न था। उनके कंठ, ओष्ठ और तालु भी सूख गए थे, फिर भी उन्होंने अपने बाएं नेत्र के कोने से शिशु के मुख की ओर देखा। शनि की दृष्टि पड़ते ही शिशु का मस्तक धड़ से अलग हो गया। तब शनैश्चर ने अपनी आंख फेर ली और फिर वे नीचे मुख करके खड़े हो गए। इसके पश्चात् उस बालक का खून से लथ-पथ हुआ सारा शरीर तो पार्वती की गोद में पड़ा रह गया। परंतु मस्तक अपने अभीष्ट गोलोक में जाकर श्रीकृष्ण में प्रविष्ट हो गया। यह देखकर पार्वती जी बालक को छाती से चिपटाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगीं और उन्मत्त की भांति भूमि पर गिरकर मूर्च्छित हो गईं। तब वहां उपस्थित सभी देवता, देवियां, पर्वत, गंधर्व, शिव तथा कैलासवासी जन यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए।

इस प्रकार उन सबको मूर्च्छित देखकर श्रीहरि गरुड़ पर सवार हुए और उत्तर दिशा में स्थित पुष्पभद्रा के निकट गए। वहां पुष्पभद्रा नदी के तट पर वन में स्थित एक गजेन्द्र को देखा, जो निद्रा के वशीभूत हो बच्चों से घिरकर हथिनी के साथ सो रहा था। उसका सिर उत्तर दिशा की ओर था, मन परमानंद से पूर्ण था और फिर तो श्रीहरि ने शीघ्र ही सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट लिया और रक्त से भीगे हुए उस मनोहर मस्तक को बड़े हर्ष के साथ गरुड़ पर रख लिया। गज के कटे हुए अंग के गिरने से हथिनी की नींद टूट गई। तब अमंगल शब्द करती हुई उसने अपने शावकों को भी जगाया। फिर वह शोक से विह्वल हो शावकों के साथ बिलख-बिलखकर चीत्कार करने लगी। तत्पश्चात् उसने भगवान् विष्णु का स्तवन किया। उसकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे वर दिया और दूसरे गज का मस्तक काटकर इसके धड़ से जोड़ दिया। फिर उन ब्रह्मवेत्ता ने ब्रह्मज्ञान से उसे जीवित कर दिया और उस गजेन्द्र के सर्वांग में अपने चरणकमल का स्पर्श कराते हुए कहा—'गज! तू अपने कुटुंब के साथ एक कल्पपर्यन्त जीवित रह।' इस प्रकार कहकर मन के समान वेगशाली भगवान् कैलास पर जा पहुंचे। वहां पार्वती के वास स्थान पर आकर उन्होंने उस बालक को अपनी छाती से चिपटा लिया और उस हाथी के मस्तक को सुंदर बनाकर बालक के धड़ से जोड़ दिया। फिर ब्रह्मस्वरूप भगवान् ने ब्रह्मज्ञान से हुंकारोच्चारण किया और उसे जीवित कर दिया। पुनः श्रीकृष्ण ने पार्वती को सचेत करके उस शिशु को उनकी गोद में रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा पार्वती को समझाना आरंभ कर किया। श्रीविष्णु का कथन सुनकर पार्वती का मन संतुष्ट हो गया। तव वे उन गदाधर भगवान्

को प्रणाम करके शिशु को दूध पिलाने लगीं। तदनंतर प्रसन्न हुई पार्वती ने शंकरजी की प्रेरणा से अंजलि बांधकर भक्तिपूर्वक उन कमलापति भगवान् विष्णु की स्तुति की।
**शिक्षा :** किसी भी मनुष्य का अकारण उपहास नहीं करना चाहिए।

## 11. लिंग पुराण

### दरिद्रता कहां पाई जाती है

समुद्र मंथन में हलाहल विष के निकलने के पश्चात् दरिद्रता की उत्पत्ति हुई। यह लक्ष्मी के उत्पन्न होने से पूर्व समुद्र मंथन से निकली थी। अतः इसे ज्येष्ठा भी कहते हैं। ज्येष्ठा का बड़ी कठिनता से दुःसह ऋषि से विवाह हुआ, परंतु जब भी घर में वेदपाठ या हरिनाम का उच्चारण होता था, तब ज्येष्ठा दोनों कान बंद कर लेती थी या घर से बाहर चली जाती थी। इससे दुःसह मुनि बहुत दुःखी और उद्विग्न थे। अंत में उन्होंने मार्कण्डेय ऋषि से इसका उपाय पूछा कि अलक्ष्मी को कौन-सा स्थान प्रिय होगा, जहां यह निवास करे और मैं शांतिपूर्वक भगवत् आराधना कर सकूं। मार्कण्डेय ऋषि ने काफी सोच-विचार के पश्चात् कहा कि हे महर्षे! जहां पति-पत्नी में परस्पर झगड़ा या कलह होता हो, वहां इस अलक्ष्मी का मैं प्रवेश निर्धारित करता हूं। ऐसे घर को लक्ष्मी त्याग देगी और वहां ज्येष्ठा का निवास होगा। दूसरा स्थान मैं इसके लिए ऐसे घर में निर्धारित करता हूं, जिनमें कांटेदार वृक्ष, पत्तियां शाखा में से दूध जैसा द्रव्य टपकाने वाले वृक्ष, पलाश व नीबू के वृक्ष होंगे। तीसरा स्थान मैं अलक्ष्मी या दरिद्रता के लिए ऐसे घर निर्धारित करता हूं जिनमें दोपहरिया, तगर, अपराजिता, केला, ताड़, तमाल, इमली, कदम्ब, खैर व मल्लातक के वृक्ष या पुष्प स्थित होंगे। जो व्यक्ति प्रतिदिन दांत साफ नहीं करते तथा गंदे कपड़े पहनते हैं और संध्याकाल में सोते हैं तथा हाथ-पैर धोए बिना सोते हैं, वह घर दरिद्रता के निवास स्थान होंगे। मार्कण्डेय मुनि के द्वारा दरिद्रता या ज्येष्ठा के यह स्थान निर्धारित हो जाने के पश्चात् दुःसह ऋषि ने अपनी पत्नी को पीपल के वृक्ष के नीचे बिठाकर स्वयं अन्यत्र चले गए और उसे कहा कि जो स्थान तुम्हारे लिए निर्धारित किए गए हैं, वहीं निवास करना, परंतु जहां भगवान विष्णु का नाम संकीर्तन व द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासु देवाय) व स्वाहा, व षट्कार व वेद का उद्घोष हो एवं शिवलिंग स्थापित हो, वहां तुम्हारा प्रवेश वर्जित होगा। अलक्ष्मी के पति क्योंकि उन्हें पीपल के वृक्ष के नीचे त्याग कर गए थे, अतः भगवान विष्णु ने यह नियम निर्धारित किया कि सूर्योदय के पूर्व तक अश्वत्थ (पीपल) पर अलक्ष्मी का अधिकार होगा, परंतु मेरा रूप होने के कारण सूर्योदय के पश्चात् इस पर लक्ष्मी का अधिकार होगा। अतः सूर्योदय से पूर्व

अश्वत्थ (पीपल) आराधना उचित नहीं मानी गई है।

**शिक्षा :** यद्यपि दरिद्रता के विभिन्न स्थानों का यहां वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जो तार्किक दृष्टि से सिद्ध करना कठिन है, परंतु आधुनिक वास्तुशास्त्री भी इसमें से बहुत से तथ्यों को स्वीकार करते हैं।

## 12. वराह पुराण

### कर्म रहस्य

संयमन नामक एक मुनि थे, जो अतिवंश में उत्पन्न हुए थे। उनकी वेदाभ्यास में बड़ी रुचि थी। वे प्रातः,मध्याह्न तथा सायं–त्रिकाल स्नान-संध्या करते हुए तपस्या करते थे। एक दिन धर्मारण्य क्षेत्र में परम पुण्यमयी गंगा नदी के तट पर स्नान करने के उद्देश्य से गए। वहां मुनि से निष्ठुरक नामक व्याध को देखकर उसे मना करते हुए कहा–'भद्र! तुम निंद्य कर्म मत करो।' तब मुनि की ओर देखकर वह व्याध मुस्कराते हुए बोला–'द्विजवर! सभी जीवधारियों में आत्मा रूप से स्थित होकर स्वयं भगवान् ही इन जीवों के वेश में क्रीड़ा कर रहे हैं। जैसे माया जानने वाला व्यक्ति मंत्रों का प्रयोग करके माया फैला देता है, ठीक वैसे ही यह प्रभु की माया है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए। यह सारा संसार अपनी जीवन-यात्रा के प्रयत्न में संलग्न रहता है। हां, इस कार्य के विषय में 'अहम्' अर्थात् 'मैं कर्ता हूं'–इस भाव का होना उचित नहीं है।' व्याध की बात सुनकर विप्रवर संयमन ने अत्यंत आश्चर्ययुक्त होकर उससे इस प्रकार कहा–'भद्र! तुम ऐसी युक्तिसंगत बात कैसे कह रहे हो?'

ब्राह्मण की बात सुनकर धर्म-मर्मज्ञ व्याध ने पुनः अपनी बात प्रारंभ की। उसने सर्वप्रथम लोहे का जाल बनाया। उसे फैलाकर उसके नीचे सूखी लकड़ियां डाल दीं। तदनंतर ब्राह्मण के हाथ में अग्नि देकर उसने कहा–'आर्य! इस लकड़ी के ढेर में आग लगा दीजिए।'

तत्पश्चात् ब्राह्मण ने मुख से फूंककर अग्नि प्रज्वलित कर दी। जब आग धधकने लगी, तब वह लोहे का जाल भी गरम हो उठा। साथ ही उसमें जो गाय की आंखों के समान छिद्र थे, उनमें से निकलती हुई ज्वाला इस प्रकार शोभा पाने लगी, मानो हंस के बच्चे श्रेणीबद्ध होकर निकल रहे हों। उस जलती हुई अग्नि से हजारों ज्वालाएं अलग-अलग फूट पड़ीं। आग के एक जगह रहने पर भी उस लौहमय जाल के छिद्रों से ऐसा दृश्य प्रतीत होने लगा। तब व्याध ने उस ब्राह्मण से कहा–-मुनिवर! आप इनमें से कोई भी एक ज्वाला उठा लें, जिससे मैं शेष ज्वालाओं

को बुझाकर शांत कर दूं।'

इस प्रकार कहकर उस व्याध ने जलती हुई आग पर जल से भरा एक घड़ा तुरंत फेंका। फिर तो वह आग सहसा शांत हो गई। सारा दृश्य पूर्ववत् हो गया। अब व्याध ने तपस्वी संयमन से कहा—'भगवन्! आपने जो जलती आग ले रखी है, वह उसी अग्निपुंज से प्राप्त हुई है। उसे मुझे दे दें, जिसके सहारे मैं अपनी जीवन-यात्रा संपन्न कर सकूं।' व्याध के इस प्रकार कहने पर जब ब्राह्मण ने लोहे के जाल की ओर दृष्टि डाली, तो वहां अग्नि थी ही नहीं। वह तो पुंजीभूत अग्नि के समाप्त होते ही शांत हो गई थी। तब कठोर व्रत का पालन करने वाले संयमन की आंखें मुंद गईं और वे मौन होकर बैठ गए। ऐसी स्थिति में व्याध ने उनसे कहा—'विप्रवर! अभी थोड़ी देर पहले आग धधक रही थी, ज्वालाओं का ओर-छोर नहीं था, किंतु मूल के शांत होते ही सब-की-सब ज्वालाएं शांत हो गईं। ठीक यही बात इस संसार की भी है।

'परमात्मा ही प्रकृति का संयोग प्राप्त करके समस्त भूत-प्राणियों के आश्रय रूप में विराजमान होते हैं। यह जगत् तो प्रकृति में विक्षोभ-विकार उत्पन्न होने से प्रादुर्भूत होता है, अतएव संसार की यही स्थिति है।'

**शिक्षा :** जड़-प्रकृति के संयोग से ही सृष्टि-क्रम चलता है, अतः किसी भी वस्तु को जड़वत् या हेय समझना उचित नहीं।

## 13. स्कंद पुराण

# शबर दंपती की दृढ़ निष्ठा

एक दिन सिंहकेतु नामक पंचालदेशीय राजकुमार अपने सेवकों के साथ वन में शिकार खेलने गया। उसके सेवकों में से एक शबर को शिकार की खोज में एक टूटा-फूटा शिवालय दिखाई पड़ा। शबर ने उसे उठा लिया और उसे लेकर वह राजकुमार के पास पहुंचा और शिवलिंग दिखलाकर विनयपूर्वक कहने लगा—'प्रभो! देखिए, यह कैसा सुंदर शिवलिंग है। आप यदि कृपापूर्वक मुझे पूजा की विधि बता दें, तो मैं नित्य इसकी पूजा किया करूं।'

निषाद के इस प्रकार पूछने पर राजकुमार ने प्रेमपूर्वक पूजा की विधि बतला दी। षोडशोपचार-पूजन के अतिरिक्त उसने चिताभस्म चढ़ाने की बात भी बतलाई। अब वह शबर प्रतिदिन स्नान कराकर चंदन, अक्षत, वन के नए-नए पत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नृत्य, वाद्य के द्वारा भगवान महेश्वर का पूजन करने लगा। वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेंट करता और तब वह स्वयं प्रसाद ग्रहण करता।

इस प्रकार वह श्रद्धालु शबर अपनी पत्नी के साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकर की आराधना में तल्लीन हो गया था।

एक दिन पूजा के लिए जब वह बैठा, तो देखता है कि पात्र में चिताभस्म तनिक भी शेष नहीं है। उसने बड़े प्रयत्न से इधर-उधर ढूंढ़ा, पर उसे कहीं भी चिताभस्म नहीं मिली। अंत में उसने अपनी चिंता पत्नी से व्यक्त की।

स्त्री ने उसे चिंतित देखकर कहा—'नाथ! डरिए मत, एक उपाय है। यह घर तो पुराना हो ही गया है। मैं इसमें आग लगाकर उसी में प्रवेश कर जाती हूं। इससे आपकी पूजा के निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो जाएगी।' बहुत वाद-विवाद के बाद शबर भी उसके प्रस्ताव से सहमत हो गया। शबरी ने स्वामी की आज्ञा पाकर स्नान किया और उस घर में आग लगाकर अग्नि की तीन बार परिक्रमा की, पति को नमस्कार किया, फिर सदाशिव भगवान् का हृदय में ध्यान करती हुई वह अग्नि में घुस गई। वह क्षण भर में जलकर भस्म हो गई, फिर शबर ने उस भस्म से भगवान् भूतनाथ की पूजा की।

शबर को कोई विषाद तो था नहीं। स्वभाववश पूजा के पश्चात् वह प्रसाद देने के लिए अपनी स्त्री को पुकराने लगा। स्मरण करते ही वह स्त्री तुरंत आकर खड़ी हो गई। अब शबर को उसके जलने की बात याद आई। उसने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि 'तुम और यह मकान तो सब जल गए थे, फिर यह सब कैसे हुआ?'

शबरी ने कहा—'जब मैं आग में घुसी, तो मुझे लगा कि जैसे मैं जल में घुसी हूं। आधे क्षण तक तो प्रगाढ़ निद्रा-सी विदित हुई और अब जगी हूं। जागने पर देखती हूं तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है। अब प्रसाद के लिए यहां आई हूं।'

निषाद-दंपती इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया। उस पर भगवान् के चार गण थे। उन्होंने ज्योंही उन्हें स्पर्श किया और विमान पर बैठाया, त्योंही उनके शरीर दिव्य हो गए।

**शिक्षा :** किसी भी पूजा या आराधना से इष्ट की प्राप्ति तभी संभव है, जब वह मनसा-वाचा-कर्मणा से संपन्न की जाए।

## 14. वामन पुराण

### भक्ति बड़ी है या शक्ति?

'मुनिप्रवर! रसातल में आपके पधारने का क्या कोई विशेष प्रयोजन है?'—महातेजस्वी प्रह्लाद ने च्यवन ऋषि का यथायोग्य पूजन कर विनम्रता-पूर्वक प्रश्न किया।

तब नर्मदा-तट पर 'नकुलीश्वर-तीर्थ' में स्नानार्थ आए च्यवन ऋषि ने एक

भूरे रंग के विषधर द्वारा उन्हें पकड़कर यहां लाने तक का संपूर्ण वृतांत उन्हें सुना दिया।

'महामुने! कष्ट के लिए मैं क्षमा-प्रार्थी हूं, पर इस रूप में मेरा कल्याण ही हुआ कि मुझे आपके दर्शन और आतिथ्य का सुअवसर अनायास प्राप्त हो गया। भगवन्! बहुत दिनों से पृथ्वी के किसी महान् तीर्थ पर भ्रमण की आकांक्षा मेरे मन में उठ रही है। इस विषय में आप मेरा मार्गदर्शन करें।'

ऋषि च्यवन ने नैमिषारण्य का वर्णन सुनकर दैत्यराज प्रह्लाद महाबलवान् दिति-पुत्रों एवं दानवों सहित यहां आए। तीर्थ-स्नान के पश्चात् प्रह्लाद ने वन में घूमते हुए एक अद्‌भुत दृश्य देखा–कृष्ण मृगचर्म धारण किए दो जटाजूटधारी मुनि तपस्या में निरत हैं। पर यह कैसी तपस्या? जिस विशाल शाल वृक्ष के नीचे बैठे वे तपस्या कर रहे हैं, वह तो बाणों से पूर्णतया आच्छादित है। दैत्यराज इस विरोधाभास को देखकर मुनियों को दंभी मान बैठे और उनके निकट जाकर बोले–आप दोनों यह दंभपूर्ण धर्मविनाशक कार्य क्यों कर रहे हैं? एक ओर जटाजूट का भार तो दूसरी ओर श्रेष्ठ अस्त्र भी?'

'दैत्येश्वर! तुम इससे चिंतित क्यों हो गए? सामर्थ्यवान् जो भी कार्य करता है, उसे वही शोभा देनेवाला बन जाता है।' तपस्वियों ने समझाया।

'नहीं, धर्म-सेतु को स्थापित करने वाले मुझ दैत्येन्द्र के रहते आपका यह अहंभाव मात्र प्रवंचना है।'–प्रह्लाल ने आवेश में कहा।

नर-नारायण नामक दोनों मुनियों ने प्रह्लाद को समझाया, पर अहंभाववश प्रह्लाद ने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैं युद्ध में आप दोनों को परास्त करूंगा।'

ब्रह्मास्त्र एवं माहेश्वरास्त्र–जैसे अस्त्रों का परस्पर प्रयोग भी हुआ, पर प्रह्लाद निरंतर पीछे हटते चले गए। उन्होंने मुद्‌गर, प्रास, परिघ, शक्ति आदि अनेक अस्त्रों का प्रयोग किया, पर फिर भी वे उनमें से पुरातन ऋषि महापराक्रमी लोकपति नारायण को पराजित न कर सके।

निराश प्रह्लादजी ने वैकुंठ-धाम में जाकर भगवान् विष्णु की शरण ली और उनसे अपनी पराजय का कारण जानना चाहा।

'प्रह्लाद! महाबाहु धर्मपुत्र नारायण तुम्हारे द्वारा अजेय हैं। वे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ परमज्ञानी ऋषि हैं। वे सभी देवता एवं असुरों से भी अजेय हैं।'

'पर भगवन्! मैंने तो उनके वेष को देखकर आवेश में जो प्रतिज्ञा कर ली, उसका क्या होगा?' प्रह्लाद ने विनयपूर्वक पूछा।

'दानवश्रेष्ठ! जहां शक्ति पराजित हो जाती है, वहां भक्ति विजयी होती है। नारायण पर विजय चाहते हो, तो भक्ति से उनकी आराधना करो।

भगवान् विष्णु के कथनानुसार प्रह्लादजी ने बदरिकाश्रम में जाकर भगवान् नर-नारायण को अपनी श्रद्धा-भक्ति से वश में किया और उनसे वरदान के रूप में यह मांगा--'अधोक्षज! मैं महापराक्रमी के रूप में नहीं, अपितु आपके भक्त के रूप में संसार में चर्चित होऊं'—

**त्वत्पादपंकजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम।'**

**शिक्षा :** भक्ति में ही शक्ति निहित होती है, अतएव शक्ति संपन्न होने के साथ-साथ उसमें भक्ति भी रखने से बल में काफी वृद्धि होती है।

## 15. कूर्म पुराण

### आसक्ति से विजेता भी पराजित

राजा दुर्जय सभी शास्त्रों में निष्णात हो चुके थे और शत्रुओं को भी जीत लिए थे। किंतु अपनी इंद्रियों पर वे विजय नहीं प्राप्त कर सके थे।

राजा दुर्जय जयध्वज के पवित्र वंश में उत्पन्न हुए थे। एक दिन दुर्जय यमुना के तट पर घूम रहे थे। वहां उर्वशी संगीत से अपना मनोरंजन कर रही थी। उसके कलकंठ से निकली हुई स्वर-लहरियां कण-कण को आप्लावित कर रही थीं। राजा दुर्जय का अपने मन पर कोई अधिकार तो था नहीं, वह उर्वशी के दिव्य सौंदर्य और दिव्य स्वर-लहरियों से आकृष्ट हो गए। अपनी पतिप्राणा पत्नी के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है, इसका ध्यान भी न रहा। उन्होंने उर्वशी से प्रणय-याचना की। उर्वशी तो अप्सरा थी। वासना ही उसका जीवन था। कामदेव के समान सुंदर युवक राजा दुर्जय उसे जंच गए। फिर तो दिन-रात आते-जाते रहे। राजा को इसका भान ही नहीं होता था। बहुत दिनों के बाद राजा का मोह-भंग हुआ। उसे अपनी नगरी याद आई। उसने उर्वशी से कहा—'मुझे अपने नगर की व्यवस्था देखनी है। व्यवस्था संभालकर शीघ्र लौट आऊंगा। उर्वशी ने कहा—'यदि एक वर्ष और ठहर जाते, तो अच्छा होता।' राजा ने कहा, 'मैं तुम्हारे बिना स्वयं नहीं रह सकता, इसलिए शीघ्र ही आऊंगा थोड़ी प्रतीक्षा करो।' उर्वशी ने स्वीकृति दे दी। राजा जब राजमहल में पहुंचे, तब उसे प्रतीक्षा करती हुई अपनी धर्मभार्या मिली। राजा उसे देखते ही अपराधी की तरह भय से कांप उठे। लज्जा से आंखें झुक गई थीं। पत्नी तो पतिप्राणा थी। पति के इस झेंप को सहन नहीं कर सकी। बोली—'स्वामिन्! आप तो किसी से नहीं डरते थे। आज भय से कांप क्यों रहे हैं? अपनी यह दुर्बलता और किसी के सामने व्यक्त न कीजिएगा।' किंतु दुर्जय के मुख पर ताला लग गया था, वे कुछ बोल न सके। पतिव्रता ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति से उर्वशी वाली घटना जान ली। बोली—'स्वामिन्! मैं सब कुछ जान चुकी हूं। मेरा सुख आपके सुख में ही

निहित है। मैं आपसे अप्रसन्न नहीं हूं, किंतु आप से पाप तो हो ही गया है। उसका प्रायश्चित्त होना आवश्यक है, नहीं तो पाप अगले दुःख का कारण बन सकता है।'

अपनी पत्नी का आश्वासन पाकर राजा दुर्जय का मन हलका हो गया। वह महर्षि कण्व के आश्रम में गए। उन्होंने महर्षि कण्व से अपने इस पाप का प्रायश्चित्त पूछा। महर्षि ने प्रायश्चित्त के उपाय बता दिए। उसे जानकर राजा हिमालय पर पहुंचे। वहां उनकी दृष्टि गंधर्व पर पड़ी, उसने एक दिव्य माला पहन रखी थी। उस माला से उसका सारा शरीर शोभा से जगमगा रहा था। राजा के मन में आया कि यह माला उर्वशी के अनुरूप है। इस माला से वह खिल उठेगी। यह विचार आते ही वे माला लेने के लिए उतावले हो गए। राजा मन के दास तो थे ही। बस, लुटेरे की तरह गंधर्व पर टूट पड़े। उसे मार-पीटकर माला ले लिए। अब न तो उन्हें धर्मभार्या की बातें याद थीं और न प्रायश्चित्त की ही।

दुर्जय माला लेकर यमुना-तट पर पहुंच गए। किंतु वहां उर्वशी नहीं थी। उन्होंने विह्वल होकर पृथ्वी का चप्पा-चप्पा छान डाला, किंतु उर्वशी का कहीं पता न था। विह्वलता ने उनकी दशा दयनीय बना दी थी। फिर वह हेमकूट पर पहुंचे, वहां भी उर्वशी का पता नहीं था। तब वह देवलोक पहुंचे। वहां मेरु पर्वत के मानसरोवर के दिव्य तट पर उर्वशी को देखा। राजा को बहुत शांति मिली। उन्होंने माला से अपनी प्रेयसी का शृंगार किया और अपने को कृतार्थ माना।

उर्वशी का जीवन वासनामय तो अवश्य था, किंतु वह आगे-पीछे सोच सकती थी। उसने जान लिया कि उसकी पतिव्रता स्त्री एक-न-एक दिन मुझे अवश्य शाप देगी, क्योंकि मैं उसके पतिव्रता की लगातार अवहेलना कर रही हूं। यह सोचकर उर्वशी ने अपना रूप उत्कट बना लिया। उसका प्रत्येक अंग रोष से भर गया। आंखें पीली-पीली हो गईं। दुर्जय का मन उर्वशी की ओर से फिर गया। वासना का भूत उनके सिर से उतर चुका था। अब वह आत्म-निरीक्षण कर सकते थे। उन्होंने अपने को बहुत धिक्कारा और कण्व ऋषि के बताए पथ पर आ गए। घोर तपस्या कर फिर महर्षि कण्व के आश्रम पर पहुंचे और विनम्रता से अपनी पतन-कहानी कह सुनाई। महर्षि कण्व ने राजा को काशी जाने का आदेश दिया और कहा—'गंगा में स्नान और तर्पण कर बाबा विश्वनाथ का दर्शन करो।' राजा दुर्जय ने काशी में गंगा-स्नान तथा तर्पण कर विधि-विधान से बाबा विश्वनाथ का दर्शन किया तथा पापों से मुक्ति पा ली।

शिक्षा : किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पहले उसका आत्म-निरीक्षण करना उचित रहता है।

## 16. मत्स्य पुराण

### सावित्री-सत्यवान की कथा

मद्र देश के राजा अश्वपति के कोई संतान नहीं थी। उसने कामदा देवी की आराधना की और देवी के आशीर्वाद से उसे एक पुत्री की प्राप्ति हुई। राजा अश्वपति व रानी मालती ने प्रेम से उस कन्या का नाम सावित्री रखा। यौवनावस्था को प्राप्त होने पर राजा ने उसका विवाह राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से करने का निश्चय किया। विवाह से पूर्व ही देवर्षि नारद ने राजा को आकर भविष्यवाणी की कि सत्यवान की आयु तो मात्र एक वर्ष शेष रह गई है। यह सब जानते हुए भी सावित्री-सत्यवान का विवाह हो गया और सावित्री पितृगृह से पतिगृह चली गई। कुछ समय बाद राजा द्युमत्सेन का राज्य नष्ट हो गया और वह नेत्रहीन हो गए। समय बीतने लगा। जब सावित्री के पति सत्यवान की आयु के 4 दिन शेष रह गए, तो सावित्री ने त्रिरात्र व्रत किया और चौथे दिन सत्यवान के साथ-साथ वन में चली गई। फिर दिन की समाप्ति निकट जान ईंधन इकट्ठा करने के लिए सत्यवान घने वन में गया और लकड़ियां इकट्ठा करते-करते उसके सिर में काफी दर्द होने लगा। तब वह वापस लौटकर सावित्री की गोद में सिर रखकर लेट गया। इसी बीच सावित्री ने यमराज को पास खड़ा देखा और अपने पति का शरीर निर्जीव होते देखा। यमराज जब चलने लगे, तो सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चलने लगी। यमराज ने उसे समझाकर वापस लौटाना चाहा, परंतु सावित्री ने कहा कि साध्वी स्त्री सदैव अपने पति के साथ-साथ जाती है, अतः जब तक संभव होगा, मैं भी अपने पति का अनुगमन करूंगी और जब संभव न रहेगा, तो अपने जीवन का त्याग कर दूंगी। तब यमराज ने प्रसन्न होकर सावित्री से कहा, ''तुम सत्यवान के प्राण के अतिरिक्त अन्य कोई भी वरदान मांग लो।'' तब सावित्री ने कहा—हे धर्मज्ञ, नष्ट नेत्रों वाले मेरे ससुर को, जिनका राज्य चला गया है, आप आंखों के सहित राज्य पुनः वापस दिलवा दीजिए। यमराज ने 'ऐसा ही' वरदान देकर कहा कि अब तुम लौट जाओ। परंतु सावित्री फिर भी नहीं लौटी और यमराज के पीछे-पीछे चलती रही। यमराज के पूछने पर उसने कहा कि इस संसार में मनुष्य को सदा सज्जनों का अनुगमन करना चाहिए और आप तो सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ, धर्मराज हैं, इसलिए मैं आपके साथ-साथ चल रही हूं। तब यमराज ने प्रसन्न होकर पुनः वरदान मांगने के लिए कहा। सावित्री ने अपने पिता के सौ पुत्र होने का वरदान मांग लिया। उसके पश्चात् भी सावित्री यमराज के साथ-साथ चलती रही। तब यमराज ने कहा कि सत्यवान अत्यन्त धर्मात्मा था, इसीलिए उसको लेने मैं स्वयं आया हूं। अब यह दूसरे लोकों में जाएगा, जहां तुम

नहीं जा सकोगी। इसलिए अब तुम लौट जाओ। तब सावित्री ने कहा कि धर्म का आचरण तो सभी को करना चाहिए, अर्थ और काम तो साधारण हैं, धर्म ही प्रमुख है। धर्म के आचरण से ही अर्थ और काम सहित सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। इसलिए मनुष्य को सदैव धर्माचरण करना चाहिए। यह सुनकर यमराज प्रसन्न हुए और उन्होंने सावित्री को एक और वरदान—सत्यवान के प्राणों को छोड़कर—मांगने के लिए कहा। इस पर सावित्री ने वरदान मांगा कि मेरे सौ पुत्र हों, क्योंकि पुत्रों के बिना मनुष्य की कोई गति नहीं है। यमराज ने यह वरदान भी दे दिया। तब सावित्री ने यमराज से कहा कि आप तो साक्षात धर्मराज हैं और संसार की मर्यादाओं के पालक हैं, अतः अब आप अपने वरदान को सत्य करने के लिए मेरे पति को जीवित कीजिए। तब यमराज ने सावित्री से प्रसन्न होकर सत्यवान को पुनः जीवित कर दिया और कहा कि यह अभी पचासी वर्ष तक और जिएगा तथा इससे सौ पुत्र होंगे, जो मालवी कहलाएंगे।

इस प्रकार अपने पति को जीवित कराकर सावित्री अपने घर लौटी। उसके ससुर को अपने नेत्र और राज्य वापस मिल गया और उसके पति को सौ पुत्र हुए। सावित्री ने अपना त्रिरात्र व्रत समाप्त किया और अपने पति के साथ रहती हुई शत पुत्रवती हुई। इस प्रकार सावित्री के दृढ़ निश्चय और पतिव्रत धर्म पालन के कारण वह नारी जाति में श्रेष्ठ मानी जाती है।

**शिक्षा :** दृढ़ निश्चय व बुद्धिमत्ता से मनुष्य कठिन-से-कठिन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकता है और प्रत्युत्पन्नमति और वाक्चातुर्य से अपने विरोधी को भी प्रभावित कर सकता है।

## 17. गरुड़ पुराण

### पिण्ड-दान का महत्त्व

मृत आत्मा की सद्गति हेतु पिंडदानादि श्राद्धकर्म अत्यंत आवश्यक हैं। पुन्नामक नरक से पिता को बचाने के कारण ही आत्मज पुत्र कहा जाता है। पुत्र का मुख देखकर पिता पैतृक ऋण से छूट जाता है और पौत्र के स्पर्शमात्र से यमलोक आदि का उल्लंघन कर जाता है। ब्राह्म-विवाह द्वारा परिणीता पत्नी से उत्पन्न पुत्र ऊर्ध्व—स्वर्गलोकादि में पहुंचाता है। यहां एक निःसंतान व्यक्ति के मरणोपरांत प्रेत होने की कथा प्रस्तुत है, जो राजा द्वारा दिए गए पिंड दान को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त हुआ था।

त्रेतायुग में महोदयपुर (कन्नौज) का निवासी बभ्रुवाहन नामक एक राजा था।

वह यज्ञ, दान, व्रत और तीर्थपरायण था। वह राजा शील-सदाचार से युक्त होकर प्रजा का तन-मन-धन से पालन करता था। एक दिन वह अपनी सेना के साथ शिकार खेलने विस्तृत वन में प्रवेश किया। वहां उसने एक सुंदर मृग को देखकर अपना अमोघ बाण चलाया। बाण से बिंधा वह मृग उस राजा के बाण को लेकर अदृश्य हो गया। राजा खून से गीली घास देखता हुआ हिरण के पीछे-पीछे चला और दूसरे निर्जन प्रदेश में प्रवेश कर गया। भूख-प्यास से व्याकुल राजा ने पानी पिया। वहां स्थित वट वृक्ष की छाया में वह विश्राम करने लगा। तभी उसने एक भयंकर प्रेत देखा, जिसका मैला, कुबड़ा, मांसरहित शरीर था, बाल ऊपर को उठे थे, इंद्रियां व्याकुल थीं। घोर विकृत राक्षस को सामने देखकर राजा डर गया और विस्मित हो गया। प्रेत भी निर्जन वन में राजा को देखकर विस्मित् होकर उससे कहने लगा—'पुण्यात्मा राजन्! तुम्हारे शुभ दर्शनों से आज मैं धन्य हो गया हूं और प्रेतभाव छोड़ रहा हूं।' राजा ने कहा—'भाई! तुमने यह भयानक प्रेतत्त्व रूप किस कर्म के परिणाम-स्वरूप प्राप्त किया है? मुझे अपनी सब व्यथा बताओ तथा किस दान-धर्म के करने से तुम्हारा उद्धार होगा, उसे कहो, मैं अवश्य करूंगा।'

प्रेत ने कहा—'राजन्! मैं पूर्व में विदिशा (भेलसा) नामक नगर में रहता था। जाति का मैं वैश्य था और मेरा नाम था—सुदेव। मैंने देवताओं और पितरों को सदा संतुष्ट किया। विविध दान देकर ब्राह्मण-दीन-दुर्बलों की सेवा की। वह सब दैवयोग से निष्फल हो गया। मेरे कोई पुत्र, मित्र अथवा बांधव नहीं था। अतएव औध्र्वदैहिक क्रिया (पिंड दान) से वंचित होकर मैं प्रेत हो गया। जिनके षोडश मासिक श्राद्ध नहीं होते, वे प्रेत अवश्य बनते हैं, चाहे धर्मात्मा पुत्रवान् ही क्यों न हो? राजन्! सब वर्णों का बंधु राजा ही होता है। तुम मेरी औध्र्वदैहिक क्रिया करके मेरा उद्धार करो। मैं तुम्हें मणिरत्न दूंगा। यद्यपि वन में निर्मल जल और सरस फलों का अभाव नहीं है, तथापि मैं इनसे वंचित रहता हूं। मैं प्रेतत्त्व से अत्यंत दुःखी हूं। तुम मेरे लिए वेदमंत्रों से विष्णु की पूजा एवं नारायण बलि-कर्म करो। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की प्रतिमा बनवाकर उनका अर्चन, अग्नि में देवताओं को तृप्त करके घी, दही और दूध से विश्वदेवों का पूजन करो। इसके पश्चात् ब्राह्मणों के लिए तेरह पदों का दान, शैयादान एवं प्रेत घट का दान करो। प्रेतत्त्व-निवारण हेतु यह आवश्यक है।' प्रेत के साथ राजा का इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी समय हाथी-घोड़ों से युक्त राजा की सेना पीछे से आ गई। सेना के आने पर प्रेत ने राजा को महामणि देकर प्रार्थना की और वहां से विदाई ली। वन से निकलकर राजा ने अपने नगर में जाते ही प्रेत द्वारा बताई विधि से उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया, जिसके प्रभाव से वह प्रेतत्त्व छोड़कर स्वर्ग में चला गया।

राजा के द्वारा किए गए श्राद्ध से प्रेत को उत्तम गति प्राप्त हुई।

**शिक्षा :** दान आदि सत्कर्मों से मनुष्य जन्म-जन्म के पापों से छुटकारा पा जाता है।

## 18. ब्रह्मांड पुराण

### चुराए हुए पदार्थ की भी चोरी

कांचीपुरी में वज्र नामक एक चोर रहता था। उसे प्रतिदिन थोड़ा-बहुत जो भी मिलता, सब कुछ चुरा लेता था। चुराए हुए धन को वह राज-रक्षकों द्वारा पकड़े जाने के भय से आधी रात के समय जंगल में जाकर गाड़ देता था।

एक रात वीरदत्त नामक एक किरात लकड़हारे ने चोर की यह चेष्टा देख ली। चोर के चले जाने के बाद वह प्रतिदिन मिट्टी हटाकर संपत्ति में से दसवां हिस्सा निकाल लेता और गड्ढे को पहले की तरह पत्थर-मिट्टी से ढक देता था। लकड़हारा चालाक चोर था। वह इस ढंग से चुराता था कि वज्र उसकी चोरी को जान न सके।

एक दिन लकड़हारा अपनी पत्नी को धन देता हुआ बोला—'तुम प्रतिदिन धन मांगा करती थी। लो, आज मुझे पर्याप्त धन प्राप्त हो गया है।' पत्नी ने कहा—'जो धन अपने परिश्रम से उपार्जित किया जाता है, वही स्थायी होता है। इसलिए इस धन से जनता के भले के लिए बावली, कुआं आदि बनवाना चाहिए।' उसके पति को भी यह बात पसंद आई। आस-पास अच्छे-अच्छे कुएं और तालाब थे। इसलिए उसने दूर-देश में एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाया। गर्मी में भी उसका जल नहीं सूखता था। तालाब में अभी सीढ़ियां लगानी थीं और उसके सब पैसे समाप्त हो गए। वह छिपकर फिर वज्र का अनुसरण करने लगा। देखा करता था कि वज्र कहां-कहां धन गाड़ा करता है। इस प्रकार उसने तालाब का काम पूरा कर दिया। इसके बाद उसने भगवान विष्णु और शंकर के भव्य मंदिर भी तैयार कराए। जंगल कटवाकर खेत तैयार कराए और उन्हें ब्राह्मणों में वितरित कर दिया। एक बार बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर वस्त्राभूषणों से उनकी अच्छी पूजा की। कुछ ब्राह्मणों के लिए घर की व्यवस्था भी कर दी थी। ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर उसका नाम द्विजवर्मा रख दिया।

जब द्विजवर्मा की मृत्यु हुई, तब उसे लेने के लिए एक ओर यम के दूत और दूसरी ओर भगवान् शंकर और विष्णु के दूत आए। परस्पर में विवाद होने लगा। इसी बीच नारदजी वहां पधारे। उन्होंने सबको समझाया कि "आप लोग कलह न करें, मेरी बात सुनें। इस किरात ने चोरी के धन से मंदिर आदि तैयार

किए हैं, अतः जब तक कुमार्ग से उपार्जित द्रव्यरूप पाप का प्रायश्चित्त नहीं हो जाता, तब तक यह वायु के रूप में अंतरिक्ष में विचरण करता रहे। नारदजी की बात सुनकर सभी दूत लौट गए। वह किरात बारह वर्ष तक प्रेत बनकर घूमता रहा।

देवर्षि नारद ने किरात की पत्नी से कहा—'तुमने अपने पति को सही मार्ग दिखाया है, इसलिए तुम ब्रह्म लोक जाओ। किंतु किरात की पत्नी अपने पति के दुख से दुखी थी। वह ब्रह्म लोक का सुख तुच्छ मानते हुए रोकर देवर्षि से बोली—'मेरे पति को जब तक देह नहीं मिलती, तब तक मैं यहीं रहूंगी। जो गति मेरे पति की होगी, वही गति मैं भी चाहती हूं।' किराती के धर्मयुक्त वचन सुनकर देवर्षि नारद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे अपने प्रभाव से इस योग्य बना दिया कि वह शंकर की अच्छी आराधना कर सके।

किराती ने अपने पति के लिए शिव की आराधना लगन से की। इस कृत्य से उसके पति के चोरी का सारा पाप धुल गया।

**शिक्षा :** नेक कार्य के लिए भी चोरी या कोई अन्य अपराध नहीं करना चाहिए।

अध्याय 6

# पौराणिक आख्यानों की अनुक्रमणिका

विस्तृत व विशाल पौराणिक वाङ्मय के विषयों का संक्षिप्त परिचय इस अनुक्रमणिका में प्रस्तुत किया गया है। परंपरा के अनुसार जो पुराणों का क्रम है, उसी के अनुसार इस अनुक्रमणिका को क्रम में स्थापित किया है। विष्णु पुराण के अनुसार वेद व्यास जी ने चार उपकरणों–1. आख्यान, 2. उपाख्यान, 3. गाथा व 4. कलपबुद्धि के आधार पर पुराणों की रचना की थी।

यहां हमारा उद्देश्य आख्यान की विवेचना करना है। **आख्यान** वस्तुतः एक ऐसा कथानक है, जिसमें ऐसे अर्थ को प्रकाशित किया जाता है, जिसका साक्षात्कार वक्ता ने स्वयं किया हो। आख्यान अर्थात् स्वयं दृष्ट अर्थ का कथन आख्यान का आकार भी महान् व वृहत होता है और पुराणों की विशालता में यह इष्टिका (ईंट) की भांति सुदृढ़ रूप में स्थित है। पुराणों की श्लोक संख्या में मतैक्य न होने के कारण निश्चित रूप से प्रामाणिक अध्यायों की संख्या को ही इस अनुक्रमणिका का आधार बनाया गया है।

## 1. ब्रह्म पुराण (कुल अध्याय 245)

1. पार्वती उपाख्यान (अध्याय 30-50)
2. श्रीकृष्ण चरित्र (अध्याय 180-212)

## 2. पद्म पुराण (कुल अध्याय 641)

1. समुद्र मंथन, 2. वृत्रासुर संग्राम, 3. वामनावतार, 4. मार्कण्डेय एवं कार्तिकेय की उत्पत्ति, 5. राम-चरित्र, 6. तारकासुर वध, 7. स्कंद विवाह, 8. विष्णु चरित्र (सृष्टि खंड पंचम पर्व), 9. सोमशर्मा की कथा, 10. सकुला की कथा, 11. च्यवन का आख्यान (भूमि खंड), 12. शकुंतलोपाख्यान, 13. उर्वशी पुरुरवा उपाख्यान (स्वर्ग

खंड), 14. रामायण कथा, 15. शृंगी ऋषि की कथा, 16. उत्तररामचरित्र की कथा, 17. भागवत महिमाख्यान (पाताल खंड), 18. राम कथा, 19. कृष्ण कथा।

### 3. विष्णु पुराण (कुल अध्याय 126)

1. ध्रुव-प्रह्लाद चरित्र, 2. राजा भरत की कथा, 3. उर्वशीपुरुरवा आख्यान, 4. ययाति कथा, 5. महाभारत की कथा, 6. रामचरित्र (तृतीय अंश), 7. श्रीकृष्ण चरित्र (पंचम अंश)।

### 4. वायु पुराण या शिव पुराण (कुल अध्याय 112)

1. कृष्ण-राधा चरित्र (अ. 104)—2. गदाधर (विष्णु) आख्यान (अ. 105-112)

### 5. श्रीमद्भागवत पुराण (कुल अध्याय 335)

1. शुकदेव की कथा, 2. परीक्षित का आख्यान, 3. नारद के पूर्वजन्म की कथा, 4. महाभारत युद्ध की कथा, द्रौपदी के पुत्रों की हत्या, 5. परीक्षित जन्म कथा, 6. यादवों का संहार, 7. श्रीकृष्ण का परमधाम गमन (स्कंद 1)। 8. कच्छपावतार कथा, 9. नृसिंहावतार कथा, (स्कंद 2)। 10. वराह अवतार की कथा, 11. हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की कथा, 12. कर्दम-देवहूति की कथा (स्कंद 3)। 13. सती की कथा, 14. ध्रुव की कथा, 15. राजा वेन की कथा, 16. राजा पृथु की कथा, 17. पुरंजनोपाख्यान (स्कंध 4)। 18. प्रियव्रत चरित्र, 19. आग्नीध्र तथा राजा नाभि का चरित्र, 20. ऋषभदेव की कथा, 21. भरतचरित्र, 22. गंगावतरण की कथा (स्कंध 5)। 23. अजामिल की कथा, 24. दक्षपुत्रों के विरक्ति की कथा, 25. विश्वरूप कथा, 26. दधीचि ऋषि की कथा, 27. वृत्रासुरवध, 28. चित्रकेतु की कथा, 29. हिरण्यकशिपु की कथा, 30. प्रह्लाद चरित्र (स्कंध 7)। 31. गजेंद्र उपाख्यान, 32. समुद्रमंथन एवं मोहिनी अवतार की कथा,.33. राजा बलि की कथा, 34. वामन चरित, 35. मत्स्यावतार की कथा, 36. राजा सुद्युम्न की कथा, 37. च्यवन ऋषि की कथा, 38. नाभाग और अंबरीष की कथा, 39. मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा, 40. राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र की कथा, 41. सगर का चरित्र, 42. भगीरथ का चरित्र, 43. राम चरित्र, 44. परशुराम का चरित्र, 45. ययाति का चरित्र, 46. दुष्यंत-शकुंतलोपाख्यान, 47. भरत का चरित्र, 48. राजा रन्तिदेव की कथा (स्कंध 9)। 49. कृष्णजन्म की कथा, 50. पूतना वध कथा, 51. शकट-भंजन एवं तृणावर्त की कथा, 52. यमलार्जुन कथा, 53. वत्सासुर एवं बकासुर का वध, 54. अघासुर वध, 55. ब्रह्माजी के मोह की कथा, 56. धेनुकासुर का वध,

57. कालियवध की कथा, 58. प्रलंबासुर वध, 59. दावानल में गोपरक्षण, 60. गोवर्धन धारण, 61. शंखचूड़ वध, 62. अरिष्टासुर वध, 63. कंस वध, 64. रुक्मिणी स्वयंवर, 65. शम्बरासुरवध, 66. जाम्बवती एवं सत्यभामा से विवाह, 67. श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहों की कथाएं, 68. उषा-अनिरुद्ध कथा, 69. राजा नृग की कथा, 70. साम्ब विवाह की कथा, 71. जरासंध वध, 72. शिशुपाल वध, 73. सुदामा की कथा (स्कंध-10)। 74. अवधूतोपाख्यान, 75. यदुवंश का नाश, 76. श्रीकृष्ण का परम धाम गमन (स्कंध-11)। 77. मार्कण्डेय आख्यान (स्कंध-12)।

### 6. नारद पुराण (अध्याय संख्या पूर्वखंड 125 + उत्तरखंड 82)

इस पुराण में मुख्यतया अनेक तीर्थक्षेत्रों का माहात्म्य, देवताओं के योग, धर्माचार वेदांग आदि का प्रतिपादन है। गंगावतरण कथा तथा धर्माख्यान विशेष उल्लेखनीय हैं।

### 7. मार्कण्डेय पुराण (अध्याय संख्या 137)

1. इक्ष्वाकुचरित, 2. तुलसीचरित, 3. रामकथा, 4. नहुष कथा, 5. ययाति कथा, 6. अग्नि, सूर्य आदि वैदिक देवताओं के आख्यान, 7. हरिश्चंद्र आख्यान, 8. दत्तात्रेय अवतार कथा, 9. मदालसा, 10. ऋतुध्वज तथा अलर्क के आख्यान (अध्याय-44 तक)। 11. दुर्गासप्तशती (अर्थात् भगवती का चरित्र अध्याय 41-92)। 12. नाभाग, करंधम, मरुत्त, नरिष्यंत इत्यादि महापुरुषों के चरित्र, 13. श्री कृष्ण चरित्र, 14. मार्कण्डेय चरित्र (अध्याय 93-137)।

### 8. अग्नि पुराण (अध्याय संख्या 383)

1. मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतारों का वर्णन, 2. रामायण की कथा, 3. श्री कृष्ण का चरित्र, 4. महाभारत आख्यान, 5. बुद्ध तथा कल्कि अवतार, 6. इस पुराण में शास्त्रज्ञान अधिक विस्तार से निवेदित किया है। "आग्नेये ही पुराणेऽस्मिन् सर्व विद्याः प्रतिष्ठिताः (385-25) यह स्तुति वचन यथार्थ है।

### 9. भविष्य पुराण (अध्याय संख्या पूर्वार्ध 41 + उत्तरार्ध 171)

1. नागपंचमी व्रत कथा, 2. सूर्य माहात्म्य की कथा। इसमें अनेकानेक राजाओं का वर्णन है, जो रानी विक्टोरिया तक जाता है।

## 10. ब्रह्मवैवर्त पुराण (अध्याय संख्या 276)

1. उषाहरण की कथा, 2. नारद जन्म कथा (ब्रह्मखंड), 3. सरस्वती, गंगा, लक्ष्मी में कलह, 4. गंगोपाख्यान, 5. गंगाविष्णु विवाह कथा, 6. वेदवती की कथा, 7. तुलसी कथा, 8. सावित्री कथा, 9. समुद्रमंथन आख्यान, 10. दुर्गोपाख्यान, 11. बुद्धजन्म कथा, 12. समाधि वैश्य की कथा (प्रकृति खंड), 13. पार्वती की कथा, 14. स्कंद एवं गणेश के जन्म की कथा (प्रस्तुत पुराण में गणेश को श्रीकृष्ण परमात्मा का अवतार कहा है), 15. गजानन की कथा, 16. कार्तवीर्य की कथा, 17. परशुराम की कथा (गणपति खंड), 18. श्री कृष्ण की बाल लीला, 19. तिलोत्तमा का आख्यान, 20. शिवपार्वती विवाह कथा, 21. कंस वध कथा, 22. रुक्मिणी स्वयंवर कथा, 23. मदनजन्म (श्री कृष्ण जन्म खंड)।

## 11. लिंग पुराण (अध्याय संख्या : पूर्वार्ध 108 + उत्तरार्ध 55)

1. दधीचि-क्षुप का आख्यान, 2. नन्दी की कथा, 3. शिव के 28 अवतार।

## 12. वराह पुराण (अध्याय संख्या 218)

1. गणेश जन्म की कथा, 2. नचिकेता का उपाख्यान, 3. द्वादशी माहात्म्य की कथा (इस पुराण में विष्णु स्तोत्रों एवं पूजाविधियों का संग्रह अधिक मात्रा में है।)

## 13. स्कंद पुराण

यह पुराण सनत्कुमार सूत, शंकर, वैष्णव, ब्राह्म तथा सौर नामक 6 संहिताओं एवं माहेश्वर, वैष्णव, ब्रह्म, काशी, रेवा, तापी और प्रभास नामक सात खंडों में विभाजित है। श्लोक संख्या है—81 हजार। 1. दक्ष यज्ञ विध्वंसन, 2. समुद्रमंथन, 3. वृत्रासुरवध, 4. बलिबंधन, 5. शिवगौरी विवाह, 6. कार्तिकेय जन्म, 7. तारकासुर वध, 8. शिवपार्वती की द्यूतक्रीड़ा, 9. कुपित शंकर का वनगमन (केदार खंड)। 10. अप्सराओं का उद्धार, 11. पार्वती जन्म कथा, 12. सोमनाथ माहात्म्य, कौरवपाण्डव युद्ध, 13. महिषासुरवध, 14. वेंकटाचल माहात्म्य, 15. सीतापहरण कथा, 16. छायारूप सीता (माहेश्वर खंडार्गत कौमारिका खंड)। 17. तुलसी विवाह, 18. मदन दहन कथा, 19. कार्तिकेय जन्म कथा, 20. भू-वराह आख्यान (वैष्णव खंड)। 21. सीमन्तिनी भद्रायु का आख्यान, 22. शिवगौरी विवाह, 23. कार्तिकेय एवं श्रियाल राजा का आख्यान (ब्रह्मोत्तर खंड)। 24. पुरुरवा-उर्वशी कथा, 25. पद्मावती की कथा, 26. समुद्रमंथन कथा, 27. मांधाता की कथा, 28. सत्यनारायण की कथा (रेवा खंड)।

### 14. वामन पुराण (अध्याय संख्या 95)

1. शिव-पार्वती चरित्र, 2. नर-नारायण उत्पत्ति, 3. वीरभद्र की उत्पत्ति, 4. मदनदहन कथा (अध्याय 5-6)। 5. देव-दानव युद्ध, 6. अंधकासुर की कथा, 7. सुकेशी कथा, 8. महिषासुर कथा (अध्याय 7-20)। 9. उमा का जन्म, 10. बल आख्यान (अध्याय 21-42)। 11. वेन चरित्र, 12. शिवपार्वती विवाह, 13. विनायक की उत्पत्ति, 14. चंड-मुंड वध कथा, 15. कार्तिकेय जन्म, 16. तारकोपाख्यान, 17. दंडोपाख्यान, 18. चित्रांगदाविवाह, 19. जंभासुरवध, 20. अंधक पराजय, 21. मरुतों की उत्पत्ति, 22. कालनेमि वध (अध्याय 43-73)। 23. धुंधुदैत्य पराजय, 24. पुरुरवा का आख्यान, 25. श्रीराम-चरित्र, 26. गजेन्द्रमोक्ष कथा (अध्याय 74-88)। 27. वामनावतार-चरित्र (अध्याय 89-95)।

### 15. कूर्म पुराण (अध्याय संख्या-पूर्वभाग 58 + उत्तरभाग 46)

1. शंकर चरित्र, 2. दक्षयज्ञविध्वंस, 3. श्रीकृष्ण चरित्र, 4. व्यास-जैमिनि कथा (पूर्वभाग)।

### 16. मत्स्य पुराण (अध्याय संख्या 291)

1. प्रलय काल तथा मनुमत्स्य कथा, 2. पृथुचरित्र, 3. स्कंदचरित्र, 4. तारकासुर वधोपाख्यान, 5. ययाति चरित्र।

### 17. गरुड़ पुराण (अध्याय संख्या पूर्वखंड 221 + उत्तर खंड 35)

1. कृष्ण लीला (अ. 144)। 2. दशावतारों की कथाएं, 3. दक्ष की उत्पत्ति, 4. सती की उत्पत्ति।

### 18. ब्रह्मांड पुराण (अध्याय संख्या 109)

1. कृष्ण लीला, 2. रामायण की कथा, 3. परशुराम की कथा (अध्याय 21-27)। 4. गंगावतरण की कथा (अ. 47-57)। 5. भंडासुरवधकथा, 6. ललितादेवी उपाख्यान।

सभी पुराणों में इन कथाओं के अतिरिक्त अनेक संवादों में तीर्थक्षेत्रों, देवताओं, नदियों, पर्वतों आदि का माहात्म्य, देवता स्तोत्र, अनेक शास्त्रों के उपदेश, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय इत्यादि विविध विषयों का प्रतिपादन अपनी विशिष्ट शैली में किया है। भारतीय संस्कृति तथा परंपरा का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से जिज्ञासु को कम-से-कम किसी एक पुराण का ठीक अध्ययन करना आवश्यक है।

आधुनिक विद्वानों ने पुराण का समय, रचनास्थान, श्लोक संख्या, पौर्वापर्य, ऐतिहासिक सामग्री, भूगोलज्ञान इत्यादि विविध दृष्टि से पुराणों का परिशीलन किया है, परंतु उनके प्रतिपादन में कहीं भी एकवाक्यता नहीं दिखाई देती। सभी विषयों में विद्वानों के मतभेदों के कारण किसी भी विषय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना अशक्य है।

●●●

# धर्मनिष्ठों के लिए श्रद्धापूर्ण उपहार

बड़ा आकार, पृ. 224

डिमाई आकार, पृ. 192

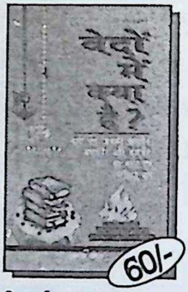


डिमाई आकार, पृ. 176

डिमाई आकार, पृ. 218

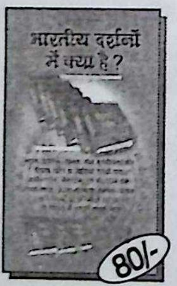


डिमाई आकार, पृ. 200

डिमाई आकार, पृ. 480

डिमाई आकार, पृ. 64

डिमाई आकार, पृ. [illegible]

डिमाई आकार, पृ. 212

डिमाई आकार, पृ. 32

पृष्ठः 80

**डाकखर्चः**

**एक पुस्तक पर 15/-**

**प्रत्येक अतिरिक्त पर 5/-**

No 1018

# पुराणों में क्या है?

***यस्मात्पुरा ह्यनतीदं पुराणां तेन हि स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।।***

अर्थात् प्राचीन काल से यह जीवित और प्रवाहमान होने के कारण इसे पुराण कहा गया है। जो व्यक्ति इसके निरुक्त को जान लेता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।

वेदों से भी पूर्व जिन शब्दों को स्मृति में संजोया गया, वही पुराण हैं। ये प्राचीनतम धरोहर हैं, जिन्हें व्यास जी ने 18 खण्डों में विभक्त किया। इन महान् धर्म ग्रंथों के विशाल भंडार में सृष्टि, लय, मन्वंतरों तथा प्राचीन ऋषियों, मुनियों और राजाओं के वंशों तथा चरितों का वर्णन समाहित किया गया है। भारतीय जीवन शैली, भक्ति मार्ग और कर्मयोग का पुराणों में अद्भुत समन्वय मिलता है। हज़ारों पृष्ठों में फैले इन पुराणरूपी मुक्ताओं की दिप-दिप दमकती आभा से जो दिव्य दर्शन होता है, उससे प्रत्येक धर्म प्राण मनुष्य का जीवन निहाल हो जाता है। पुराण ऐसे प्रकाश स्तंभ हैं, जो वैदिक सभ्यता और सनातन धर्म का पूर्ण परिचय तो देते ही हैं, साथ ही मनुष्य की जीवन शैली को सही रास्ता दिखाते हैं।

आज के बेहद जटिल और व्यस्त दौर में आदमी को इतनी फुर्सत ही नहीं कि वह इस विशाल ज्ञान-गंगा में गोते लगाकर सब कुछ जान सके, जबकि वह इस समृद्ध वाङ्मय को जानने-समझने के लिए बेहद विचलित रहता है। इसी कारण आज की पीढ़ी के लिए एक श्रृंखला तैयार की गई है : 'धर्म-ग्रंथों में क्या है ?' इसके अंतर्गत पुराणों में क्या है ? श्रृंखला की तीसरी कड़ी है। सरल, सहज एवं रोचक शैली में रचित यह पुस्तक सब कुछ को थोड़े में देकर जिज्ञासु पाठ्क की क्षुधा शान्त करने में सक्षम है।

पंकज दीक्षित राष्ट्रीय संग्रहालय संस्थान, दिल्ली से जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एम. फिल. के लिए अध्ययनरत हैं। 'कला-इतिहास के श्रीयंत्र' विषय पर शोध कार्य भी कर चुके हैं। एक अन्य शोध पर इन्हें 'नेहरू ट्रस्ट फ़ार इंडियन कलेक्शन एट विक्टोरिया एण्ड एल्बर्ट म्यूज़ियम', लंदन द्वारा अध्ययन-वृत्ति का पुरस्कार प्रदान किया गया है। इधर कई वर्षों से देश-विदेश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व और स्थापत्य पर इनकी रचनाएं निरंतर प्रकाशित हो रही हैं।

**मूल्य: 80/-**

ISBN 81-223-0742-0
9 798122 307428

पुस्तक महल®
Fax: 011-23280567, 011-23260518
*E-mail:* info@pustakmahal.com
दिल्ली • मुंबई • बंगलोर • पटना • हैदराबाद

visit our website: **www.pustakmahal.com**

4116 B